UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186596
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H570|V81U Accession No. G.H.1818

Author विराज|

Title वनराज के राज में|1956

This book should be returned on or before the date last marked below.

वनराज के राज में

हमारा मनोरंजक साहित्य

शिवालक की घाटियों में (सचित्र)	श्री निधि	५)
सचित्र गृह-विनोद	अरुण, एम० ए०	८)
सचित्र व्यंग-विनोद	,, ,,	६॥)
गप्पों का खजाना (सचित्र)	,, ,,	१)
रेडियो नाटक (सचित्र)	हरिश्चन्द्र खन्ना	६)
पृथ्वी-परिक्रमा (सचित्र)	सेठ गोविन्ददास	१२)
नेपाल की कहानी (सचित्र)	काशीप्रसाद श्रीवास्तव	८)
रजवाड़ा (सचित्र)	देवेश दास	५)
चम्पारन में महात्मा गान्धी (सचित्र)	राजेन्द्रप्रसाद	५)
भारत का चित्रमय इतिहास	महावीर अधिकारी	६)
अजी सुनो (सचित्र हास्य कविताएँ)	गोपालप्रसाद व्यास	५)
मैंने कहा (सचित्र हास्य निबन्ध)	,, ,,	३)
मानव की परख	देवीदयाल सेन—भूमिका श्री जगजीवनराम	३)
केसर के फूल	मोहनकृष्ण दर— ,, श्री जवाहरलाल नेहरू	२)
नरक का न्याय	मोहनसिंह सेंगर	२)
जीवन के मोड़	महावीर अधिकारी	३)
कारावास	यशपाल, बी० ए०	१॥)
अमृत और विष	अरुण, एम० ए०	२।)
मृत्यु में जीवन	,, ,,	१)
स्वप्न-भंग	होमवती	२)
बेल-पत्र	कमला देवी चौधरी	१)
उन्माद	,, ,,	२॥)
यात्रा	,, ,,	३)
प्रायश्चित (मूल ले० मोपांसा)	अनु० सन्तोष गार्गी	१॥।)
ऐन्टन चेखव	अनु० अरुण	१॥)
मैक्सिम गोर्की	,, ,,	३)
कला का पुरस्कार	पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'	३)
आदर्श भाषण-कला	यज्ञदत्त शर्मा	७॥)
आदर्श पत्र-लेखन	,, ,,	७॥)

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली - ६

वनराज के राज में

सचित्र

लेखक

विराज, एम. ए.

१९५६

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

लेखक की अन्य रचनाएँ

हाथियों की खोज में	(सचित्र)	१॥)
प्राणों की बाज़ी	(सचित्र)	२॥)
जंगल के रहस्य	(सचित्र)	१।)
जंगल की बातें	(सचित्र)	१।)
गाय और बाघ	(सचित्र)	।॥)
समुद्र की लीला	(सचित्र)	।॥)
हर की पैड़ी (कविता)		१॥)
रतिविलाप (गीत-नाट्य)		१॥)
तिरंगा झण्डा (एकांकी)		१।)
प्रेमदूती (कविता)		।॥)
हिन्दी कवियों का आलोचनात्मक अध्ययन		३)
निबन्ध सागर		५)
कवि-परिचय		१॥)
नया आलोक : नई छाया (कहानियाँ)		२)
सम्राट् विक्रमादित्य (नाटक)		१॥)
वसन्त के फूल (कविता)		२॥)

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

मुद्रक
क्रॉनिकल प्रेस
मोरी गेट, दिल्ली-६

भूमिका

इस पुस्तक की भूमिका लिखने की आवश्यकता नहीं थी, यह बात पुस्तक को पढ़ने के बाद पाठक स्वयं समझ जायेंगे। फिर भी इस पुस्तक के इस रूप में आने तक का इतिहास शायद पाठकों को रुचिकर जान पड़े, इसलिए कुछ शब्द लिख रहा हूं।

'वनराज के राज' में लेखमाला मैंने पहले बम्बई के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'धर्मयुग' के लिए लिखी थी। उस समय इस लेखमाला में कुल आठ लेख थे। इन लेखों में से एक लेख १३ जनवरी १९५२ के 'धर्मयुग' में प्रकाशित भी हुआ था और शेष लेखों के प्रकाशन का निश्चय हो चुका था। परन्तु क्योंकि उस समय मैं 'धर्मयुग' के ही पहेली-विभाग में काम कर रहा था, इसलिए एक अकारण स्नेही व्यक्ति के हस्तक्षेप के कारण पहला लेख छपने के बाद लेखमाला का प्रकाशन बन्द कर दिया गया।

१९५२ के अक्टूबर मास में मैंने 'धर्मयुग' की नौकरी छोड़ दी थी। उन दिनों मैं बम्बई में रहता था और रविवार के दिन रेस देखने जाया करता था। एक दिन शाम को अपने होटल में लौटा, तो देखा कि चारपाई के नीचे रखा हुआ अपना ट्रंक गायब है! पूछने पर पता चला कि उसी कमरे में एक और आदमी आकर ठहरा था। वह एक बड़ा सा ट्रंक खरीदकर लाया और उसमें मेरे छोटे से ट्रंक को रखकर यह प्रदर्शित करता हुआ चला गया कि वह केवल अपना ट्रंक लेकर जा रहा है। दुर्भाग्य से--मेरे भी और चोर के भी--उस ट्रंक में केवल पाण्डुलिपियां ही पाण्डुलिपियां थीं। 'वनराज के राज में' लेखमाला भी उसी ट्रंक में चली गई। चोर के हाथ कुछ न लगा। शायद ट्रंक को खोलने पर उसने मुझे जी-भर कोसा भी हो, पर मेरा काफी नुकसान हुआ। उस छोटे से ट्रंक में लेखों और पुस्तकों के कुल मिलाकर १००० से अधिक टाइप किये हुए 'फूलसकैप' पृष्ठ थे। व्यर्थ समझकर मैंने चोर को ढूंढने का भी कोई प्रयत्न न किया।

१९५३ में मैं दिल्ली लौट आया। फिर यह लेखमाला नये सिरे से लिखी गई। "हिन्दुस्तान' के सम्पादकों ने सहृदयतापूर्वक इसे अपने पत्र में छापना स्वीकार कर लिया। २२ फरवरी १९५३ से ये लेख छपने प्रारम्भ हुए। जो कुछ पत्र मेरे पास आये, उनसे पता चला कि यह लेखमाला काफी पसन्द की गई। उन्हीं दिनों दिल्ली के प्रसिद्ध प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता आत्माराम एण्ड संस ने इसे प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया। परन्तु प्रकाशकों की अपनी अनेक विवशताएँ होती हैं; उनके कारण इस पुस्तक के प्रकाशन में काफी विलम्ब हो गया।

खैर, अब यह पुस्तक पाठकों के सामने प्रस्तुत है। 'वनराज के राज में' लेखमाला के अतिरिक्त परिशिष्ट के रूप में इसमें दो लेख और जोड़ दिये गये हैं, जो पुस्तक के विषय और वातावरण से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं।

इस पुस्तक का एकमात्र प्रयोजन लेखक के मन में यह रहा है, कि किसी प्रकार उन लोगों के मन में, जिन्हें वर्तमान नागरिक जीवन की परिस्थितियों ने प्राकृतिक जीवन से दूर फेंक दिया है, प्राकृतिक जीवन के प्रति, वन-पर्वतों और उनमें निवास करने वाले पशु-पक्षियों के प्रति अनुराग जाग्रत किया जा सके। मेरा यह विश्वास है कि प्रकृति के साथ इस प्रकार का घनिष्ठ सम्पर्क मनुष्य के मन में उदार भावनाओं को विकसित करता है, जो प्रकृति से दूर होते जाने के साथ-साथ क्षीण और क्षीण होती जाती हैं।

यदि इस पुस्तक को पढ़कर किशोर और युवकों को वन-पर्वतों में घूमने, पशु-पक्षियों को देखने और इसी प्रकार का अन्य साहित्य पढ़ने की प्रेरणा मिले, तो लेखक का श्रम सफल हो जायगा।

साहित्य मन्दिर
४।१६, रूपनगर
दिल्ली

विराज

प्रसंग-सूची

		पृष्ठ
१.	मोमबत्तियों के उजाले में	१
२.	गंगा की रेती में एक रात	६
३.	पाड़े की घात में बाघ	११
४.	नरभक्षक चीता	१७
५.	अठारह फुट लम्बा अजगर	२४
६.	जब हमने अजगर पकड़ा	२८
७.	गौरीवन में विश्राम	३५
८.	चांदनी रात में गंगा पार	४०
९.	हाथियों की करतूतें	४६
१०.	पशुओं का वर्णान्ध संसार	५३
११.	नरभक्षकों की रोमांचकारी लीला	५९
१२.	शानदार फनियर	६८
१३.	सांप बदला लेता है ?	७३
१४.	सांप की मणि	८१
१५.	पशुओं का प्रतिशोध	८६
१६.	काला बिच्छू	९३
१७	हाथियों से मुठभेड़	९९
१८.	अदृश्य शक्तियां	१०६
१९.	मन्त्र, अपशकुन और स्वप्न	११२
२०.	शाप, सम्मोहन और ज्योतिष	११८
२१.	भय की गन्ध	१२७
२२.	शिकारी शिकार बन गये	१३५
२३.	वनराज के राज में	१४१
२४.	वनराज के दर्शन	१४७

परिशिष्ट

१.	सौंग के किनारे छुट्टी का एक दिन	१५६
२.	झरबेरियों के जंगल में	१७०

अपने
परम स्नेही
मित्र
विद्यासागर विद्यालंकार
को
सप्रेम समर्पित

वनराज के राज में

१

मोमबत्तियों के उजाले में

जब हरिद्वार से साढ़े तीन बजे चली हुई रेलगाड़ी रायवाला के घने जंगल में से गुजरती हुई ऋषिकेश की ओर बढ़ रही थी, उसी समय जंगल का रूप बड़ा आकर्षक मालूम पड़ने लगा था। अक्टूबर के इस महीने में सारे जंगल पिछली बरसात के कारण खूब हरे और घने होकर खड़े हुए थे। इन दिनों जंगलों में मनुष्यों का यातायात बन्द रहता है, जो नवम्बर में फिर शुरू होता है। मनुष्यों का आवागमन न रहने से इन दिनों वन-पशु खूब स्वच्छन्द होकर इन प्रदेशों में विचरते हैं।

"जब लकड़ी काटने वाले और भाभड़ लाने वाले लोग सैकड़ों की टोलियों में वन में होते हैं, तब वन-भ्रमण में कुछ आनन्द नहीं; आनन्द तो इन दिनों है, जबकि बरसात मनुष्यों के पिछले पदचिन्हों को धो चुकी है और इस वर्ष उस भूमि पर मनुष्यों के पदचिह्न भी अभी नहीं बने हैं" पं० हरिवंश ने कहा।

आकर्षण दुर्निवार था। पर मौसम बहुत अच्छा न था। मच्छरों की बला दूर न हुई थी; और सांप हम अपने मकानों के आसपास भी दो एक दिन बाद मारते ही रहते थे। फिर भी तय हो गया कि ऋषिकेश में स्वर्गाश्रम के पास से गंगा को पार करके पांच मील दूर जंगल में कुनाव की चौकी पर रात बिताई जाय। उसके बाद की दो रातें भी यथासम्भव घने जंगलों में ही बिताई जायें। तीन दिन का वन-भ्रमण का प्रोग्राम रहे।

कुछ रेलगाड़ी लेट हो गई; किसी कारण सिगनल के पास खड़ी रही; और रही-सही कसर स्वर्गाश्रम के पास नौका वालों ने पूरी कर दी। जब हमने गंगा पार की तब सूर्य छिप रहा था और आकाश में छोटे-छोटे बादलों के टुकड़े रंगीन हो उठे थे। साथ लगे पहाड़ की चोटी पर खड़े वृक्षों की पंक्ति आकाश पर बने हुए चित्र-सी प्रतीत हो रही थी।

हम सब आवश्यक सामान से लदे हुए थे। तीन दिन का राशन, रस्सियां, भाले, टार्चें तथा एक-एक चादर इत्यादि हमारे पास थीं। देर बहुत हो चुकी थी; कुनाव की चौकी दूर थी; अतः बुद्धिमान लोगों की राय बनी कि आज की रात स्वर्गाश्रम में ही बिताई जाय और कुनाव का प्रोग्राम कल पर छोड़ा जाय। परन्तु उत्साही साथियों का दल कुनाव पहुंचकर ही सोने के पक्ष में था। बहुत सम्भव था कि अत्यधिक उत्साह पर बुद्धि की ही विजय हो जाती, परन्तु जब हम रास्ते पर खड़े हुए आगे बढ़ने या न बढ़ने के विषय में विचार-विमर्श कर रहे थे, तभी एक बूढ़ा अपनी तरुण पत्नी के साथ उस रास्ते पर जाता दिखाई पड़ा। न जाने कैसे यह मान लिया गया कि वह भी कुनाव ही जा रहा है। पूछने पर उसने बताया कि कुनाव दूर नहीं है; आसानी से वहां पहुंचा जा सकता है।

उत्साह की विजय हुई। यह समझते हुए भी, कि इतना विलम्ब हो जाने पर चलना उचित नहीं है, हम लोग आगे चल पड़े। इस रास्ते पर मैं पहले भी दिन में दो चार बार आया गया हूँ। पहाड़ों के ऊपर से जाने वाला यह रास्ता बहुत ही बेढंगा और ऊबड़-खाबड़ है। जंगल इतना घना है कि दोपहरी में भी अंधेरा अंधेरा सा मालूम होता है। बरसात के बाद की इस अंधेरी रात में उसका क्या रूप होगा, पहले से कुछ कल्पना न कर सका।

बूढ़ा और उसकी पत्नी तो केवल दो फर्लांग चलकर पहाड़ी पर बने हुए एक मकान को लक्ष्य करके रास्ता छोड़कर ऊपर की ओर चल दिये। हम रास्ते पर आगे बढ़े। कुछ दूर चलने पर खुली भूमि समाप्त हो गई; रास्ते के दोनों ओर जंगल प्रारम्भ हुआ और मामूली सी चढ़ाई भी शुरू हुई। तभी एकाएक ऐसा लगा कि जैसे जादू के जोर से सब कुछ एकदम काला हुआ जा रहा है। अंधेरा इतनी जल्दी और इतना अधिक हुआ कि हम विस्मित हो उठे। कारण यह था कि सूर्य काफी समय पहले पहाड़ के पीछे छिप चुका था और पिछले दस पन्द्रह मिनट से हमें जो प्रकाश मिल रहा था, वह केवल आकाश के बादलों पर पड़ता हुआ सांध्य-किरणों का प्रतिक्षेप मात्र था। यह प्रतिक्षेप जब समाप्त होने लगता है, तब इसी प्रकार तेजी से समाप्त होता है। दूसरे, हम खुली भूमि से चलकर जंगल में घुस आये थे; और जंगल तो अभी घना और घना होता जा रहा था, इसलिए अन्धकार अधिक प्रतीत हुआ।

शहरों में अथवा खुले मैदानों के गांवों में रहने वाले लोग उस अन्धकार की कल्पना भी नहीं कर सकते, जो इन जंगलों में अंधेरी रातों में होता है। इधर उधर ऊंचे पहाड़ होने से तथा सिर के ऊपर घनी तरु-शाखाओं को पार करके तारों का प्रकाश भी भूमि तक न पहुंच पाने के कारण यह अन्धकार उस अन्धकार से बिलकुल भिन्न होता है, जो खुले मैदानों में

रात्रियों में होता है। मैदानों का मामली अंधेरा इस अंधेरे की तुलना में प्रकाश मालूम होता है। इस अन्धकार की कल्पना वही आसानी से कर सकता है, जिसने फोटोग्राफर के अंधेरे कमरे (डार्क रूम) में कुछ समय बिताया हो।

इस अंधकार के कारण हमें असुविधा चाहे जितनी हुई, परन्तु मन में भय का भाव नहीं आया: शायद इसलिए कि हम गिनती में बहुत (आठ) थे। दीख कुछ भी नहीं पड़ता था, अतः रह रहकर ठोकरें लगने लगीं। वर्षा के पानी ने मिट्टी को बहा दिया था, और जगह जगह पत्थर उभरे हुए थे। नवम्बर में जब रास्ता चलने योग्य बनाया जायगा, तब इस पर फिर मिट्टी डाली जायगी। ठोकरों से थोड़ा बहुत कष्ट तो होता ही था, पर क्योंकि वह सबको एक जैसा हो रहा था, इसलिए कौन किससे शिकायत करे? चले जा रहे थे: जिसे ठोकर लगती, वह 'आह' 'ओफ्फ' 'अरे' कुछ कहता; बाकी लोग हंस पड़ते और आगे चलते रहते! इस अंधेरे में कोई किसी को दिखाई नही पड़ रहा था; केवल आवाज से एक दूसरे को पहिचान रहे थे।

एकाएक अंधेरे में बैठा हुआ कोई प्राणी उठकर भागा। वह रास्ते से थोड़ा हटकर बैठा हुआ था और हमारे आने की आहट पाकर भागा था। भागकर वह एकदम दूर नहीं चला गया: बल्कि पच्चीस-तीस कदम दूर जाकर रुक गया था और उसके तेजी से चलते हुए श्वास-प्रश्वास की आवाज हमारे कानों में स्पष्ट आ रही थी। मेरे तो रोंगटे खड़े हो गये। यह कौनसा प्राणी था, एकाएक हम कुछ न समझ सके। वह भी कुछ दूर हटकर शायद स्थिति को भांपना चाह रहा था। जरा देर हम भी चुप रहे। पं० हरिवंश बोले: "भालू मालूम होता है। और कोई प्राणी होता तो भागते हुए इस प्रकार आवाज न करता।"

भालू! इस काले अंधेरे में! भालू इन जंगलों का बहुत ही भयंकर प्राणी है। भालू द्वारा घायल किये गये कितने ही लोगों को हम पहले देख चुके थे। उन घायल लोगों के मुंह से ही हम यह भी सुन चुके थे कि किस प्रकार दिन-दहाड़े साहसपूर्वक भालू ने उन पर आक्रमण किया और किसी भी तरह डरा नहीं। इन घायलों में अधिकांश चोटों के परिणामस्वरूप मर गये थे। इस अंधेरे में उसी भालू से मुठभेड़ की कल्पना रुचिकर मालूम नहीं हुई। जैसे अंधेरे में खड़ा वह पशु हमारे भावी क्रिया-कलाप की प्रतीक्षा कर रहा था, उसी प्रकार थोड़ी देर हमने भी उसकी प्रतीक्षा की और उसके बाद मिलकर थोड़ा सा शोर मचाया। शोर मचाते ही उस प्राणी के दूर भागने की आवाज हमने फिर सुनी और इस बार वह भागता ही चला गया।

हुआ कुछ भी नहीं। पर फिर भी जिस तरह अब तक निश्चिन्त

चल रहे थे, वह भाव समाप्त हो गया, अब प्रत्येक कदम शंका और सतर्कता से भरा हुआ पड़ने लगा । चढ़ाई अब कठिन हो गई थी और हम पहाड़ की काफी ऊंचाई पर आ गये थे ।

एकाएक सुभाष चिल्लाया 'अर्रर्र र !' जहां दिखाई कुछ न पड़ रहा हो, वहां प्रत्येक आवाज बहुत बुरी तरह चौंकाती है । क्या हुआ, यह जानने को सब बेचैन हो उठे । सुभाष सबसे आगे चल रहा था ।

टार्चें हमारे पास थीं; तुरन्त टार्च जलाकर देखा । पानी की धारा ने रास्ते को काटकर बीच में एक गहरी खाई बना दी थी । इस खाई के किनारे से बाहर की ओर निकले हुए एक पत्थर पर सुभाष का पांव अटक गया था । यदि इस पत्थर पर उसका पांव न अटकता, तो पांव और तीन-चार फुट नीचे जाता और तब सुभाष किस तरह गिरता, यह कुछ नहीं कहा जा सकता था । एक बड़ी दुर्घटना होते-होते बच गई; परन्तु वह हो सकती थी और कितनी बड़ी हो सकती थी, इसे सोच-सोचकर हमारा उत्साह अभी से ठंडा पड़ने लगा । कुनाव अभी दूर था ।

टार्च जलने पर रास्ते का बहुत ही डरावना रूप दिखाई पड़ा । जगह-जगह उभरे हुए पत्थर, कहीं-कहीं पेड़ों की जड़ें, जो ऊपर की मिट्टी बह जाने से, बाहर निकल आई थीं, गहरे गड्ढे ! जब तक बिना देखे चल रहे थे, चल रहे थे । पर अब एक बार देख लेने के बाद उस तरह अंधाधुन्ध चलना सम्भव नहीं रहा । अगर किसी गड्ढे में गिर-पड़कर किसी को मोच-वोच आ जाय, तो फिर इस रात में उसे कौन उठाये फिरेगा ? फिर अभी तो तीन दिन के भ्रमण का प्रारम्भ है; शुरू में ही ऐसी बला सिर पड़ गई, तो घूमना तो खत्म ही समझो ।

टार्च जलने पर रास्ते की भयंकरता से भी बुरी बात यह दिखाई पड़ी कि टार्च के सैल अब समाप्त-प्राय हैं । पहली बार अवश्य टार्च की रोशनी कुछ ठीक हुई थी, उसके बाद तो वह बहुत ही मन्द होती गई, यहां तक कि टार्च फूला पड़ी हुई आंख की तरह खुद ही चमककर रह जाने लगी और उससे दिखाई कुछ न पड़ने लगा । एक और भी टार्च थी, पर उसे आपत्काल के लिए संभालकर रखना आवश्यक था । उसके सैलों को रास्ता देखने के लिए जला-जलाकर खत्म करने में कोई लाभ नहीं था ।

जहां पर हम थे, वहां रुकना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं था, और वापस लौटने को कोई तैयार नहीं था, इसलिए सब प्रकार से विवशता अनुभव करते हुए हमने आगे ही बढ़ने का निश्चय किया ।

जंगल में रात बितानी होगी, इस विचार से मोमबत्तियां भी हमने साथ रख ली थीं । एक साथी के पास मोमबत्तियां बनाने की मशीन थी, अतः पैसे न खर्च कर उसने अपने हाथ की कारीगरी के ही बहुत से नमने

साथ रख लिये थे। ये मोमबत्तियां छोटी-छोटी और टेढ़ी-मेढ़ी थीं। उस रात में उस घने जंगल में जलती हुई मोमबत्तियों को लेकर की गई वह यात्रा मुझे शायद कभी नहीं भूलेगी। जिन मकानों में हम बचपन से रह रहे थे, उनमें बिजली थी। जंगलों में हम अनेक बार गये, पर ऐसी विवशता कभी अनुभव नहीं की। तीन साथी मोमबत्ती लेकर चल रहे थे, इसलिए उनका सामान बाकी लोगों को लाद लेना पड़ा था। यदि मोमबत्ती लेकर जंगलों में फिरना आसान होता, तो हरीकेन लालटेन का आविष्कार कभी न होता। हमारे आगे चलने के प्रयत्न के साथ ही मोमबत्ती बुझने का प्रयत्न करती थी, अत एक हाथ उसकी आड़ करने के लिए रखना पड़ता था और हाथ की यह आड़ करने से मोमबत्ती जलाकर प्रकाश प्राप्त करने का प्रयोजन ही समाप्त हो जाता था। फिर भी इस क्षीण, बार-बार बुझ जाने वाले प्रकाश से भी हमें मार्ग देखने में कुछ-न-कुछ सहायता मिली ही। एक साथी सबसे आगे मोमबत्ती लेकर चल रहा था, एक बीच में था और एक सबसे अन्त में; यह पं० हरिवंश थे।

इस प्रकार चलते हुए चाल का धीमा हो जाना स्वाभाविक ही था। चलते-चलते जब हम पहाड़ की काफी ऊंचाई पर रास्ते के एक मोड़ पर पहुंचे, तो एकाएक दूरी पर ऋषिकेश की नगरी में जलती हुई रोशनियां दिखाई पड़ीं। ये हम से बहुत दूर और हम से बहुत नीचाई पर थीं। इनका प्रकाश हमारे मार्ग-प्रदर्शन में कुछ भी सहायता नहीं कर सकता था। फिर भी इन्हें देखकर हमें बड़ा आनन्द हुआ। साथ ही हमारा यह भ्रम भी मिट गया कि हम बहुत दूर चले आये हैं, और कुनाव कहीं पास ही होना चाहिए। अभी हम ऋषिकेश के सामने थे, अत कुनाव पास नहीं था।

यहां से रास्ते का उतार प्रारम्भ हुआ।

२

गंगा की रेती में एक रात

चलने से पहले हमने इस बात पर विचार कर लिया था कि वर्षा-ऋतु बीत चुकी ह और इस बात की कोई आशंका नहीं है कि हमारा भ्रमण वर्षा के कारण कष्टजनक बनेगा। इसलिए जब बादल की गरज कहीं से सुनाई पड़ी, तो हमारा चौंकना बिलकुल स्वाभाविक था। पहली बार में भ्रम की संभावना हो सकती थी, परन्तु बादल की गर्जना तथा पश्चिम के आकाश में हलकी हलकी बिजली की चमक रह-रहकर होने लगी। सोच-सोचकर हमें हंसी आने लगी। क्या मारा मजा हमें आज ही मिल जायगा! फिर भी इन सब परिस्थितियों पर अपना कुछ भी वश नहीं था। अतः मोम-बत्तियों के प्रकाश में अपने मार्ग को देखते हुए हम फिर आगे बढ़ने लगे। यदि वर्षा होने लगे, तो सिवाय कुनाव की चौकी के हमें और कोई जगह सिर छिपाने के लिए नहीं मिल सकती। यद्यपि सिर के ऊपर तो तारे दिखाई पड़ रहे हैं, परन्तु बादल की गरज और बिजली की चमक भी असंदिग्ध है। हो सकता है वर्षा आने में कुछ देर लगे, पर कुनाव अभी कितनी दूर है, यह भी तो ठीक मालूम नहीं।

वैसे परिस्थिति बुरी नहीं थी। यदि यहीं एक छोटा सा कमरा होता, जिसमें हम जरा निश्चिन्त होकर सो सकते, तो वन का रूप बड़ा मनोरम था। पहाड़ और पेड़ सभी अंधकार की चादर ओढ़कर शान्त भाव से सो रहे थे। किसी प्रकार की अशांति, उपद्रव, ईर्ष्या-द्वेष या षड्यंत्र की कुटिलता यहां नहीं थी। वायु स्वच्छ और प्राणदायिनी थी, परन्तु कठिनाई केवल यह थी कि हम इस स्थान पर देर तक रहना नहीं चाहते थे और जल्दी से जल्दी कुनाव पहुंचना चाहते थे।

आखिर कभी न कभी कुनाव पहुंचेंगे ही, इस प्रकार का क्षीण साहस मन में लेकर हम आगे बढ़ रहे थे। चलते-चलते सुभाष रुक गया; बोला: "आगे रास्ता ही नहीं है।"

पं० हरिवंश सबसे पीछे चल रहे थे, रास्ते की उलझन सुनकर आगे आये। परिस्थिति सचमुच विचित्र थी। रास्ते के एकदम आगे

सूखा बरसाती नाला था। नाला बहुत चौड़ा था। जिस प्रकार नाले ने रास्ते को इस किनारे पर से काट दिया है, उसी प्रकार दूसरे किनारे पर भी काटा हुआ होगा। परन्तु नाले के पार का वह छोर किस दिशा में बढ़ने पर मिलेगा, यह दिन के प्रकाश में तो प्रयत्न करके खोजा जा सकता था, रात के वैसे अंधेरे में खोज पाना एकदम असम्भव था। इस नाले को देखकर यह तो हम समझ गये कि पहाड़ की चढ़ाई और उतराई वाले रास्ते को हम पार कर आये हैं, पर कुनाव पहुंच पाने की आशा हमें छोड़ देनी पड़ी।

बड़े संतोष की बात यह थी कि पश्चिम दिशा की वह घटा केवल गरज-चमककर चली गई थी। हमारी ओर तो वह आई ही नहीं, बल्कि पश्चिम की ओर भी उसकी गर्जना बन्द हो गई थी। अब हमारे सामने एक ही भला रास्ता था। यह नाला अवश्य ही गंगा में जाकर मिलता होगा। यह हम सरलतापूर्वक अनुमान कर सकते थे कि गंगा यहां से आधा मील से अधिक दूर नहीं होगी। सर्वसम्मति से यह तय हुआ कि नाले के साथ-साथ चलकर गंगा के किनारे पहुंचा जाय और वहां खुली बालू पर रात बिताई जाय।

नाले के साथ-साथ चलने में कोई दिक्कत नहीं पड़ी। नाला खूब चौड़ा था और जगह खुली होने के कारण यहां अंधेरा भी साधारण था। ऐसे अंधेरे में चलने-फिरने के हम खूब अभ्यस्त थे। मोमबत्तियां बुझा दी गईं और थोड़ी ही देर बाद हम गंगा के किनारे पहुंच गये।

इस स्थान पर पहुंचकर——यदि रात भर वर्षा न पड़े तो——हम निश्चिन्त थे। गंगा के किनारे थोड़ा यत्न करके हमने ऐसा स्थान ढूंढा, जहां दूर-दूर तक सफेद बालू बिछी हुई थी। यहां पहुंचकर हमें ऐसा अनुभव हुआ, जैसे अंधेरा है ही नहीं। पर जब कभी आस पास खड़े जंगल की ओर दृष्टि जाती थी, तो आंखों पर जरा जोर डालकर देखना पड़ता था कि कोई जंगली पशु तो नहीं आ रहा है।

कुनाव पहुंचने की जल्दी में हमने अपना शाम का भोजन अब तक नहीं खाया था और इस समय हमारी इच्छा सबसे पहले खाने की हो रही थी। बालू के मैदान से पानी की धारा जरा दूर थी। पहले वहां जाकर हमने हाथ-पैर धोये, और भोजन करने के लिए बैठ गये।

इन जंगल की यात्राओं के लिए हमारा लगभग एक ही तरह का भोजन निश्चित सा है। परांठे, आलुओं की सूखी सब्जी, प्याज, अचार और गुड़। इन वस्तुओं को लादकर ले जाने में भी असुविधा नहीं होती और भोजन में आनन्द भी आ जाता है।

खाते-खाते मैंने पं० हरिवंश से कहा : "देखिये हरिवंश जी, मैंने पहले ही स्वर्गाश्रम में सोने की सलाह दी थी; पर यह सुझाव माना ही नहीं।"

पं० हरिवंश हँसकर बोले : "सुभाष आज उस गड्ढे से बच गया; नहीं तो इसकी एक टांग तो जरूर टूटती।"

सुभाष कहने लगा : "स्वर्गाश्रम में सोने की अपेक्षा यह जगह क्या बुरी है ?"

मैंने कहा : "बुरी तो कुछ नहीं है; वह घटा इस ओर आ जाती तो और अच्छा था।"

देवेन्द्र बोला : "यह बात किसी को पहले से मालूम थोड़े ही थी कि रास्ता ऐसा बेहूदा होगा। रास्ता खराब होने की बात तो वहां विराज ने भी नहीं कही थी।"

रास्ता यद्यपि हमने बहुत तय नहीं किया था, फिर भी जिस ढंग का रास्ता, जिस तरह हमने तय किया था, उसमें थकान बहुत अनुभव हो रही थी। भोजन खाने के बाद हम फिर बालू पर आ गये। बालू का वह नरम विस्तर और गंगा की धारा को छूकर आती हुई ठंडी हवा! तुरन्त ही आंखें मींचकर सो जाने की इच्छा हुई। पर इस रात को भी हम व्यर्थ नहीं जाने देना चाहते थे। गंगा का किनारा है, अतः बहुत सम्भव है कि वन के कुछ प्राणी पानी पीने के लिए इस ओर आ निकलें। यदि वे आवें, तो हमें देखने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसलिए एक वक्त में दो साथी जागते रहें; एक-एक घंटे बाद बारियां बदलती रहें; ऐसा निश्चय करके हम सब निश्चिन्त होकर लेट गये। केवल दो व्यक्ति टार्च हाथ में लेकर बैठ गये। घड़ी उन्हें दे दी गई।

पर लगता है कि वह रात हमारे सोने के लिए नहीं बनी थी। अभी लेटे हुए आधा घंटा भी न हुआ था कि देवेन्द्र कूदकर उठ खड़ा हुआ; "टार्च लाओ टार्च! बिच्छू है!"

ऐसे जंगल में बस ऐसी ही नींद आती है। पलक मारते ही सब लोग जाग उठे। टार्च जलाकर देखा गया तो बिच्छू तो नहीं था, पर एक कानखजूरा था, जो लगभग आठ इंच लम्बा था। वह बेचारा केवल कानखजरा होने के कारण मार दिया गया। मैं नहीं जानता कि यह प्राणी मनुष्य का कुछ अहित करता है या नहीं; कम से कम मैंने आज तक किसी व्यक्ति को कानखजूरे के कारण कोई हानि उठाते नहीं देखा। इसके विपरीत जितने कानखजूरे मेरे सामने निकले, वे सब लोगों द्वारा मार ही डाले गये।

कानखजूरा-संहार के पश्चात् हमने फिर अपनी चादरों पर लेटने की कोशिश की। पर शीघ्र ही अनुभव हुआ कि गंगा की लहरों पर से आने वाली हवा अधिक और अधिक ठंडी हुई जारही है; इतनी ठंडी कि बिना ओढ़ने का कुछ वस्त्र लिये नींद आना सम्भव न होगा। कुछ देर पड़े रहने के बाद आवश्यकता ने हमें उद्यमशील बना दिया। उस अंधेरे में भी इधर-उधर

बिखरी पड़ी लकड़ियों को बटोरकर लाना हमारे लिए कठिन नहीं हुआ। पं० हरिवंश तो पास के जंगल में से ही कुछ झाड़-झंखाड़ खींच लाये। कुछ सूखी और कुछ गीली लकड़ियां मिलाकर अग्नि प्रज्वलित की गई। पहले तो कुछ दिक्कत हुई, पर शीघ्र ही आग स्वयं ही अपने लिए ईंधन सुखाने लगी। इसी समय पूर्व की पहाड़ियों के पीछे चन्द्रोदय के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे।

चन्द्रमा की चांदनी जब सब ओर बिखर उठी, तब सारी दुनियां ही जैसे बदल गई। जो चीजें अंधेरे में खड़ी केवल भय और शंका उत्पन्न करती थीं, वे इस रुपहले प्रकाश में सुन्दर रहस्य-सा बनकर खड़ी हो गईं। अब यदि इनमें से निकलकर कोई हिंस्र पशु हमारी ओर बढ़े भी, तो भी वह हमारे लिए भयजनक नहीं हो सकता। सफेद बालू, जिस पर हम लेटे थे, अंधेरे में धुंधली दीखती थी; अब चमकने लगी। थोड़ी दूर बहती हुई गंगा की धारा, जो पहले केवल लहरों के शब्द से अनुमेय थी, अब चांदनी में चिलकती हुई दिखाई देने लगी। दूर खड़ा हुआ वन चित्र की भांति सुन्दर हो उठा। मन कुछ अधिक निश्चिन्त हुआ।

मैं उस वक्त सो चुका था। नींद बहुत पक्की नहीं थी। एकाएक कोई तीखी जोरदार आवाज कान में पड़ी। एकदम आंख खुल गई। उठा, तो देखा, दो-तीन साथी बेतहाशा भागे चले आ रहे हैं। पं० हरिवंश जरा ज्यादा गहरी नींद में सो रहे थे; शोरगुल सुनकर वह भी जाग उठे। सुनकर जो कुछ मामला समझ में आया, वह यह था कि तीन साथियों को प्यास ने सताया। वे तीनों मिलकर पानी पीने के लिए चले। अभी वे धारा के पास पहुंचे भी नहीं थे कि यह तीखी जोरदार आवाज सुनाई पड़ी। आवाज किस पशु की है, यह न जान पाने के कारण वे बेतहाशा अपने डेरे——जहां हम सब सो रहे थे——की ओर भाग खड़े हुए। धारा के आस-पास दूर तक पत्थर फैले हुए थे। उसमें बदहवास होकर दौड़ने से इनमें से लगभग सभी को मामूली चोटें भी आई थीं। आवाज जोर की अवश्य थी, किन्तु वह पाड़े की थी, जो इन वनों का घासाहारी जन्तु है। हिरन और नीलगाय के बीच में इसे स्थान दिया जा सकता है। हिरनों की ही तरह यह भी बाघ और चीतों का भोजन है। पर इसकी आवाज अनजान आदमी को न केवल चौंका देने, बल्कि डरा देने के लिए काफी होती है। पर हमारे साथी पाड़े की आवाज को सुनकर इस प्रकार बदहवास होकर भाग आये, इसकी हम से जितनी तरह सम्भव थी, हम सभी ने हँसी उड़ाई।

सुभाष ने सहानुभूति जताते हुए पूछा: "क्यों भाई कृष्ण, बाघ था क्या? बहुत बड़ा था?"

हरिवंश जी बोले: "सुभाष, देखना कहीं इन्हें बाघ ने पंजा-

वंजा तो नहीं मार दिया ! क्यों कृष्ण, पीछे भागा था क्या वह ?"

डा० अनन्तानन्द बोले : "था बड़ा चालाक ! पहले तो छिपकर चुपचाप बैठा रहा और जब ये पास पहुंचे तो चिल्लाया 'पें एं एं' !"

पाड़े की आवाज 'पें एं एं' कुछ इसी ढंग की थी। उन तीनों ने बहुत कुछ सफाई देने की कोशिश की कि इस प्रकार भागने में उनका कोई दोष नहीं है। उनकी जगह यदि और कोई भी होते, तो वे भी इसी तरह दौड़ते। परन्तु उनकी बात किसी ने सुनी नहीं '

मैंने इन लोगों का पक्ष लेते हुए कहा : "तुम लोग पानी पीने गये और उसने तुम्हें पानी नहीं पीने दिया ! गंगा की धार क्या उसके बाबा की है, जो तुम्हारे पास पहुंचते ही उसने तुम्हें चिल्लाकर डरा दिया। उसकी ऐसी की तैसी ! और तुम डरकर भागे ही क्यों ?"

' वे लोग अब खीझ चुके थे। एक बोला : "आप होते तो इससे भी तेज भागते।"

डा० अनन्तानन्द बोले : "क्यों जी, आप लोग हाकी खेलते वक्त तो इतना तेज नहीं दौड़ते ।"

पं० हरिवंश बोले : "कृष्ण का गुर मालूम हो गया। आगे से जब कभी हाकी का मैच होगा, तो एक पाड़ा मैदान के बाहर लाकर बांध दिया करेंगे। जब कृष्ण को तेज दौड़ाने की जरूरत होगी, तो पाड़े को एक सुई चुभा दिया करेंगे।"

वे तीनों यह मानने को किसी तरह तैयार नहीं थे कि वह बोलकर उन्हें डरा देने वाला प्राणी पाड़ा था। अगर उसे बाघ न भी माना जाय, तो चीता, बघेरा, जरक, भालू, और कुछ नहीं, कम से कम भेड़िया तो माना ही जाना चाहिए। पर खेद, कि उसे पाड़े से अधिक कुछ भी नहीं माना गया। रही-सही रात इसी आनन्द परिहास में कट गई। ज्यों-ज्यों सबेरा निकट आने लगा सर्दी बढ़ती गई और हम आग में ईंधन झोंक-झोंक कर उसे और तेज करते गये । जिन्हें नींद आ गई, वे सो गये। जिन्हें नहीं आई, वे हँसते रहे ।

३

पाड़े की घात में बाघ

सूर्योदय होने से काफी पहले ही सब जाग उठे। इसका मुख्य कारण यह था कि कुछ लोग सोये नहीं थे; उन्होंने जब प्रभात का प्रकाश फैलते देखा तो सबको जगा दिया। हम लोग नित्य कर्मों से निवृत्त होकर जब अपना सामान समेटकर रात के छूटे हुए रास्ते को फिर ढूंढने के लिए चलने को तैयार हुए, तब तक भी सूर्य के दर्शन उदयाचल पर नहीं हुए थे, पर उजाला सब ओर फैल चुका था।

हरिवंश जी ने कहा कि उस ओर से चलेंगे, जहां उस दुष्ट पाड़े ने हमारे भोले साथियों को डराया था। इसे भी मजाक का एक और साधन मिला जानकर सब ने उत्साह के साथ उसी ओर चलने का अनुमोदन किया।

रात में जहां पाड़ा बोला था, वह स्थान मुश्किल से दो सौ कदम था। दिन के प्रकाश में यहां तक पहुंचते क्या देर लगनी थी! गंगा की धारा यहां मोड़ खाकर वापस लौटती थी। एक ओर धारा से कुछ अलग हटकर एक गढ़े में बहुत सा पानी भरा था। इस गड्ढे के आस पास बहुत दूर तक मिट्टी गीली थी। धारा और गड्ढे का पानी शायद इसे महीनों इसी प्रकार गीला रखेंगे।

बड़े आश्चर्य की बात यह कि हम जहां पाड़े के पदचिह्न देखने आये थे, वहां इस गीली मिट्टी में बहुत ही स्पष्ट बाघ के बहुत से पदचिह्न बने हुए थे। बाघ और पाड़े के पदचिह्नों में किसी प्रकार की समानता नहीं कि संदेह की गुंजाइश हो। साथ ही दोनों की आवाज में भी कोई समानता नहीं कि गलती से बाघ की आवाज पाड़े की आवाज समझी जा सके। हम चक्कर में पड़ गये।

कृष्ण की बन आई, बोला : "बाघ चालाक मालूम होता है डाक्टर जी; पाड़े की बोली बोलता है।"

उसी का रात का एक और साथी बोला : "नहीं रे, वह पाड़ा ही बाघ के पैर लगाकर यहां आया था।"

आवाज पाड़े की थी, पदचिह्न बाघ के हैं; दोनों ही बातें असंदिग्ध थीं । सोचते देखते थोड़ा और आगे बढ़े । तीस-पैंतीस कदम और आगे पाड़े के पदचिह्न थे । अब जाकर स्थिति कुछ समझ में आई । पाड़ा जब पानी पीने आया, उससे पहले ही बाघ यहां पर घात लगाये बैठा था । जिस समय ये साथी धारा की ओर जा रहे थे, उसी समय पाड़ा भी पानी पीने के लिए दूसरी ओर से आ रहा था । पाड़े ने अपनी सहज सतर्कता से घात में बैठे हुए बाघ को तुरन्त देख लिया और चेतावनी की आवाज देकर वह स्वयं भाग खड़ा हुआ । इस आवाज को सुनकर हमारे साथी भी भाग आये ।

अब हम फिर बाघ के पदचिह्नों की ओर लौटे । पदचिह्न खूब साफ और ताजे दिखाई पड़ रहे थे । इतना तो निश्चित ही था कि बीती रात्रि में यहां कोई बाघ आया था । जहां से हमारे साथियों ने उलटी दौड़ लगाई थी, वह स्थान पाड़े से तो काफी दूर था, पर अब अनुमान हुआ कि बाघ से वह बहुत दूर नहीं था । इसे संयोग का चमत्कार ही कहना चाहिए कि जब वे तीनों साथी अनजाने ही घात लगाकर बैठे हुए बाघ के पास पहुंचने ही वाले थे, उसी समय दूसरी ओर से पाड़ा आ गया और बाघ को देखकर बोल पड़ा ।

"मैं रात यही सोच रहा था कि आखिर पाड़ा बोला क्यों ?" पं० हरिवंश बोले : "जंगली पशु कभी भी अकारण नही बोलते । हर्ष, व्यथा, संकट अथवा दूसरे साथी की खोज इत्यादि थोड़ी सी गिनी चुनी बातें हैं, जिनके लिए ये विभिन्न प्रकार से बोलते हैं । पाड़ा बाघ को देखकर दूसरे सहचरों को सावधान करने के लिए ही बोला था ।"

"कृष्ण संभलकर रहना । बाघ तुझे देख गया है । आसानी से छोड़ेगा नहीं" सुभाष बोला ।

"मुझे तो देख-भालकर छोड़ गया । अबकी तू अपनी बारी समझ ।" कृष्ण अब क्यों चुप रहता ? अब उसका पक्ष बलवान हो गया था ।

पर बाघ और पाड़े की चर्चा में खड़े-खड़े दिन तो नहीं बिताया जा सकता था । हम आगे चल पड़े । इस समय सूर्य की धूप गंगा पर और उसके दोनों तटों पर खड़े, बरसात से हुए घने जंगलों पर पड़ रही थी । ऐसा मालूम हुआ कि जैसे नाटक में किसी क्रूरतापूर्ण तथा डरावने दृश्य के बाद नया सौम्य दृश्य प्रारम्भ हुआ हो ।

वन बिलकुल सुनसान थे । हमारे सिवाय अब मीलों तक इनमें कोई आदमी नहीं है; और ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते जायेंगे, मनुष्यों की बस्ती से अधिक और अधिक दूर होते जायेंगे । हाल की बीती हुई बरसात जैसे इन्हें अच्छी तरह धोकर स्वच्छ और चमकीला बना गई है । पर ऊंची-ऊंची घास और अत्यधिक हरियाली ने सब ओर ऐसा घना आवरण खड़ा कर दिया है कि बीस कदम परे क्या है, कुछ भी मालूम नहीं हो सकता । झाड़-झंखाड़ों

को पार करके दृष्टि वहां तक पहुंच ही नहीं सकती। वनों की इसी ताजी सघनता को देखने के लिए हम निकले हैं। दिन के प्रकाश में यह सब चित्त को आनन्दित करने वाला प्रतीत हुआ।

चलते-चलते सुभाष ने पूछा : "क्यों हरिवंशजी, यदि ये लोग रात बाघ के पास पहुंच जाते, तो वह क्या करता ?"

प्रश्न जितने सीधे ढंग से कर दिया गया, उतने सीधे ढंग से उत्तर देना कठिन था। पं० हरिवंश हँस दिये; बोले : "तीनों को पकड़कर गप्प से खा जाता।"

मैंने कहा : "नहीं हरिवंश जी, टालने की बात नहीं। आखिर ये लोग उसके पास पहुंच तो सकते ही थे। यह कोई असम्भव कल्पना नहीं है कि ये उसके पास पहुंच जाते।"

डाक्टर अनन्तानन्द ने कहा : "बाघ घात लगाकर शिकार की प्रतीक्षा कर रहा था, अतः वह भूखा तो अवश्य होगा। ऐसे समय उसका आक्रमण कर बैठना अस्वाभाविक नहीं था।"

"तो क्या आप समझते हैं कि बाघ ने इन्हें देखा नहीं" पंडित हरिवंश ने गंभीर होकर कहा : "अगर बाघ और चीते इतने असावधान हुआ करते तो वे कभी के भूमंडल से लुप्त हो चुके होते।"

पंडित हरिवंश के संकेत को समझकर हम सभी की मुद्रा गम्भीर हो गई। पं० हरिवंश ने और स्पष्ट करके कहा : "बाघ ने केवल इन तीनों को ही नहीं देखा, बल्कि हम सबको भी देखा है।"

"फिर उसने भूखे होते हुए भी हम लोगों पर आक्रमण क्यों नहीं किया ?" कृष्ण ने पूछा।

'क्योंकि हम बहुत सारे थे" सुभाष ने उत्तर दिया।

"यह बात नहीं है" पं० हरिवंश बोले "बाघ इतने या इतने से दुगने आदमियों की कभी परवाह नहीं करता। बल्कि जिस तरह संयोग-वश ये भाग खड़े हुए थे, वह तो मृत्यु को बाकायदा निमंत्रण देकर बुलाने जैसा था।"

"फिर बाघ ने आक्रमण क्यों नहीं किया ?" अबकी बार सुभाष ने पूछा।

"क्योंकि बाघ नरभक्षक नहीं था।" मैंने कहा।

'नरभक्षक' शब्द मेरे मुंह से निकलते ही और साथियों को तो सनसनी अनुभव हुई ही, खुद मुझे बड़ा विचित्र लगा। रात का सम्पूर्ण वातावरण हमारी स्मृति में ताजा था। उसके साथ इस 'नरभक्षक बाघ' ने मिलकर कल्पना को सचेत कर दिया और नरभक्षकों के अनेकानेक पढ़े सुने वृत्तान्त एकाएक याद हो आये। साथ ही यह भी खयाल आया कि

कई बार ये बाघ और चीते केवल मनुष्य की भीरुता और दुर्बलता को जानकर ही नरभक्षक बन जाते हैं।

डाक्टर अनन्तानन्द बोले : "इन्हें तो मालूम नहीं था कि वह प्राणी कौनसा है, जिसकी आवाज सुनकर ये भागे। परन्तु यदि यह मालूम भी हो कि वह बाघ या चीता ही है, तो भी इस तरह भागना उचित नहीं था।"

"भागते को देखकर तो कुत्ता भी शेर हो जाता है" सुभाष ने समर्थन किया।

डाक्टर अनन्तानन्द कहने लगे: "अल्मोड़ा जिले में एक चीता नर-भक्षक बन गया था। उसने साल भर के अन्दर-अन्दर पचासों आदमी मार डाले। लोगों को घर से बाहर निकलते समय यही भय लगा रहता था कि पता नहीं चीता कब और कहां से आकर दबोच ले। कई बार वह दिन-दहाड़े आता और काम करते हुए लोगों में से किसी एक को पकड़कर ले जाता। आस-पास के लोग चाहे जितना चीखते-चिल्लाते, पर उसकी वह रत्ती भर परवाह न करता। अन्त में बहुत उत्पात करने के बाद बहुत कठिनाई से वह मारा गया। पर जानते हैं, वह नरभक्षक बना कैसे था?"

उस विशिष्ट चीते के बारे में हम कुछ भी नहीं जानते थे, अतः जिज्ञासा से देखते रह गये। डाक्टर अनन्तानन्द फिर कहने लगे : "तराई के आसपास के गांवों में पशु बहुत पाले जाते हैं, क्योंकि जंगलों में उन्हें चरने की सुविधा होती है। प्रायः दो-चार ग्वाले ६०-७० भैंसों को चरा लाने के लिए काफी होते हैं।

"एक बार एक ग्वाला अकेला ही अपनी भैंसों को चरा रहा था। एक चीता दिखाई पड़ा। चीता भूखा था और एक छोटी सी भैंस पर आक्रमण करना चाहता था। वन में आने जाने के अभ्यस्त ग्वाले ऐसे अवसर पर खड़े होकर शोर मचाते हैं और आवाज देकर दूसरी भैंसों को अपने पास बुलाने की कोशिश करते हैं। भैंसें ग्वालों की आवाज को पहिचानती हैं और ऐसे अवसर पर प्रायः स्वयं एकत्र हो जाती हैं। परन्तु यह ग्वाला संभवतः ऐसी परिस्थिति में पहली बार पड़ा था। चीते को देखते ही वह घबरा उठा और "बाघ! बाघ!!" चिल्लाता हुआ डरकर एक ओर को भागा। चीते ने उसे भागते देखा, तो भैंस को छोड़कर वह उसी पर झपटा। चीते या बाघ के सामने से आदमी दौड़कर नहीं बच सकता। दो झपट्टों में ही चीते ने उसे दबोच लिया।

"इससे चीते को शायद यह अनुभव हो गया कि अन्य पशुओं की अपेक्षा मनुष्य को मारना अधिक आसान और खाना अधिक आनन्दप्रद है। उसके बाद उसने इतने सारे आदमियों की हत्याएं कीं।"

"यह केवल एक दुर्योग था, जिसने चीते को नरभक्षक बना दिया" मैंने कहा ।

चीता सीधा ग्वाले पर ही झपटा

अब हम चलते-चलते उस स्थान पर आ गये थे, जहां रात हमें अपना रास्ता छोड़कर विवशता में नाले के साथ-साथ गंगा की ओर चल देना पड़ा था। नाला बहुत चौड़ा था और इस समय दिन के प्रकाश में यह बात खूब समझ में आ गई कि रात में इस रास्ते को ढूंढने का प्रयत्न न करके हमने अच्छा ही किया, क्योंकि हम सारी रात भी इसे ढूंढते रहते, तब भी यह हमें लगभग इसी समय मिल पाता ।

रास्ते पर पहुंच जाने के बाद चलने की एक दिशा निश्चित हो गई। नाले के साथ-साथ भटकना समाप्त हुआ । वैसे तो जैसा भ्रमण हमारा इस बार का था, उसमें रास्ते-रास्ते चलते रहने की बहुत गुंजाइश नहीं थी; फिर भी कुछ समय तक—जब तक कि कोई नई परिस्थिति पैदा न हो जाय—तो अब रास्ते-रास्ते चलना ही था। यह रास्ता भी विचित्र है ! साधारण दिनों में भी इस पर यातायात बहुत कम होता है और बरसात के

चार महीने तो यह एकदम बंद रहता है। इससे लाभ उठाकर घास और झाड़ियां इस रास्ते को भी बाकी जंगल का सा ही रूप दे देने का प्रयत्न करती हैं। इस रास्ते पर तीन एक घंटे चलकर हम गौरी वन पहुंच जायेंगे। वहां भोजन बनाकर, खाकर, कुछ देर विश्राम करके फिर दिन ढले आगे बढ़ेंगे।

४

नरभक्षक चीता

अब की बार नरभक्षक का सूत्र पकड़ा पं० हरिवंश ने; सुनाने लगे : "गढ़वाल, अल्मोड़ा और नैनीताल की पहाड़ियों में बाघ और चीते नर-भक्षक होते ही रहते हैं। पर जब जिस इलाके में कोई बाघ या चीता नर-भक्षक हो जाता है, तब वहां के रहने वालों की अच्छी मुसीबत आ जाती है। यों तो नरभक्षक एक दिन में—वह भी दो-चार दिन छोड़कर—एक ही व्यक्ति को मारता है; पर वह व्यक्ति कौन होगा, यह निश्चय न होने से सभी लोग भय और आतंक से बेचैन रहते हैं! डर के मारे लोग सांझ होने से पहले ही अपने घरों में आकर घुस जाते हैं और सारी रात दरवाजा अन्दर से बन्द किये रहते हैं। कितनी ही बड़ी आवश्यकता होने पर भी वे दरवाजा खोलने की हिम्मत नहीं करते।"

"क्या नरभक्षक को मारना बहुत कठिन है, हरिवंश जी?" सुभाष ने प्रश्न किया।

"कठिन या सरल तो मारने वाले के ऊपर निर्भर है। साधन एवं साहस-सम्पन्न व्यक्ति के लिए कठिन नहीं भी हो सकता है, जबकि साधन-हीन तथा भीरु व्यक्ति के लिए नरभक्षक बाघ को मारना कठिन ही नहीं, असंभव है। पर कुछ कुछ ऐसा आभास होता है, जैसे आदमी का मांस खाने के बाद इन पशुओं में भी बुद्धि आ जाती है और फिर ये भी खूब सूझ-बूझ से काम लेने लगते हैं।"

"सोच-विचारकर काम करते हैं?" देवेन्द्र ने विस्मित होकर कहा।

"इस बात को अभी तक ठीक इसी रूप में सिद्ध तो नहीं किया जा सकता, परन्तु ऐसे अनेक उदाहरण मेरे सामने हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि नरभक्षक प्राणियों ने ऐसे कार्य किये, जो बिना बुद्धिपूर्वक विचार के नहीं किये जा सकते थे और साधारण बाघ-चीते वैसे नहीं करते हैं।"

"वह कैसे?" मैंने पूछा।

चार महीने तो यह एकदम बंद रहता है। इससे लाभ उठाकर घास और झाड़ियां इस रास्ते को भी बाकी जंगल का सा ही रूप दे देने का प्रयत्न करती हैं। इस रास्ते पर तीन एक घंटे चलकर हम गौरी वन पहुंच जायेंगे। वहां भोजन बनाकर, खाकर, कुछ देर विश्राम करके फिर दिन ढले आगे बढ़ेंगे।

४

नरभक्षक चीता

अब की बार नरभक्षक का सूत्र पकड़ा पं० हरिवंश ने; सुनाने लगे : "गढ़वाल, अल्मोड़ा और नैनीताल की पहाड़ियों में बाघ और चीते नर-भक्षक होते ही रहते हैं। पर जब जिस इलाके में कोई बाघ या चीता नर-भक्षक हो जाता है, तब वहां के रहने वालों की अच्छी मुसीबत आ जाती है। यों तो नरभक्षक एक दिन में——वह भी दो-चार दिन छोड़कर——एक ही व्यक्ति को मारता है; पर वह व्यक्ति कौन होगा, यह निश्चय न होने से सभी लोग भय और आतंक से बेचैन रहते हैं! डर के मारे लोग सांझ होने से पहले ही अपने घरों में आकर घुस जाते हैं और सारी रात दरवाजा अन्दर से बन्द किये रहते हैं। कितनी ही बड़ी आवश्यकता होने पर भी वे दरवाजा खोलने की हिम्मत नहीं करते।"

"क्या नरभक्षक को मारना बहुत कठिन है, हरिवंश जी?" सुभाष ने प्रश्न किया।

"कठिन या सरल तो मारने वाले के ऊपर निर्भर है। साधन एवं साहस-सम्पन्न व्यक्ति के लिए कठिन नहीं भी हो सकता है, जबकि साधन-हीन तथा भीरु व्यक्ति के लिए नरभक्षक बाघ को मारना कठिन ही नहीं, असंभव है। पर कुछ कुछ ऐसा आभास होता है, जैसे आदमी का मांस खाने के बाद इन पशुओं में भी बुद्धि आ जाती है और फिर ये भी खूब सूझ-बूझ से काम लेने लगते हैं।"

"सोच-विचारकर काम करते हैं?" देवेन्द्र ने विस्मित होकर कहा।

"इस बात को अभी तक ठीक इसी रूप में सिद्ध तो नहीं किया जा सकता, परन्तु ऐसे अनेक उदाहरण मेरे सामने हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि नरभक्षक प्राणियों ने ऐसे कार्य किये, जो बिना बुद्धिपूर्वक विचार के नहीं किये जा सकते थे और साधारण बाघ-चीते वैसे नहीं करते हैं।"

"वह कैसे?" मैंने पूछा।

"मैंने एक विश्वस्त शिकारी का लिखा हुआ विवरण पढ़ा था," पं० हरिवंश सुनाने लगे : "एक बार एक लकड़हारा जंगल में लकड़ी काटने गया। जैसा कि वह सदा करता था, लकड़ी लादकर लाने के लिए वह अपने तीन गधे भी साथ ले गया था। गांव से काफी दूर घने जंगल में जाकर उसने लकड़ियां काटीं। तब तक उसके गधे चरते रहे, जिन्हें उसने एक ही रस्सी से बांध दिया था, जिससे वे एक साथ ही रहें और लौटते समय उन्हें अलग-अलग ढूंढने में समय बरबाद न करना पड़े। दोपहरी ढलने लगी थी। लौटने के लिए गधों पर लकड़ी लादने से पहले लकड़हारे ने सोचा कि थोड़ा आराम कर लूं; और वह एक पेड़ की घनी छाया में पेड़ की जड़ के सहारे कमर टिकाकर बैठ गया। उसे बैठे अभी पांच मिनट भी नहीं हुए थे कि उसने अपने गधों को बहुत ही उत्तेजित और भयभीत अवस्था में इधर-उधर भागने की कोशिश करते देखा। पर वे सब बंधे हुए थे और अलग-अलग भागने में असमर्थ थे।

"कोई बदमाश चीता मालूम होता है, वह बुदबुदाया। इससे पहले भी कई बार बदमाश चीते उसके गधों को इस तरह डरा चुके थे। हर बार उसने गधों के पास पहुंचकर उन्हें आश्वस्त किया था और चिल्लाकर तथा ढेले फेंककर चीते को भगाया था। आज भी वह अपनी कुल्हाड़ी लेकर फुर्ती से उठा और भागकर गधों के पास पहुंचा। पर इस भागते समय भी उसके मस्तिष्क में यह छोटी सी बात कौंध गई कि उसने हाल ही में कहीं नरभक्षक चीते के होने की अफवाह सुनी थी। इस जरा-सी बात को सोचकर उसके शरीर में सनसनी-सी दौड़ गई! फिर भी वह गधों के पास पहुंचा। वे तीनों झाड़ियों के एक झुण्ड की ओर देख रहे थे और बहुत डरे हुए मालूम हो रहे थे। लकड़हारे ने उनकी पीठ थपथपाई और दो-तीन बार चिल्लाकर आवाज दी। दो-तीन छोटे-छोटे ढेले और पत्थर आस-पास से उठाकर उन झाड़ियों की ओर फेंके, जिनकी ओर गधे देख रहे थे; और स्पष्ट था कि खतरा उसी दिशा में है। पहले सदा ही चिल्लाना और ढेले फेंकना झाड़ियों में छिपे खतरे को भगा देने के लिए पर्याप्त होता था; परन्तु इस बार कुछ और ही हुआ। झाड़ियों में से दबी हुई, किन्तु डरावनी गुर्राहट की आवाज आई और पत्तियों की आड़ में उसे दिखाई पड़ा कि एक शैतान चीता उसकी ओर निश्चयपूर्ण दृष्टि से देख रहा है। चीते के अधखुले मुंह में से उसके लम्बे कीले चमक रहे थे और सफेद, लम्बे मूछों के बाल डरावने मालूम हो रहे थे। अबकी बार लकड़हारे को सचमुच डर लगा! ऐसा अड़ियल चीता उसने पहले कभी नहीं देखा था। पर भागकर जान बचा पाना असम्भव था, अतः उसने मन में डरते हुए भी ऊपर से साहस का प्रदर्शन किया और अपनी कुल्हाड़ी को दो-तीन बार हवा में

घुमाया। चीते को कुछ गालियां दीं और अन्त में कुल्हाड़ी का उलटा सिरा एक लकड़ी पर कई बार मारा, जिससे जोर-जोर की 'ठक-ठक' की आवाज हुई। इस आवाज का इतना परिणाम अवश्य हुआ कि चीते की वह विकराल मूर्ति आंखों के सामने से हट गई; परन्तु उसके गधे जिस प्रकार का भयपूर्ण आचरण कर रहे थे, उससे स्पष्ट था कि चीता झाड़ियों में छिपा हुआ है, दूर नहीं गया है। फिर भी चीता आंखों के सामने नहीं रहा, इससे लकड़हारे को ढाढस हुआ। उसने अपनी काटी हुई लकड़ियां जल्दी-जल्दी गधों पर लादीं और अत्यन्त सावधानी से आगे-पीछे सब ओर देखता हुआ, वह घर की ओर लौटने लगा। कुछ चीते को डराने के उद्देश्य से तथा कुछ सहायता पाने के खयाल से वह जोर-जोर से पुकारता जाता था कि यदि कोई आस-पास हो, तो उसकी सहायता के लिए आ जाय।

"कुछ दूर तक तो उसके गधे भय प्रदर्शित करते रहे, पर अब वे भी कुछ आश्वस्त प्रतीत होते थे और ऐसा मालूम होता था कि चीता दूर चला गया है। फिर भी लकड़हारा सावधानी के तौर पर चिल्लाता हुआ ही आगे बढ़ रहा था। एकाएक उसके गधे फिर बेकाबू हो उठे! लकड़हारा समझ तो गया कि चीता फिर कहीं आस-पास ही आ पहुंचा है, परन्तु बहुत य न करने पर भी वह उसे खोज पाने में असमर्थ रहा। अब वह लगभग जंगल की बाहरी सीमा के पास पहुंच रहा था और उसकी आवाज के प्रत्युत्तर में किसी आदमी की दो-एक आवाजें भी सुनाई दी थीं। लकड़हारे को यही उपाय सर्वोत्तम जंचा कि जैसे भी हो, रास्ता जल्दी से जल्दी तय किया जाय। वह अपने दाईं ओर, जिस ओर घना जंगल था—तथा पीछे की ओर मुड़ मुड़कर देखता जाता था। परन्तु जिस ओर से मृत्यु आई, उस ओर उसने एक बार भी न देखा था।

"रास्ते के किनारे एक बड़ा पेड़ था, जिसका तना भूमि के साथ ६० अंश पर झुका हुआ था। घनी शाखाएं, घने पत्तों से ढंकी हुई रास्ते के आर-पार फैली थीं। इन शाखाओं के ऊपर से ही चीता वज्र की तरह लकड़हारे पर गिरा। लकड़हारे को सोचने, संभलने अथवा चिल्लाने का मौका तक न मिला।"

"तो क्या चीता आकर पेड़ पर चढ़ गया था?" सुभाष ने पूछा।

"हां! चीता सरलतापूर्वक पेड़ पर चढ़ जाता है और अनेक बार शिकार के लिए इसी तरीके को बरतता है। पर आश्चर्य यह है कि यह कल्पना करके कि लकड़हारा रास्ते पर जाता हुआ उस पेड़ के नीचे से गुजरेगा, चीता पहले से छिपे-छिपे तेजी से बढ़कर उस पेड़ पर जा चढ़ा और अवसर आते ही ऊपर से लकड़हारे पर टूट पड़ा।"

कुछ देर तक हम सभी इस सत्य से आतंकित-से हो रहे।

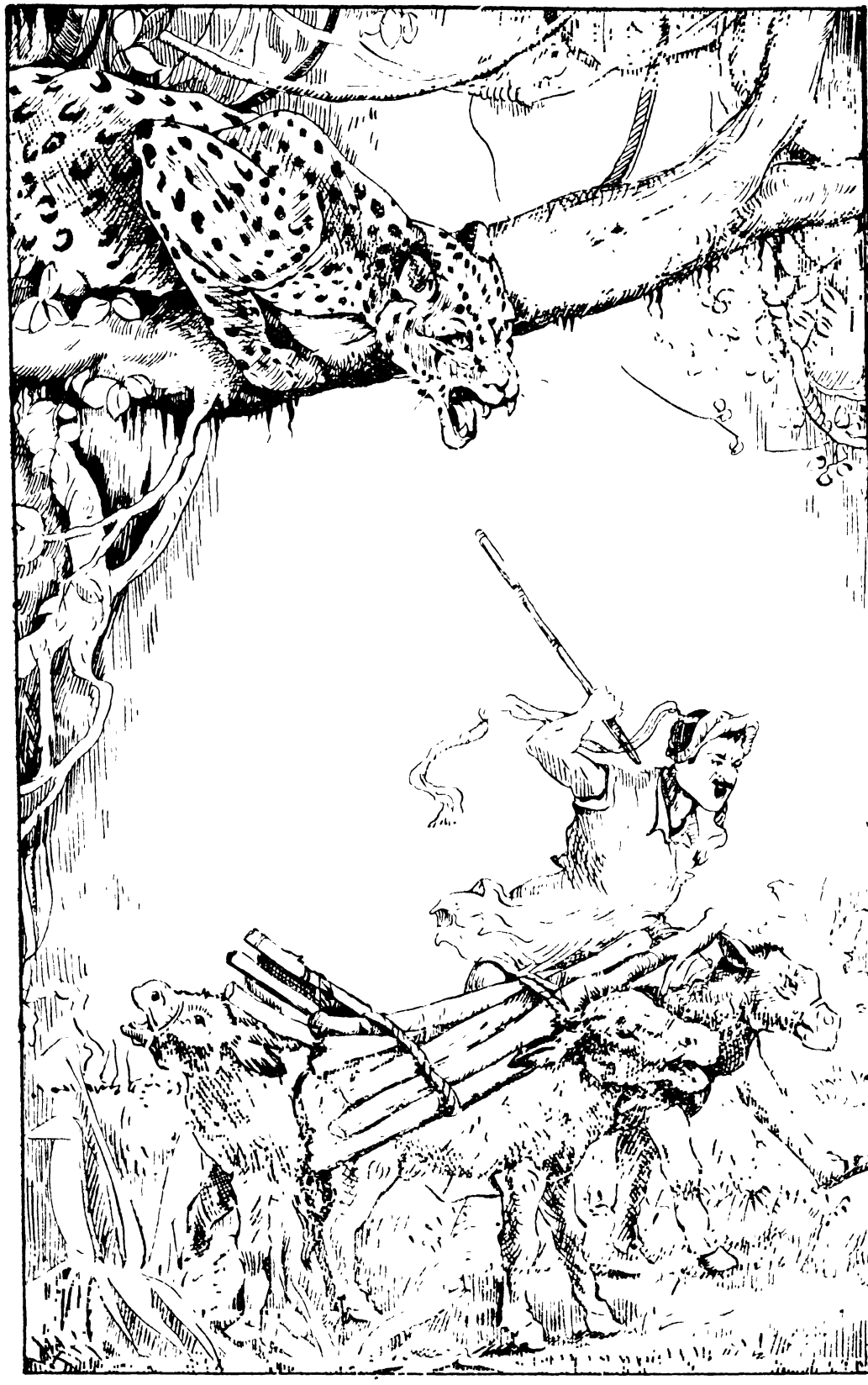

पेड़ की शाखा से चीता वज्र की भाँति कूदा

"कई बार मैंने भी इसी बात को सोचा है" मैं बोला : "कि ये पशु नरभक्षक होने से पहले अन्य दूसरे पशुओं की भांति ही आचरण करते हैं और नरभक्षक बनने के बाद इनकी गतिविधि एकदम बदल जाती है।"

"त्सावो के नरभक्षक रेलगाड़ी के डब्बे में से एक कुली को उठा ले गये थे।"

"रेलगाड़ी के डब्बे म से ?" प्राय. एक साथ ही कई कंठों ने विस्मय के साथ पूछा।

उनका विस्मय स्वाभाविक था। वे वन-पशु, जो साधारणतः गांवों तक आते भी डरते हैं, रेलगाड़ी के डब्बे में से, जिसके आगे रहस्यपूर्ण और जोरदार आवाज करता हुआ इंजिन भी लगा होगा, आदमी को उठा ले जायं ! बात चौंका देने वाली है। परन्तु इन 'त्सावो' के नरभक्षकों ने और भी अनेक आतंकित करने वाले कारनामे किये थे। मैंने इनका हाल पढ़ा था, अत बोला : "तब की बात है जब अफ्रीका में युगांडा राज्य में रेल बिछाई जा रही थी। काम होते-होते जब रेल 'त्सावो' तक बिछ चुकी, तब एक विचित्र समस्या उपस्थित हुई। 'त्सावो' एक नदी का नाम है। यह नदी घने जंगलों में से होकर बहती है, और जहां अब 'त्सावो' शहर बसा हुआ है, उस स्थान पर पहले अनेकानेक हिंसक पशु निवास करते थे।

"रेल बनाने का काम चालू था। सैकड़ों कुली दिन भर मिट्टी ढोने, कूटने, सलीपर रखने तथा रेल की पटरी बिछाने में व्यस्त रहते थे। दिन भर काम करके थकान से चूर होकर रात को वे बेहोश होकर सोते थे। परिश्रम और अर्थोपार्जन को छोड़कर तीसरी बात की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता था।

"एक दिन सवेरे जब मजदूरों की हाजिरी ली जा रही थी, एक आदमी अनुपस्थित पाया गया। इतनी दूर बियाबान में, जहां आस-पास कोई बस्ती नहीं थी, मजदूर का अनुपस्थित होना विचित्र बात थी। पर उस समय किसी ने इस बात की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। जब वह आदमी दोपहर तक और फिर शाम तक भी नहीं लौटा, तब लोगों को उसके लिए चिन्ता अवश्य हुई। परन्तु रेल-निर्माण की कठोर व्यस्तता में इस चिन्ता को पनपने का पर्याप्त अवसर नहीं मिला। रात को सोने से पूर्व उन्होंने उस अनुपस्थित व्यक्ति के बारे में आपस में काफी बात चीत की; परन्तु नींद ने इस बातचीत को भी देर तक नहीं चलने दिया।

"इस चर्चा को उभरने का मौका मिला तब, जबकि अगले दिन सवेरे की हाजिरी के वक्त एक और आदमी गायब पाया गया। अज्ञात कारण से गायब हुए इन दो व्यक्तियों के कारण सभी मजदूर आतंकित हो उठे ! आस-पास चारों ओर दूर तक उन्हें ढूंढने की कोशिश की गई और दोपहर

तक के प्रयत्न के बाद संयोगवश ही उन्हें एक आदमी की लाश मिली, जिसका बहुत सा भाग किसी प्राणी का खाया हुआ था।

"देखते-देखते यह संवाद सभी को मालूम हो गया। दूसरे व्यक्ति की लाश न मिली, फिर भी उसके बारे में सब कुछ सही-सही अनुमान कर लिया गया। जिस-जिसने भी यह पक्की खबर और सही अनुमान सुने, उसी का चेहरा भय के मारे काला पड़ गया। काम करने में किसी का उत्साह न रहा। शरीर जैसे-तैसे काम करता भी रहा, पर मन तरह-तरह की संभावनाओं और आशंकाओं में फिरता रहा।

"अगली रात में लोग बहुत सावधान थे। दो-तीन पहरेदार भी रखे गये थे। वैसे तो भय के मारे किसी को भी पक्की नींद न आई थी, परन्तु अगले दिन एक और व्यक्ति गायब था और कोई यह न बता सका कि वह कब गायब हुआ? यद्यपि लोगों का यह अनुमान हो गया था कि यह करतूत किसी शेर की है, तो भी अभी तक किसी ने शेर को आते अथवा आदमी को ले जाते नहीं देखा था।

"उसके बाद लोगों ने काम करने से इन्कार कर दिया। जीविका कमाने की अपेक्षा जीवित रहना उन्होंने अधिक आवश्यक समझा। परन्तु काम अंग्रेजी सरकार का था और रेल लाइन बननी ही चाहिए। मजदूरों को तरह तरह से तसल्ली दी गई और उनकी रक्षा के लिए एक सैनिक टुकड़ी भी मंगाई गई। खाकी वर्दी पहने और राइफल लिये हुए सैनिकों को देखकर मजदूरों का धैर्य कुछ बंधा। परन्तु अबकी बार रात में पहली बार शेरों की भयावनी गुर्राहट सुनाई पड़ी। लोग डर के मारे गुमसुम होकर पड़ रहे। अगले दिन हाजिरी के समय एक सिपाही गायब था।"

"सिपाही गायब ?" सुभाष ने पूछा।

"हां" मैंने कहा : "वनराज के लिए मजदूर और सिपाही में क्या भेद होना था ! ज्यों ज्यों लोग शेरों से बचने की कोशिश करने लगे, त्यों-त्यों शेरों की हिम्मत बढ़ने लगी। बाद में तो वे समझ गये दीखते थे कि आदमी उनका भोज्य है और उसे चाहे जब, और चाहे जैसे पकड़ा जा सकता है। एक बार एक शेर दिन-दहाड़े एक मजदूर को पकड़ ले गया और एक बार चलती हुई मालगाड़ी के खुले डब्बे में से एक कुली को उठा ले गया। उसके बाद कोई आश्वासन, कोई प्रलोभन मजदूरों को काम पर नहीं रोक सका। सारे नियमों और अनुशासन को तोड़कर वे काम छोड़कर भाग गये।

"तीन महीने तक काम बिलकुल बन्द पड़ा रहा। इस बीच में वहां के इंजीनियर ने अविराम प्रयत्न के बाद शेरों के इस नरभक्षक जोड़े को मारा; तब कहीं जाकर फिर काम शुरू हुआ। और जब तक ये सिंह-दम्पति

मार नहीं दिये गये, तब तक किसी को भी ठीक मालूम नहीं था कि इन नरभक्षक शेरों की वास्तविक संख्या कितनी है।"

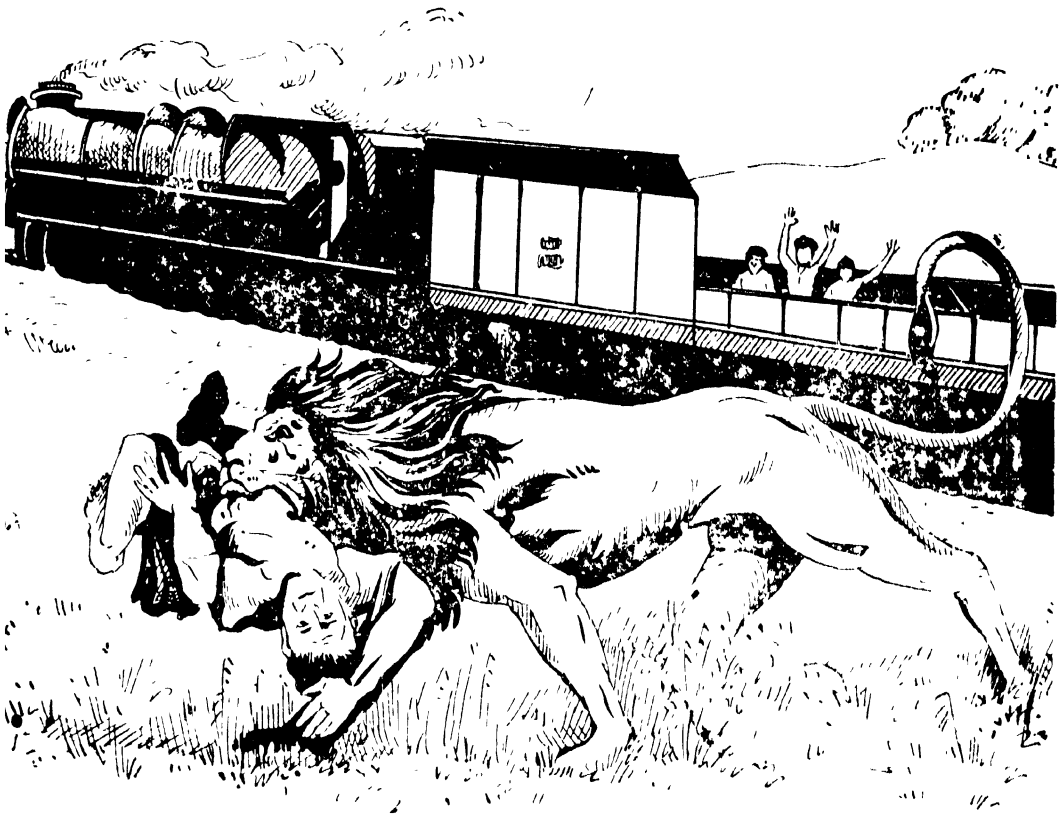

चलती गाड़ी में से शेर आदमी को ले गया

इस प्रकार बात-चीत करते हुए हम अपना रास्ता तय करते जा रहे थे कि एकाएक पं० हरिवंश ने 'शि, शि, शी शी' की आवाज करके हमें चुप हो जाने का संकेत किया। नरभक्षकों की कथा के बीच यह चुप और सावधान होने का संकेत चौंका देने वाला था! तुरन्त हम सब चुप और स्थिर खड़े हो गये। सामने देखा तो कोई बीस कदम आगे एक विशालकाय अजगर का पिछला आधा भाग रास्ते को पार करके सरकता हुआ बाईं ओर की झाड़ियों में लुप्त होता जा रहा था।

५

अठारह फुट लम्बा अजगर

अजगर को देखने की प्रतिक्रिया हम पर दो रूपों में हुई। पहली दृष्टि म उसे देखकर हम चुप, स्थिर खड़े हो गये; पर इसलिए नहीं कि उससे हमें डर लगा था, बल्कि इसलिए कि जिससे सब साथी अजगर को भली प्रकार देख सकें। उसके बाद (लगभग पांच-सात सैकन्ड बाद) हम सब तेजी से लपके। अजगर हमारे लिए कोई नई चीज नहीं था। इससे पहले हम कई अजगरों को पकड़ चुके थे। वे प्राय: सभी अजगर अलग-अलग परिस्थितियों में पकड़े गये थे, इसलिए अजगरों के प्राय: सभी दांव पेंच हमें अच्छी तरह मालूम थे। इस अजगर को भी हम आसानी से नहीं जाने देना चाहते थे, क्योंकि जितना अंश उसका हमें दिखाई पड़ा था, उससे हमने अनुमान किया था कि वह १८ फुट लम्बा रहा होगा। इतना बड़ा अजगर हमने पहले नहीं पकड़ा था। हमारे पकड़े हुए अजगरों में सबसे बड़ा अजगर १४॥ फुट था। इसलिए यदि किसी प्रकार यह अजगर हाथ लग जाय, तो फिर क्या कहने! फिर तो यह यात्रा सफल ही हो जाय।

हम तेजी से दौड़कर अजगर के पास पहुंचे। हमारे पास पहुंचने की आवाज शायद उसे अनुभव हो गई थी, क्योंकि उसने अपनी गति तीव्र करके जल्दी से झाड़ियों में घुसने की कोशिश की। परन्तु उसके यत्न करते-करते भी उसकी पूंछ हमारे हाथ आ ही गई और इस पूंछ को हमने खूब जोर से पकड़ लिया।

जिन्होंने सांप को कभी छुआ नहीं है, वे इस पूंछ पकड़ने का अर्थ नहीं समझ सकेंगे। एक बहुत ही गन्दा, गिलगिला-सा स्पर्श, जिस पर से तुरन्त हाथ हटा लेने का मन होता है। सिंह में, हाथी में और गैंडे में अपार शक्ति होती है; पानी में मगरमच्छ की शक्ति भी बहुत अधिक होती है। ऐसा परीक्षण कभी करके नहीं देखा गया, परन्तु यह लगभग सुनिश्चित ही समझना चाहिये कि यदि किसी अजगर को शेर या चीते के धड़ से एक बार लिपटने का मौका दे दिया जाय, तो वह अवश्य ही उसका कचूमर निकाल देगा। अजगर की गुंजलकें एक बार लिपटने के बाद कसती ही चली जाती

हैं। एक बार मैंने स्वयं एक अजगर को उस दशा में देखा था, जबकि उसने अभी अभी एक गीदड़ को अपनी गुंजलकों में दबोचा था और अभी भी दबोचे हुए गीदड़ के निष्प्राण होने की प्रतीक्षा कर रहा था। उस स्थिति का वर्णन किस प्रकार करूं—जैसे किसी खूब पके हुए पिलपिले आम को कोई पहलवान मुट्ठी में दबाकर जोर से भींच दे। जिस प्रकार तब आम का रस छिलके को फाड़कर, जिस ओर से भी मौका मिलता है, बाहर निकल आता है, वैसा ही कुछ हाल गीदड़ का हुआ था। उसके भी आंख, मुंह, नाक, कान, जहां से भी सम्भव था, रक्त उसी भांति पिचकारी की धार की तरह बाहर निकला था। एक बार इन गुंजलकों में फंसने के बाद क्या गीदड़, क्या शेर और क्या आदमी, सब बराबर हैं। ऐसे अजगर की पूछ पकड़ना, जबकि उसका तीन-चौथाई से अधिक देह झाड़ियों में घुस चुका हो, कुछ विशेष लाभदायक नहीं था। फिर भी हमने उसकी पूँछ पकड़ ही ली।

ऐसा भ्रम हमें कभी नहीं था कि हम जोर लगाकर उसे झाड़ियों से बाहर खींच सकेंगे; परन्तु यह सम्भावना थी कि इस प्रकार पूंछ पकड़े जाने पर अजगर स्वयं ही क्रुद्ध होकर वापस झाड़ियों से बाहर निकल आयेगा। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। अपनी सहज वृत्ति से पशु न जाने किस प्रकार इस बात को समझ जाते हैं कि कहां उन्हें आक्रमण करने में सफलता मिलेगी और कहां नहीं। इस अजगर ने हमें देखा नहीं था, क्योंकि उसका मुख का भाग हमारे उसके निकट पहुंचने से बहुत पहिले ही झाड़ियों में प्रविष्ट हो चुका था। सामान्यतः अजगर जब किसी अन्य जीवित प्राणी के तनिक भी सम्पर्क में आता है, तब वह अपने विख्यात आलस्य को छोड़कर बिजली की सी तेजी से उस प्राणी के चारों ओर लिपट जाता है और गुंजलकों में कसकर उसे पीस डालने का प्रयत्न करता है। इस प्रदेश में पाये जाने वाले अजगरों के हिसाब से यह अजगर बहुत बड़ा था, परन्तु फिर भी वह किसी अज्ञात ढंग से यह समझ गया कि जिन हाथों ने उसकी पूछ को पकड़ा है, उन पर लौटकर आक्रमण करना लाभप्रद नहीं है। अतः उसने यही चेष्टा की कि किसी प्रकार अपनी पूंछ छुड़ाकर झाड़ियों में घुसकर सुरक्षित हो जाय।

"बड़ा मक्कार है! पहिचानता है!" पं० हरिवंश ने हंसकर कहा।

जितनी देर हम पूंछ पकड़े रहे, पंडित हरिवंश ने झाड़ियों के चारों ओर घूमकर यह देखने की कोशिश की कि आखिर अजगर का मुख किस ओर है। परन्तु परिस्थिति अजगर के पक्ष में थी। झाड़ियों का झुरमुट बहुत बड़ा था और इतना घना था कि उसके अन्दर कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। जितनी देर अजगर अपनी देह को अकड़ाकर पड़ा रहता था, उतनी देर तक तो उसे हिलाना डुलाना कुछ भी सम्भव नहीं था; पर जब वह

आगे बढ़ने का प्रयत्न करता था, तब हम सम्मिलित प्रयत्न करके उसे उलटा आठ-दस इंच बाहर खींच लेते थे। इस पर वह तुरन्त फिर अपने शरीर को झाड़ियों के साथ अकड़ाकर स्थिर हो जाता था। यह संघर्ष काफी देर तक चलता रहा। पंडित हरिवंश ने झाड़ियों के झुरमुट पर पत्थर-वत्थर भी फेंके, परन्तु हम अजगर को दो फीट से अधिक अपनी ओर खींचने में समर्थ नहीं हुए। उसी समय एकाएक अजगर की पूंछ में विचित्र प्रकार के कम्पन से शुरू हुए और हमारे हर तरह के यत्न करते हुए भी अजगर की पूंछ हम सभी के हाथ से छूट गई और वह फुर्ती से झाड़ियों में अदृश्य हो गया।

जब तक अजगर दीख रहा था और उसकी पूंछ हाथ में थी, तभी हम उसे काबू न कर सके, तो अब, जबकि वह अदृश्य हो चुका था, उससे भुगतना और कठिन था। परन्तु यदि हम उसे पकड़ने पर उतारू ही हो जाते, तो उसका बच भागना अब भी सम्भव नहीं था। हमारे सामने समस्या यह थी कि तीन दिन का वन-भ्रमण सम्मुख था। इस विशाल अजगर का बोझ डेढ़ मन से क्या कम होगा? इन तीन दिनों में इस भारी बोझ को उठाये हम कहां भटकते फिरेंगे, यह सोचकर हमने उसे जाने दिया। जब हम चलने लगे, तब झाड़ी के अन्दर से अजगर की लम्बी फुंकार की आवाज सुनाई पड़ी। पर इस फुंकार का क्या महत्व था, जबकि वह मूंजी किसी तरह झाड़ी से बाहर आने को तैयार ही नहीं था।

धूप तेज होती जा रही थी। इस अजगर के मामले ने हमारा लगभग पौन घंटा ले लिया था। गौरीवन पहुंचना ही हमारा उद्देश्य नहीं है। वहां पहुंचकर खाना स्वयं बनाना पड़ेगा और उसमें काफी देर लग जायगी, यह विचारकर हमने अपनी चाल जरा तेज की।

जिस कुनाव की चौकी पर हम रात पहुंचना चाहते थे, वह इस समय मिली। छोटा सा सुन्दर बंगला वन विभाग की ओर से बना हुआ है। इस बीहड़ वन में भी उन सरकारी अफसरों के लिए सारी सुविधाएं एकत्रित की गई हैं, जो अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए इस ओर आते हैं। बंगले के अन्दर पहुंच जाने के बाद उन साहब लोगों को अपने दिल्ली अथवा देहरादून के बंगलों से कुछ भी विभिन्नता प्रतीत न हो, इस बात का पूरा प्रयत्न किया गया है। इस ऐश्वर्य की मन में कोई लालसा नहीं थी। गत रात्रि में भी जो हमने इस चौकी की शरण चाही थी, वह केवल ओस और वर्षा से बचाव के लिए; और उसके न मिलने पर भी हमारा काम चल ही गया।

बंगले से नीचे दूर पर बहती हुई गंगा तक पहुंचने के लिए पत्थर की सीढ़ियां बनी हुई हैं और उनके निकट बहती हुई स्वच्छ नीले जल की धारा बहुत सुन्दर प्रतीत हो रही थी। गंगा की इस धारा से न जाने कितने

रूपों में कितनी बार हमारा परिचय हो चुका है ! उसकी भी क्या कोई सीमा है ! कितनी बार जेठ की तपती दुपहरियों में हम इसमें घंटों तक नहाये हैं, और कितनी ही बार जब यह सावन की बरसात में बाढ़ से उमड़ कर बही है, हम लकड़ी के सलीपरों के बेड़े बनाकर मीलों दूर तक इसमें बहते गये हैं; वसन्त पंचमी के दिन इसके बर्फ जैसे ठंडे पानी में भी तैरी की लम्बी प्रतियोगिताओं में तैरे हैं; दो-चार बार ऋषिकेश से बहकर आने वाले सलीपरों के बेड़े पर भी बैठकर हरिद्वार तक आए हैं, जबकि एक बार ८० फीट लम्बा बेड़ा भंवर में पड़कर आधा पानी में डूब गया था और एक बार पत्थरों पर जा चढ़ा था, जिसे फिर बहाव में लाने के लिए हम घंटों मेहनत करनी पड़ी थी। इतना ही नहीं, कुछ दिन पहले हमारे दो घनिष्ठ मित्र दुर्घटना के फेर में पड़कर इसी गंगा की धारा में डूबकर मर गये थे। अनेकान्नेक सुख तथा दुख की घनिष्ठ स्मृतियों से यह धारा हमारे हृदय के साथ जुड़ी हुई है। एक बार सीढ़ियों से उतरकर यहां भी हमने फिर धारा के पास जाकर पैर धोये और पानी पिया। इसके बाद फिर ऊपर रास्ते पर आ गये और गौरीवन की ओर बढ़ चले।

रास्ता अब ठीक ही था। चलते-चलते सुभाष बोला : "हरिवंश जी, यदि यह अजगर हाथ आ जाता, तो मजा रहता।"

पं० हरिवंश बोले : "यह तो बहुत ही डरपोक निकला। जो हमने नहर के किनारे पकड़ा था, वह तो इसकी तुलना में बहुत ही गुस्सैल था।"

६

जब हमने अजगर पकड़ा

नहर के किनारे पकड़े गय जिस अजगर का उल्लेख पं० हरिवंश ने किया था, उसे पकड़ते समय इस दल के लोगों में से मेरे सिवाय और कोई उपस्थित नहीं था। अत साथियों को उस घटना के जानने की उत्सुकता थी और सुभाष के आग्रह पर पं० हरिवंश ने सुनाना प्रारम्भ किया : "अगस्त के दिन थे वे शायद ! आकाश में बादल घिरे थे और सांझ का अंधेरा खूब काला हो उठा था। वातावरण में सील थी और लैम्प की रोशनी के पास झुड के झुड पतंगे आ आकर पड़ रहे थे। हम लोग अभी भोजन करके चुके थे और बड़ी तृप्ति की मुद्रा में बैठे हुए थे। मैं सोच रहा था कि कुछ देर बाहर टहल ही आऊं, कि तभी एकाएक बड़ी तीखी चीख की आवाज कानों में आई। आवाज बहुत दूर से आई थी और बड़े जोर की थी, जैसे कोई प्राणी मरणान्तक वेदना से छटपटाता हुआ जी-जान से चीख रहा हो। यह आवाज एक बार आकर रुक नहीं गई, काफी देर तक लगातार आती रही। ऐसी थर्रा देने वाली आवाजें मैंने बहुत कम सुनी हैं। इसे सुनकर डर नहीं लगता था, पर रोंगटे न जाने क्यों खड़े हो जाते थे। कुछ देर बाद आवाज रुकी और उसके बाद रुक-रुक कर आने लगी।

"इस आवाज की देर तक उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। आखिर हम कुछ लोग इकटठे हुए। विराज भी उनमें था। एक हरीकेन लैम्प लेकर हम उस दिशा में बढ़े, जिस ओर से आवाज आ रही थी। चलते-चलते हम नहर के किनारे के जंगल के पास पहुंच गये, जो इन बरसात के दिनों में बहुत ही दुर्गम और भयानक हो चुका था। आवाज इस जंगल में से आ रही थी। इस बरसाती अंधेरी रात में जंगल में घुसना बुद्धिमत्ता की बात नहीं थी, पर आवाज रुक-रुक कर अब भी आ रही थी और उस आवाज से इतनी दूर तक खिंचे आकर अब हम उस आवाज तक बिना पहुंचे नहीं रह सकते थे।

"साहस के काम उसके बाद भी बहुत से किये हैं, पर इतना फिर कभी नहीं सोचना पड़ा, जितना उस अंधेरी झाड़ियों से भरी डरावनी रात में

कदम बढ़ाते हुए सोचना पड़ा था। जब से मैं इस ओर आया हूं, ऐसा कोई भी साल नहीं गया, जिसमें बरसात में मैंने बढ़िया शानदार आठ-दस फनियर सांप न मारे हों। बहुतों को पकड़ा भी है; फिर भी इस बात को मुझसे ज्यादा अच्छी तरह कोई नहीं जानता कि सांप के काटने का अर्थ क्या है? दिन के उजाले में सावधान होकर सांप से खिलवाड़ करते मुझे भय नहीं लगता, चाहे उसके दांत कितने ही नुकीले हों और चाहे उसकी विष की थैलियों में कितना ही जहर क्यों न भरा हो। पर अंधेरी रात में, जहां हम सांप को देख नहीं सकते, उसका हम मुकाबला क्या कर सकते हैं? फिर यह जो विचित्र सी चीख सुनाई पड़ रही थी, वह केवल इतना ही स्पष्ट कर रही थी कि कोई अभागा प्राणी किसी दुरन्त हिंस्र पशु के चंगुल में फंस गया है और मर जाने से पूर्व वह अपनी मृत्यु की कथा दूसरों के कानों तक पहुंचा जाना चाहता है।

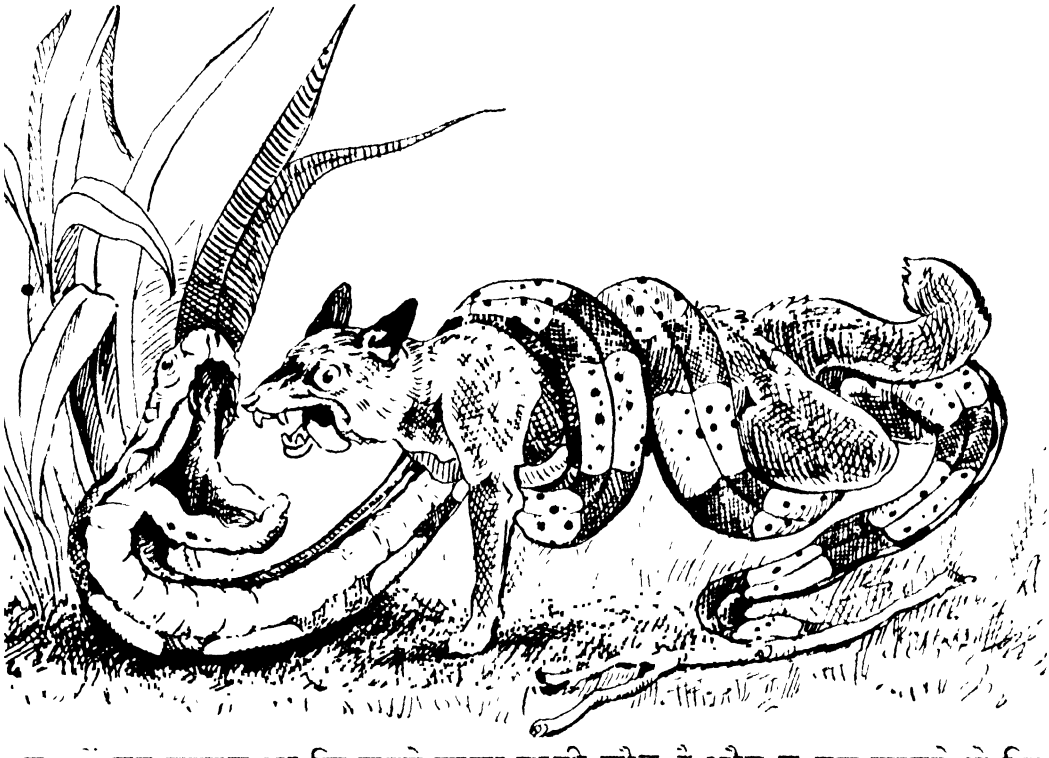

न हमें यह मालूम था कि मरने वाला प्राणी कौन है और न हम जानते थे कि जिस हिंस्र पशु ने उसकी इहलीला समाप्त करके उसे अपने जीवन का साधन बनाया है, वह कौन है? पर इतना स्पष्ट था कि जहां से भी यह आर्त क्रन्दन का स्वर आरहा है, वहां मृत्यु का नग्न तांडव हो रहा है। पर खैर जब ऊखली में सिर दिया, तब मूसल से क्या डरना? यदि यहीं आकर थक जाना होता, तो फिर हमें अपने कमरे को छोड़कर यहां तक भी आने की आवश्यकता नहीं थी। बहुत सावधानी के साथ लालटैन के धुंधले प्रकाश में संभल-संभल कर कदम रखते हुए हम आगे बढ़े। झाड़ियों में तीस कदम चलने के बाद हमने देखा कि एक अजगर एक गीदड़ को अपनी गुंजलकों में लपेटे हुए है।

(यह वही गीदड़ था, जिसका उल्लेख मैं ऊपर कर चुका हूं) यह पहला अजगर था, जो हमने अपने जीवन में देखा था, अतः हमें अजगर के बलाबल के विषय में कुछ भी मालूम नहीं था। अजगर के विषय में सुना बहुत कुछ था। वे सब सुनी हुई बातें और अत्यन्त दयनीय दशा में जकड़कर मरा हुआ गीदड़ हमारे उत्साह को बढ़ाने में सहायक नहीं थे।

"एक और विचित्र बात यह थी कि ठीक हमारे यहां पहुंचने से पहले तक आर्त चीत्कार की ध्वनि हमें सुनाई पड़ रही थी और हमारे यहां पहुंचते ही वह एकाएक बन्द हो गई। यह मानना कठिन था कि यह गीदड़ हमारे यहां पहुंचने की ही प्रतीक्षा कर रहा था और हमारे पहुंचते ही मर गया। यही अनुमान हुआ कि इसकी जीवन-संगिनी इसके साथ रही होगी। अजगर के मृत्यु-पाश में फंसने के बाद इसे दो-एक बार से अधिक चीखने का अवसर न मिला होगा। उसके बाद वह गीदड़ी ही चिल्लाती रही होगी, जो अब हमें लालटेन लिये आते देखकर भाग गई है।

"हम अजगर के विषय में अनजान थे और कुतूहल भी बहुत था, इसलिए लालटेन का प्रकाश उस पर डाल-डालकर उसे अच्छी तरह देखने का प्रयत्न करते रहे। यह बड़ी भूल थी। पर तब तो इस विषय में कुछ जानते ही नहीं थे। अभी अजगर ने अपना शिकार खाया नहीं था, और वह सरलतापूर्वक तेजी से इधर-उधर चल फिर सकता था, अतः हमारे लिए उचित यह था कि हम उसे अपना शिकार खाने से पहले चौंकने का अवसर न देते।

"पर हमारी भूल से अजगर ने हमें देख लिया था। और हम अभी सोच ही रहे थे कि इस अजगर का क्या किया जाय, कि उसने गीदड़ के चारों ओर लिपटी अपनी गुंजलकें ढीली कीं और फुर्ती से एक ओर को चल दिया।

"हमने समझा था कि अजगर बहुत मुश्किल से और धीमे-धीमे चल पाता होगा, पर वह तो इतनी तेज चाल से चला कि उसके साथ उन झाड़ी झंखाड़ों में दौड़ पाना कठिन हो गया। जितनी बेफिक्री से आज हमने अजगर की पूंछ पकड़ ली थी, उस प्रकार उस दिन पकड़ने की हिम्मत किसी की न हुई थी। यद्यपि दो एक साथियों ने अधूरे मन से पूंछ पर हाथ डाला था, पर इस तरह डरते हाथों से अजगर की पूंछ पकड़ी थोड़े ही जा सकती है!

"कोई तीस-पैंतीस कदम चलकर अजगर एक पेड़ पर चढ़ गया।"

"पेड़ पर?" सुभाष चौंका "अजगर पेड़ पर भी चढ़ता है?"

"क्यों नहीं। पेड़ पर उतनी ही सरलता से चढ़ता है, जितनी सरलता से भूमि पर चलता है, और उससे भी अधिक सरलता से वह पानी में

तैरता है।"

"पानी में भी!" कृष्ण न और भी अधिक विस्मय व्यक्त किया।

"पानी में तैरने में तो वह आनन्द अनुभव करता है। पर उस रात हमारे लिए भी अजगर का पेड़ पर चढ़ जाना बहुत ही विस्मय और भयजनक था। परन्तु जब तक अजगर भागने का प्रयत्न कर रहा था और किसी प्रकार का आक्रमण करता नहीं दीख रहा था, तब तक हमारा साहस बढ़ते जाना स्वाभाविक था। मन में डरते हुए भी हम अजगर को काबू करने अथवा मारने का उपाय सोचने लगे।

"इस समय तक अजगर मिलने का समाचार सारे गुरुकुल में फैल चुका था और वे लोग भी, जो चीत्कार को सुनकर नहीं आये थे, अब लालटेन ले लेकर अजगर देखने आ पहुंचे थे। अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गई थी और इस वृक्ष पर चढ़े आततायी के प्रति तरह तरह के भाव तरह-तरह की भाषा में व्यक्त किये जा रहे थे।

"पहले अजगर को बन्दूक से मार डालने का प्रस्ताव हुआ। पर बहुत यत्न करने पर भी बन्दूक प्राप्त नहीं हुई। यह एक तरह से अच्छा ही हुआ कि अत्यन्त भयग्रस्त होकर हमने अजगर को मार नही डाला। अन्यथा हम बहुत समय तक उसके सामर्थ्य के विषय में अनभिज्ञ ही रहते।

"उसके बाद उसे पेड़ से उतारने का उपाय यह सोचा गया कि लम्बे बांसों में जलती मशाले बांधकर उसके शरीर से छुआई जायं तो वह अपने आप नीचे आ जायगा। बांसों के सिरों पर चीथड़े लपेटकर उन पर कुछ सरसों का तेल तथा कुछ मिट्टी का तेल छिड़ककर मशालें तैयार कर ली गईं। जब इन मशालों में आग लगा दी गई, तो बड़ी अच्छी रोशनी सब ओर हो गई और जो अजगर अब तक लैम्प के धुंधले प्रकाश में आधा प्रत्यक्ष और आधा अनुमान से दिखाई पड़ रहा था, अब साफ दिखाई देने लगा। भूमि पर रगने वाले सांप-बिच्छू का भय तो लोगों की भीड़ जमा होते ही कम हो गया था; अब तो वह बिलकुल ही जाता रहा।

"अजगर के शरीर में मशाल छुआकर जैसे तात्कालिक परिणाम की हमने आशा की थी, वैसा कुछ भी नहीं हुआ। मशाल की लपटों से डरकर अजगर नेपेड़पर अधिक से अधिक ऊंचा चढ़ जाने की कोशिश की, पर उसके दुर्भाग्य से पेड़ बहुत ऊंचा नहीं था। हमारे बांस काफी लम्बे थे और उनके सिरों पर से ऊपर की ओर लपकती हुई लपटें अजगर के शरीर को अच्छी तरह छू सकती थीं। फिर भी वह यथासम्भव अधिकतम ऊंचा चढ़कर तथा अपने मुख को और भी ऊपर करके स्थिर चित्त होकर बैठ गया, यहां तक कि मशालों से उसके चमड़े के जलने की गन्ध तक हमें आने

"जब अजगर का चमड़ा जलने लगा, तो हमें दया आ गई। इतनी क्रूरता करने के लिए भी एक विशिष्ट प्रकार का मन चाहिये। मशालों

का प्रयोग रोककर हमने दूसरा उपाय लग्गियों का सोचा। बांस के अगले छोर पर एक दूसरी छोटी लकड़ी लगभग तीस अंश के कोण पर दृढ़तापूर्वक

बांध दी जाती है। इस प्रकार की लग्गी का प्रयोग लकड़हारे प्रायः सूखी लकड़ियां तोड़ने के लिए करते हैं। इस लग्गी वाले प्रयोग से बहुत जल्दी सफलता मिली। जब दो-तीन लग्गियां और मशालें एक साथ प्रयोग में लाई गई तो पांच-छह मिनट में ही अजगर धड़ाम से भूमि पर आ गिरा। वह लगभग बीस फुट की ऊँचाई से गिरा था और हमारा विश्वास था कि इतनी ऊंचाई से गिरकर उसकी हड्डियां-पसलियां टूट जायेंगी और वह चलने में असमर्थ हो जायगा। पर कहां! वह तो गिरते ही पहले की ही तरह तेजी से एक ओर को भागा।

"इस बार स्थिति पिछली बार से बिलकुल भिन्न थी। जिन लग्गियों और मशालों के बल पर उसे आकाश से भूमि पर उतार लिया गया था, उन्हीं के द्वारा उसके बच भागने का मार्ग भी सब ओर से रोक दिया गया। यह स्पष्ट हो चुका था कि अजगर अपने मुख को हर कीमत पर आग से बचाना चाहता था। जिस ओर भी उसने दौड़ने की कोशिश की, उसी ओर मुह के सामने मशाल कर दी गई और पीठ के बीच में लग्गी लगाकर उसे अपनी ओर खींचने की चेष्टा की गई।

"काम आसान नहीं था। अजगर गुस्से में भरा हुआ था। झाड़ियां घनी थीं। मशालों का प्रकाश होते हुए भी रात अंधेरी थी। जरा सा भी सहारा मिलते ही अजगर उसमें अपना शरीर अटकाकर अकड़ा लेता था, और तब फिर मशालों का प्रयोग करना पड़ता था।

"उन झाड़ियों में से उसे बाहर लाने में हमें बड़ी मेहनत करनी पड़ी। आखिर हम उसे बाहर खुले मैदान में ले आये। खुले साफ मैदान में पहुंचने पर अजगर अपनी निर्बलता समझ गया। थोड़ी देर तक छेड़छाड़ करने के बाद हमने उसे बोरी में बन्द कर दिया और लादकर अपने यहां ले आये। जब हम अजगर को लेकर वापस पहुंचे, उस समय रात के साढ़े बारह बज रहे थे।"

"और हरिवंश जी, आपको ख्याल है कि जब अगले दिन सबेरा हुआ, तो फोटो लेने कौन लोग आ उपस्थित हुए थे?" मैंने कहा।

पं० हरिवंश हँस पड़े: "उसका क्या जिक्र करते हैं।"

मैंने भी हंसते हुए कहा: "रात के सारे कांड में जिनका कहीं पता नहीं था, अगले दिन सबेरे, जब अजगर थककर शान्त हो चुका था, कुछ लोगों ने उत्साहपूर्वक अजगर को गले में लपेटकर अपने फोटो खिचवाये।"

बातचीत करते हुए हम अब गौरी घाट आ चुके थे। यहां गंगा में नाव चला करती है। पर क्योंकि अभी यातायात प्रारम्भ नहीं हुआ था, अतः इन दिनों नाव नहीं थी। सर्दियों में यहां गौरी घाट पर दो-एक पान,

बीड़ी और गुड़-चने की दुकानें भी खुल जाती हैं और प्रायः लोग बैठे हुए मिलते हैं; पर इन दिनों कुछ नहीं था। केवल रात में सुअरों द्वारा खोदी गई जमीन के निशान दिखाई पड़ रहे थे।

एक बड़े पीपल के पेड़ के नीचे पक्का गोल चबूतरा बना हुआ है, जिसने पीपल को सब ओर से घेरा हुआ है। सोचा, दो मिनट बैठकर आराम कर लें। अभी बैठे हुए मिनट भर भी नहीं हुआ था कि पं० हरिवंश झपट कर उठ खड़े हुए; बोले : "जोंकें हैं। चबूतरे पर से उठ आइये।"

इतनी ही देर में, जब हमने गौर किया तो देखा कि, प्रायः सभी के कहीं न कहीं जोंकें चिपट गई थीं। उपाय हम जानते थे। भोजन पकाने के लिए पिसा हुआ नमक हमारे पास था। चिपकी हुई जोंकों पर हमने जरा-जरा-सा वही नमक छिड़क दिया और बिलकुल जादू की तरह जोंकें अपनी पकड़ छोड़कर अलग हो गईं। पर जहां जोंक चिपकी थी, वहां से खून बहता रहा। बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने चुपचाप बिना दर्द किये, बिना मालूम हुए जोंक किस प्रकार चमड़े को काटकर खून पीने का उपाय कर लेती है। जोंकों पर हमें गुस्सा आ गया था। हमने उन्हें ढूंढ ढूंढ कर उन पर नमक छिड़क दिया और नमक के प्रभाव से उनमें से कितनी ही देखते-देखते मर गईं।

७

गौरीवन में विश्राम

गौरीघाट से गौरीवन दूर नहीं है; मुश्किल से आधा मील होगा। परन्तु इस वन के पेड़ दूसरे पेड़ों से लगभग दुगने ऊंचे हैं, इसलिए यह बहुत दूर से ही दिखाई पड़ने लगता है और आधा मील से भी कम मालूम होता है। इसी रास्ते के किनारे दो-तीन बड़े बड़े जंगली नींबुओं के झाड़ हैं। सरदियों में उन पर से अचार के लिए नींबू तोड़कर ले जाने होंगे। एक निगाह चलते चलते उन पर भी डाल ली। झाड़ अच्छी तरह नींबुओं से लदे खड़े थे, परन्तु अभी पकने में काफी देर थी। यदि हम इन नींबुओं को न ले जायें, तो इन्हें लेने वाला और कोई नहीं। ये यों ही पककर गिरकर सड़ जायेंगे।

गौरीवन आ गया। पं० हरिवंश ने यह कथा आविष्कृत की है कि हर-गौरी ने विवाह के उपरान्त सौ वर्ष तक इस वन में विहार किया था। हमने भी मान लिया है कि यदि सचमुच ही उन्होंने विहार किया था, तो जगह कुछ बुरी नहीं चुनी थी। ऊंचे पेड़ हमने बहुत देखे हैं। रायवाला से लेकर कांसरो और हरावाला तक जो विशाल साल का जंगल फैला हुआ है, उसमें एक सौ छत्तीस फीट ऊंचा साल वृक्ष भी हमने देखा है। पर इस गौरीवन में कुछ और ही बात है। सुनते हैं कि लंका में छोटे से छोटा राक्षस भी बावन हाथ ऊंचा था। वही हाल इस वन के वृक्षों का है। वृक्ष पतले-पतले हैं; बहुत घने खड़े हुए हैं और सीधे आकाश की ओर उठते चले गये हैं। इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं है कि इस वन में प्रविष्ट होते ही अंधेरा-अंधेरा सा मालूम होने लगता है और पीछे छोड़कर आये हुए रास्ते पर चमकती हुई धूप ऐसी मालूम होती है, जैसे हम मकान में बैठे हुए बाहर देख रहे हों।

यहां की भूमि लगभग सदा ही सीली रहती है और इस भूमि पर वन-पशुओं के अंकित पदचिह्न बहुत दिनों तक वैसे ही स्पष्ट बने रहते हैं। एक साथ ही बाघ से लेकर चीता, सुअर और हिरन तक सभी पशुओं के पदचिह्न चाहे जितने देखे जा सकते हैं। जिस रास्ते पर हम चले आ

रहे हैं, उसको एक अत्यन्त निर्मल जल की धारा पार करती हुई बहती है। इस धारा के ऊपर लकड़ी का पुल बना हुआ है। वनस्पतियों के एक से एक विचित्र नमूने यहां हैं। एक वृक्ष के चारों ओर एक मोटी बेल इतनी कारीगरी से चिपकी हुई है कि मालूम होता है जैसे किसी ने यत्नपूर्वक जाली-सी बुन दी है। एक स्थान पर दो पेड़ खड़े हैं। पास-पास होने के कारण इनके ऊर्ध्व भाग किसी समय परस्पर छू गये थे। अब ऊपर दोनों मिलकर एक हो गये हैं। नीचे दोनों वृक्षों के तने अलग-अलग और काफी दूर हैं, पर ऊपर का भाग एक ही है। देखकर लगता है कि परस्पर आलिंगन में बंधे किसी प्रेमिक-प्रेमिका को किसी दुर्वासा ने शाप देकर वृक्षयोनि में परिवर्तित कर दिया है। मोटी-मोटी बेलें, जो पता नहीं कितने वर्षों से झूलते झूलते मोटी हुई हैं, सौ सौ फीट की ऊंचाई तक पेड़ों पर चढ़ गई हैं।

धारा के एक ओर एकदम साथ लगा पहाड़ खड़ा है। उस पर भी वनस्पतियों का वैसा ही घना वैभव है। दूसरी ओर, जिस ओर पानी की यह क्षीण धारा गंगा में मिलने के लिए आतुर चली जा रही ह, नीचे की ओर ढलता हुआ घनी झाड़ियों से भरा मैदान है। इसे दुहरा जंगल कहना चाहिये। ऊंचाई पर पेड़ों की शाखाएं घनी होकर फैली हैं और नीचे ये झाड़ियां हैं।

इस पानी की धारा के पास पहुंचकर हमने अपना सामान भूमि पर रख दिया और विश्राम करने लगे। भोजन भी बनाना ही है। पं० हरिवंश को चले बिना चैन कहां? एक ओर को निकल गये। हमें मालूम है कुछ देर बाद वे आठ-दस सूखे झाड़ घसीटते हुए लौटेंगे, जिनसे ईंधन का काम आसानी से चल जायगा।

लौटते ही पं० हरिवंश ने कहा: "अरे विराज भाई, तुमने अपने अजगर के निवास स्थान पर दृष्टि डाली या नहीं?"

दृष्टि मैं डाल चुका था, अतः बोला: "हां! देख लिया है। पर फिर तो वह कभी दिखाई नहीं दिया।"

कोई डेढ़ साल पहले जब हम इस गौरीवन में से गुजर रहे थे, तो थोड़ी देर विश्राम करने के लिए रुके थे। वे दिन सर्दियों के थे। उस समय मैंने एक छोटे से अजगर को जो छ -सात फुट लम्बा रहा होगा, झाड़ियों के बीच में थोड़ी सी खुली जगह में धूप सेंकते हुए देखा था। मैंने मुड़कर जो बाकी साथियों को आवाज दी, तो वह अजगर न जाने किस तरह चट से झाड़ियों में अदृश्य हो गया और फिर किसी प्रकार ढूंढे न मिला। पर पं० हरिवंश का ख्याल था कि सामान्यतः अजगर अपना स्थान छोड़कर बहुत दूर नहीं जाते हैं, अतः हर बार आते जाते यहां एक बार देख लेना उचित है। परन्तु हमारा गौरीवन आना चार-छह महीने बाद कभी होता था, अतः

ऐसा संयोग फिर कभी नहीं हुआ कि जब हम पहुंचे हों, तभी वह अजगर वहां बैठा मिला हो ।

भोजन बनाना शुरू कर दिया गया । जो जिस कार्य में प्रवीण था, उसने उसी को शुरू कर दिया । पं० हरिवंश ने आलू कतरने शुरू किये थे । कतरते कतरते बोले : "भाई अनन्तानन्द जी, मुझे तो ऐसा लगता है कि यह प्रदेश ही अजगरों का मूल निवास है । हमारे यहां नहर के किनारे भी जो अजगर पकड़े गये हैं, वे भी यहां से गंगा में बहकर गये हुए मालूम होते हैं ।"

मैंने कहा : "आपको याद नहीं है, जब हम पिछली गर्मियों में चीला आये थे, तब कुछ पहाड़ी मजदूरों ने हमें अजगरों के पहाड़ के बारे में बतलाया था । उन्होंने कहा था कि वहां पहाड़ों की दरारों में ये अजगर पड़े रहते हैं और बहुतायत से पाये जाते हैं । वह पहाड़ यहां से कुल तीन या चार मील दूर ही तो है ।"

"मैं इस जगह को अजगरों का गढ़ इसलिए मानता हूं क्योंकि और कहीं मैंने अजगर का बच्चा नहीं देखा । यहां पर पिछली बार जब हम आये थे , तब हमें ऐन सड़क पर चलता हुआ कोई एक फुट लम्बा अजगर का बच्चा मिला था, जिसे हमने तुरन्त पकड़ लिया और अंगोछे में बांधकर ले गये थे ।" पं० हरिवंश ने कहा ।

"उस अजगर के पहाड़ को देखने के लिए हम एक बार कुछ दूर तक गये थे । परन्तु ऐसा लगता है कि हमारा धैर्य कुछ जल्दी समाप्त हो गया था; क्योंकि पहाड़ियों ने जिस प्रकार की दरारों का जिक्र किया था, वे इस ओर खूब थीं, परन्तु हमें उनमें ढूंढने पर अजगर नहीं मिले । यह शायद हमारी ज्यादती थी कि हम हर दरार में दो-चार अजगर मिलने की आशा बांध बैठे थे, परन्तु अब ऐसा भरोसा होता है कि यदि हम पहाड़ों में कुछ और अन्दर की ओर जाते तो शायद हमें पहाड़ी लोगों के बताये अनुसार अजगर मिल जाते ।"

"फिर किसी बार का प्रोग्राम रखा जाय उस ओर का" डाक्टर अनन्तानन्द ने कहा ।

"यह ठीक है । एक बार केवल वहीं का प्रोग्राम बनाकर और उसी की तैयारी करके आया जाय" मैंने समर्थन किया ।

भोजन बना खाकर हम आराम करने लगे । पं० हरिवंश ने लेटने की तैयारी की, तो पृथ्वीराज सेठी ने जेब से ताश की जोड़ी निकाल ली; बोले : "नहीं हरिवंश जी, लेटिये नहीं, जरा मैदान में आइये । आपको एक-दो कोट ही पहिनाये जायं ।"

पं० हरिवंश का विचार ताश के बारे में और जंगल में आकर स्वयं भोजन पकाने के बारे में पृथ्वीराज सेठी से बिलकुल नहीं मिलता । उनका

कहना है कि इन दोनों चीजों में कोई आनन्द हो, तो वह घर बैठे लिया जा सकता है । जंगल में आकर भी यदि ये ही बलाएं चिपटी रहें, तो वन भ्रमण ही व्यर्थ हुआ समझो । यहां आकर तो जितनी सूक्ष्मता और गहराई से वन के एक एक फूल और पत्ती का, पहाड़ों और नालों का, पशुओं के पदचिह्नों का और पक्षियों के चमकीले रंगों का दर्शन किया जा सके, उतना ही भला है । यह उनके मुंह की बात नहीं, मन की बात है । कारण कि मुंह से कभी उन्होंने ऐसा कहा नहीं है, पर उनके हर एक हाव-भाव, क्रिया-कलाप से यह बात प्रतिक्षण व्यक्त होती रहती है । पर पृथ्वीराज सेठी का विचार है कि इन चीजों का आनन्द वन में जाकर बढ़ जाता है और वन भ्रमण का आनन्द इससे चौगुना हो जाता है । मैं अंशतः पं० हरिवंश से और अंशतः सेठी जी से सहमत हूं । अतः 'आहूतो न निवर्तेत' चुनौती मिलने पर पीछे न हटे का ध्यान दिलाते हुए मैंने पं० हरिवंश से कहा : "आइये भी हरिवंश जी, सेठी जी का कोट का अरमान क्यों बाकी रहने दिया जाय ।"

डेढ़-दो घंटे का समय ताश के सात्विक मनोरंजन में बीत गया । सात्विक इसलिए कि जय-पराजय के साथ धन का कुछ सम्बन्ध नहीं था । केवल हार जीत के लिए ताश खेलना जो लोग केवल इसलिए मना करते हैं कि इससे समय का अपव्यय होता है, उनके प्रति मेरे मन में गहरी श्रद्धा है । मेरा दृढ़ विश्वास है कि वे लोग भविष्य के किसी सुदूर क्षण में उन्नति की ऊंची सीढ़ियों पर अवश्य पहुंचेंगे । पर इतना सोच-विचारकर मुझसे नहीं चला जाता । बिना अपव्यय किये——चाहे वह समय का हो, चाहे धन का—— मुझे आनन्द ही नहीं आता । इसमें जरा सी भी दूरदर्शिता, चतुरतापूर्ण मित-व्ययिता और योजनापूर्वक बचत की कल्पना ही मेरे आनन्द को जड़-मूल से समाप्त करने के लिए बहुत होती है । इसलिए मैं यह पसन्द करता हूं कि जब हमारी आनन्दवृत्ति जाग्रत हो, उस समय कोई गणितज्ञ आकर हमें हमारे अपव्यय का लेखा दिखाने न बैठ जाय । कितने ही रविवार तथा और भी अनेक अवकाश के दिन हमने निरुद्देश्य जंगलों में घूमते, भटकते अथवा पहाड़ी झरनों में स्नान करते और स्वयं जैसा भी बन सका कच्चा-पक्का भोजन बना खाकर व्यतीत कर दिये हैं और शाम को घर लौटते हुए हार्दिक तृप्ति के साथ कहा है——"आज का दिन तो बहुत ही मजे का रहा ।" इस समय को इस प्रकार न गंवाकर इन दिनों में कुछ अर्थोपार्जन, कुछ शिल्पाभ्यास अथवा कुछ कलावगाहन ही किया जाता, तो जो प्राप्ति होती, उसके अंक बहुत बड़े हो सकते हैं; परन्तु वह सब खत्म हो गया, इसका पश्चात्ताप मेरे हृदय में नाम को भी नहीं है । आनन्द के क्षणों का मूल्य मैं जानता हूं । क्या धन, क्या शिल्प और क्या कला, सब उसी महादेव (आनन्द) की उपासना के साधन मात्र तो हैं । जब देवता

स्वयं प्रसन्न हों, तो मन्दिर की देहली पर सिर रगड़ने की क्या आवश्यकता है ? खैर, छोड़ो इस बहस को।

तीन बज रहे थे। रात को हमें चीला पहुंचकर सोना है, अतः अब चल पड़ना चाहिए। ताश का खेल बन्द किया गया। अपना-अपना सामान बटोरकर हम फिर उसी रास्ते पर आगे चल पड़े।

गौरीवन का घना भाग बहुत थोड़ा है। शीघ्र ही हम फिर उन ऊंच वृक्षों की छाया से बाहर आ गये। फिर रास्ते के दोनों ओर वही ऊंची घास, जंगली बेरों की झाड़ियां, जिन पर उन दिनों छोटे-छोटे, कच्चे, हरे बेर लगे हुए थे, जो दिसम्बर जनवरी में पककर लाल और खटमिट्ठे हो उठेंगे, और जहां-तहां सेमल और खैर के पेड़ दिखाई पड़ने लगे। जिस रास्ते को हम इस समय पार कर रहे थे, उस पर सिवाय उस घास के, जिसकी पत्तियां ब्लेड की धार की तरह तीखी थीं और बचते बचते भी छू जाने पर टांगों पर जहां-तहां काट कर ही देती थीं, और कोई कष्ट नहीं था। इस समय हम कुशावत से चीला की ओर लौट रहे थे, पर इसी साल गर्मियों में एक दिन हमने चीला से गौरीवन और वहां से गौरीघाट पर गंगा पार करके रायवाला लौटने का प्रोग्राम बनाया था। मई के उन दिनों में धूप बड़ी तेज होती थी। हमने योजना यह रखी थी कि पहले दिन शाम को ही गंगा पार करके चंडी के मन्दिर में, जो कि एक पहाड़ी की चोटी पर बना हुआ है, रात बिताई जाय, और अगले दिन सवेरे ही उठकर धूप बहुत तेज होने से पहले चीला पहुंचकर दोपहरी वहां बिता दी जाय और दिन ढले गौरीवन की ओर बढ़ा जाय। अर्थात् उस बार का भ्रमण इस बार से उल्टी दिशा में था। उस भ्रमण में भी न भूलने लायक बहुत कुछ था, अतः इस समय इस रास्ते पर चलते हुए उसका याद आ जाना स्वाभाविक था। उस बार जब दिन ढले हमने इस रास्ते को नंगे पांवों पार किया था, तब यह मई के प्रचण्ड सूर्य की किरणों में तपकर तवे की तरह गरम हो उठा था और हमें दौड़ लगा-लगाकर इसे पार करना पड़ा था।

"याद है, उस बार कैसी बीती थी भाई जी ?" सुभाष ने पं० हरिवंश से कहा।

उत्तर में हरिवंश जी ने स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया।

८

चांदनी रात में गंगा पार

यह सही है कि सुभाष ने उस यात्रा के कष्टपूर्ण स्थल की ही याद दिलाई थी, परन्तु उस बार का वह सारा भ्रमण कष्टपूर्ण नहीं था। उस यात्रा का प्रारम्भ उस समय हुआ था, जबकि पश्चिमी क्षितिज पर सूर्य छिपने की तैयारी में था और पूर्वी क्षितिज पर पूर्णमासी का चन्द्रमा सूर्यास्त के साथ ही उदित होने वाला था। वैसे चंडी के मन्दिर पर बिताने के लिए हम सदैव शरत्पूर्णिमा की रात्रि (अक्तूबर या नवम्बर में पड़ने वाली पूर्णिमा) चुना करते थे। चंडी के मन्दिर पर बिताई हुई, वर्षोपरान्त के धुले और सघन जंगलों में निरभ्र नील आकाश से चुपचाप बरसती हुई चांदनी के शान्त प्रकाश से जगमगाती हुई वे रात्रियां स्वप्न के समान सुन्दर प्रतीत होती थीं। उनकी स्मृति भी वैसी ही अमिट और मनोहारी है। परन्तु एक बार ग्रीष्म पूर्णिमा भी सही! प्रकृति के पल-पल बदलने वाले रूप की प्रत्येक दशा अनुपम सौन्दर्य से भरी होती है। यदि हरित-श्यामल वृक्षों के घने पत्तों पर--जैसे दर्पण पर चमकती हो, इस प्रकार--चमकती हुई शरद् ऋतु चांदनी का अपना सौंदर्य है, तो गरमी की धूप से झुलसकर भूरे पड़े पहाड़ की घास पर बिखरकर शान्ति बरसाने वाली ग्रीष्म-ज्योत्स्ना का भी तो कुछ अलग ही सौंदर्य होगा। एक आधिक्य का सौंदर्य है और दूसरा स्वल्पता का। एक जैसे बलिष्ठ, मांसल, स्वस्थ, गुलाबी गालोंवाली तरुणी का रूप हो और दूसरी सुकुमार, पतली, कमलनाल के रंग जैसे सफेद गालोंवाली ललना की छवि हो। दोनों में से कौन अधिक मनोहारी है, इसका निर्णय शायद किया भी जा सके और शायद न भी किया जा सके।

खैर; उस रात जब हम गंगा के किनारे पहुंचे, तब चांदनी अच्छी तरह सब ओर बिखर रही थी और गंगा का पत्थरों से भरा हुआ तट उस चांदनी के धुंधले प्रकाश में भव्य दिखाई पड़ रहा था। गर्मियों में गंगा पर रहने वाला नावों का पुल इस समय टूट चुका था और दिन में एक नाव यात्रियों को पार लाती, ले जाती थी। हमारा खयाल था कि मांझी रात

को भी नाव के पास ही रहते होंगे और कुछ पैसे अधिक देने पर वे पार पहुंचा देने में आनाकानी न करेंगे। हमारे दोनों ही खयाल गलत निकले। जब हम नाव के पास पहुंचे, तो वहां केवल एक बूढ़ा मांझी था, जो वहां से घर लौटने की पूरी तैयारी कर चुका था। लौटने से पहले उसने हमें इतना बताने में अपने कुछ मिनट अवश्य व्यय किये कि सरकार का आदेश है कि सूर्यास्त के बाद किसी भी दशा में किसी भी व्यक्ति को गंगा के पार लाया-ले जाया न जाय। प्रसंग में ही उसने यह भी बताया कि यह कानून सुल्ताना डाकू के समय बनाया गया था, क्योंकि वह रात के समय ही गंगा को प्रायः पार किया करता था। यद्यपि सुल्ताना डाकू को फांसी हुए चौथाई शताब्दी से अधिक बीत चुकी है, और मांझी हमें अच्छी तरह पहचानता है और जानता है कि हम चोर या डाकू नहीं हैं, परन्तु उनके बूढ़े दिमाग में सरकार का उन दिनों दिया गया आदेश खूब जमकर बैठा हुआ है। वैसे भी वह अकेला नाव को लाने-ले जाने में असमर्थ था, अतः हमने उससे कुछ आग्रह नहीं किया और उसके सब प्रकार के सन्देह निवारण के लिए कह दिया कि अच्छा भाई, फिर आज की रात गंगा के इस किनारे ही सो रहेंगे। हमारे इस कथन से वह निश्चिन्त होकर चला गया; अन्यथा उसे सारे समय यही चिन्ता बनी रहती कि कहीं हम लोग स्वयं ही नाव को खोलकर नदी पार तो नहीं कर लेंगे।

हमें करना यही था; फिर भी यह बूढ़ा मांझी क्यों रात भर चिन्तित होता रहे? अतः उसे निश्चिन्त होकर जाने दिया।

गर्मी के दिनों में हरिद्वार में गंगा के तट पर जैसी सुखद शीतल वायु बहती है, वैसी शायद ही और कहीं बहती हो। हिमालय की ऊंची चोटियों पर से पिघलकर बही आती हिमराशि ही तो गंगाजल का रूप धारण करती है। इस शीतल जल के संस्पर्श से गरम से गरम हवा तुरन्त शीतल हो जाती है। बिलकुल धारा के पास जाकर हम कुछ देर बैठे। सामने की पहाड़ियों पर, तराई में खड़े जंगल पर, गंगा के दोनों तटों तथा उनके बीच में बहती हुई धारा पर चांदनी शांत भाव से बरस रही थी। देखकर मन न जाने कैसा हो उठा। चांदनी में धारा की छोटी-छोटी लहरें नाच सी रही थीं और उनका 'कल-कल' शब्द नृत्य के साथ ताल देता सा प्रतीत हो रहा था।

वैसे तट पर इस प्रकार बैठे-बैठे अथवा लेटे-लेटे भी रात बिताई जा सकती थी, परन्तु हमें तो आगे जाना था। उठकर हमने नाव को देखा। चप्पू नाविकों ने नाव के अन्दर ही छिपाकर रख दिये थे, थोड़ा सा ढूंढने पर ही वे मिल गये। हम में से बहुतों ने किसी समय नाव चलाने का अभ्यास किया था, अतः हमने पूरे आत्मविश्वास के साथ नाव को—जो एक

मजबूत रस्से से खूंटे में बंधी हुई थी--खोल डाला और उस पर सवार हो गये ।

परन्तु नाव को हमने ज्योंही थोड़ा-सा धारा की ओर बढ़ाया, तो हमारी समझ में आ गया कि जिस नाव को हमने नहर के बंधे हुए जल-प्रवाह म चलाकर अभ्यास किया था, उसमें और इस नाव में बड़ा अन्तर है। इस बेढंगी, बेडौल नाव में न तो पतवार था और न चप्पू फिट करने के लिए उपयुक्त लोहे के कुंडे। इसके अतिरिक्त गंगा की इस नील धारा का प्रवाह भी नहर के प्रवाह की भांति संयत न होकर एकदम उद्धत है । समझ तो हम शुरू में ही गये कि यह खेल उससे बिलकुल भिन्न है, जो हमने समझा था, फिर भी हम सभी अच्छी तरह तैरना जानते थे, अतः नाव को वापस लौटाने की कोई जरूरत नहीं समझी गई। 'बढ़े चलो, जो होगा सो देखा जायगा' सोचकर आगे ही बढ़े चले ।

न केवल नाव, चप्पू और प्रवाह ही प्रतिकूल थे, बल्कि यह भी समझ में आ गया कि अपना नाव चलाने का अभ्यास भी बहुत समय से छूटा हुआ है । प्रवाह में पड़ते ही नाव पार जाने के बजाय तेजी से नीचे की ओर वह चली। चप्पू केवल दो ही थे और उन्हें केवल दो ही आदमी चला सकते थे। परन्तु बड़ी व्यग्रता के साथ सबने एक साथ यह बतलाना शुरू कर दिया कि इस तरह नहीं, इस तरह चप्पू चलाओ। नाव जिस तेजी से बही जा रही थी और जिस व्यग्रता से बाकी लोग चप्पू चलाने की विधियां समझा रहे थे, उसके कारण चप्पू चलाने वालों का बौखला जाना स्वाभाविक था। दूर पर पानी के ढलान पर बहने की आवाज आ रही थी। यदि बहती हुई यह नाव उस ढलान तक जा पहुंची तो भले ही हम साथियों का कुछ अहित न हो, परन्तु नाव को बचाना असंभव हो जायगा। वह दांता, जहां पानी का ढलान था, यद्यपि अभी काफी दूर था, परन्तु नाव की चाल भी धीमी नहीं थी। बहुत जल्दी हम में से सबको यह समझ लेना पड़ा कि व्यग्रता प्रदर्शित करने से कोई लाभ नहीं है। थोड़ी ही देर में चप्पू चलाने वाले भी यह समझ गये कि किस प्रकार चप्पू चलाने से इस नाव की गति किस ओर को होती है और नाव का नीचे की ओर बहना कुछ कम हुआ।

केवल चप्पुओं द्वारा नाव पार पहुंचती या नहीं, यह इसलिए नहीं कहा जा सकता, क्योंकि स्थिति को विषम देखकर दो साथी कपड़े उतारकर तुरन्त पानी में कूद गये और जब वे कमर तक पानी में पहुंचकर खड़े हुए, तब नाव का रस्सा उनकी ओर फेंका गया। रस्सा उनके हाथ आ गया। परन्तु इतने गहरे पानी में चिकने पत्थरों के ऊपर खड़े होकर बहती हुई नाव को रस्से से थामना उनके लिए आसान काम नहीं था। पहले पहल तो वे भी रस्सा थामे नाव के साथ ही साथ बह चले । पर तभी शायद

चप्पुओं पर लगाई जा रही शक्ति का कुछ सहारा उन्हें भी मिला और उनके पांव जम गये। फिर तो उन्होंने धीरे-धीरे नाव को किनारे खींच ही लिया। नाव को हम फिर खींचकर ऊपर ले गये, जिससे अगले दिन मांझियों को कम से कम यह शिकायत न हो कि हमने उनकी नाव नीचे बहा दी।

गंगा के तट पर मौसम इतना अच्छा था कि चंडी के मन्दिर पर जाने की इच्छा नहीं हो रही थी; क्योंकि एक तो वहां गरमी होगी और दूसरे रात को प्यास लगने की दशा में वहां पानी मिलना कठिन होगा। परन्तु ऊंची पहाड़ी पर खड़े होकर चांदनी में नहाते हुए मीलों तक फैले प्रदेश का दर्शन पहाड़ी के ऊपर जाकर ही किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त यह भी किंवदन्ती फैली हुई थी कि रोज रात को चंडी के मन्दिर में चंडीवाहन (सिंह) देवी के दर्शन के लिए आता है। इससे पहले हमने जो रातें वहां बिताई थीं, उनमें कभी सिंह या बाघ वहाँ नहीं आया; परन्तु वन ही तो है, शायद आज आ जाय। अतः जाकर चंडी के मन्दिर में ही सोये।

कोई खास बात नहीं हुई। शेर भी नहीं आया और पानी की भी तंगी नहीं हुई। दिन में आने-जाने वाले यात्रियों के लिए मन्दिर के पुजारियों ने घड़ों में पानी भरकर रखा था; उसमें से बहुत सा अब भी बचा हुआ था। गर्मी भी प्रारम्भ में तो कुछ मालूम हुई, परन्तु बाद में वायु शीतल हो गई और सवेरे के कुछ पहले तो इतनी ठंड हो गई कि सोना असम्भव हो गया।

पहाड़ी की चोटी पर खड़े होकर देखा—गंगा की बीसियों शाखा-उपशाखाएं बालू की सफेदी बिछाये पड़ी हैं। इन शाखा-उपशाखाओं ने वन को अनेक छोटे-छोटे टापुओं में विभक्त कर दिया है। बालू की सफेदी से घिरे हुए वे घने जंगलों से भरे टापू इस समय बड़े बड़े काले धब्बों जैसे दिखाई पड़ रहे हैं। एक ओर हरिद्वार और दूसरी ओर कनखल की रोशनियां चमक रही हैं। उनके परे चित्र की पृष्ठभूमि में जैसे हलका हरापन लिये सफेदी पोत दी गई है। यह खुला मैदानी प्रदेश है, जिसमें खेती होती है। चांदनी में सब धुंधला धुंधला दिखाई देता है। और इसी धुंधले दृश्य को देखने के लिए हम घर का बिस्तर छोड़कर यहां जंगल में आ गये हैं। अवश्य ही हम लोगों के मस्तिष्क का कोई पेच ढीला हो गया है।

यह दिमाग खराब होने की बात मेरे मन में और भी एक-दो बार आई है। यदि हमारी तरह यूरोपियन लोगों का कोई दल बरसों तक इस तरह दिन में और रात में, पहाड़ और दुर्गम स्थानों में भटकता फिरा होता, तो उसने उसका न जाने कितना बावैला खड़ा किया होता। न जाने कितनी तरह के कैमरों से कितने चित्र लेकर उन्होंने अपनी उन यात्राओं के जरा-जरा से स्थानों को विज्ञापित कर-कर के अमर कर दिया होता। अनेक

झूठी-सच्ची कहानियां गढ़-गढ़कर उन्होंने अपने विवरणों को रोमांचकारी बनाकर लोकोपयोगी बनाया होता। और हम बिना साधन, बिना उद्देश्य यों ही वन में भटकते फिरते हैं, केवल इसलिए कि पहाड़ों, प्रपातों, नदियों और वनों को देखना हमें अच्छा लगता है। यह पागलपन की निशानी नहीं तो और क्या है? ऐसे भ्रमण के बाद लौटकर यदि उन लोगों को, जो दिन भर बाजार में बठे मिर्च और जीरे की पुड़िया बांध-बांधकर ग्राहकों को देते हैं, या जो दिन भर कारखाने में खड़े काम करते हैं, वनों में देखे हुए दृश्यों के चित्र न दिखाये जा सकें, तो उस भ्रमण की सार्थकता ही क्या रही? इस बात का क्या महत्व है कि हमने जंगल में हाथी या चीते कितनी बार देखे हैं और कब वे हमारे कितनी पास तक आ गये थे, यदि हम कैमरे द्वारा लिया गया जंगली हाथी या चीते का चित्र प्रस्तुत नहीं कर सकते? हां, यदि हम चित्र प्रस्तुत कर सकें और फिर कहें कि यह (चित्र वाला) चीता हमको पकड़कर साबुत निगल गया था, और उसके पेट के अन्दर हमें सबसे बुरी बात यह लगी कि वहां पर्याप्त रोशनी नहीं थी, और उसके बाद हमने छुरे से चीते का पेट चीर डाला और बाहर निकल आये, तो हमारा विवरण एक अद्भुत आश्चर्य-घटना के रूप में शायद सत्य भी माना जा सके। परन्तु चित्र के अभाव में यदि हम किसी भले मानस से यह भी कहें कि जंगल में हमने एक अठारह फुट लम्बा अजगर देखा, जिसने हमारे देखते-देखते एक समूचे हिरन को निगल लिया, तो आज का सुशिक्षित व्यक्ति तो यह कहेगा: 'चल रे गपोड़ी, कहीं अठारह फीट लम्बा भी अजगर होता है! सपना तो नहीं देखा है?' और अशिक्षित व्यक्ति मुंह फाड़कर देखता रहने के बाद कहेगा: 'अच्छा जी, फिर तो वह अपनी सांस के साथ ही आदमी को भी खींच लेता होगा?' दोनों को ही बात सुनाने में क्या मजा है?

खैर; चाहे जो भी हो, हमें इस प्रकार निरुद्देश्य घूमने में आनन्द आता है। वह रात चंडी पर बिताने के बाद अगली दोपहरी हमने चीला में बिताई, जहां की गंगा की धारा स्नान के लिए बहुत उपयुक्त है। परन्तु जब दोपहरी बिताकर गौरीवन की ओर बढ़ने का प्रश्न उपस्थित हुआ, तो एक समस्या खड़ी हो गई। देर इसलिए नहीं की जा सकती थी, क्योंकि हमें लम्बा रास्ता पार करके रायवाला स्टेशन पर रेलगाड़ी पकड़नी थी, जो हमें हरिद्वार पहुंचा दे; और जल्दी इसलिए नहीं चला जा सकता था, क्योंकि धूप बहुत थी और हम सब नंगे पांव थे। सोच विचार के बाद गलत कदम यह उठाया गया कि हम बहुत जल्दी चल पड़े, उस समय लगभग तीन बजे थे और हमें अभी ११ मील रास्ता तय करना था। यदि छह बजे वाली गाड़ी छूट गई तो फिर नौ बजे रात को गाड़ी मिलेगी। अतः चाल तेज रखनी पड़ी। प्रारम्भ के दस-पन्द्रह मिनट तो धूप विशेष अखरी नहीं, परन्तु उसके बाद

रास्ता बिलकुल खुला और रेतीला आया। गर्मियों की धूप के कारण घास का अन्तिम पत्ता तक सूख चुका था। वृक्ष आस-पास थे नहीं; और जो थे भी वे बहुत दूर-दूर थे। रास्ते की रेत इतनी गर्म थी कि वैसी फिर हमने कभी नहीं देखी। पैर इस तरह जल रहे थे कि हमें दौड़कर आगे दीखने वाली छाया तक पहुंचना पड़ता था। छाया में कुछ देर खड़े होने के बाद फिर आगे दौड़ते थे। कई बार छायाएं एक दूसरे से बहुत दूर होती थीं और रेत की जलन असह्य हो जाती थी, तो अंगोछा जमीन पर रखकर कुछ देर उस पर खड़े रहकर पैरों को शान्ति देते थे और गाड़ी के समय पर पहुंचने के लिए फिर दौड़ते थे। इस प्रकार यह चार मील का रास्ता हमने उस बार तय किया था। अन्त में गौरीवन पहुंचने पर हमारे कष्ट की समाप्ति हुई। एक तो वन की घनी शीतल छाया काफी देर रही और उसके बाद जब हम इस वन के दूसरी ओर निकले, तो धूप की तेजी काफी कम हो चुकी थी। यदि धूप ने हमें इस तरह दौड़ाया न होता, तो हम छह बजे वाली वह गाड़ी कभी न पकड़ पाते, जो हमने पकड़ ली थी।

इस समय हम उसी रास्ते पर चल रहे थे, पर इस बार धूप और रेत का कोई कष्ट नहीं था।

६

हाथियों की करतूतें

एक ओर रास्ते में कुछ हटकर खैर के पेड़ों की शाखाएं टूटी हुई थीं। वैसे समय-समय पर ठेकेदार कत्था निकालने के लिए खैर के पेड़ों को काटते रहते हैं, परन्तु उनका पेड़ों को काटने का ढंग एकदम दूसरा होता है। ये शाखाएं –मोटी-मोटी और मजबूत शाखाएं–हाथ से मरोड़कर तोड़ दी गई मालूम होती थीं। हाथी के सिवाय इतनी शक्ति और किसमें है ?

"हाथी भी पान खाने का शौकीन मालूम होता है। थोड़े बांस के पत्ते मुंह में डाले, खैर की एक डाली ले ली और बस पान का मजा ले लिया" सुभाष ने कहा।

"हां, पत्ते के पत्ते और कत्थे का कत्था !" कृष्ण ने समर्थन किया।

खैर के वृक्षों पर किया गया अत्याचार बहुत पुराना नहीं मालूम होता था। या तो गत रात्रि में अथवा आज ही सवेरे किसी समय हाथियों ने इन वृक्षों की शाखा में रमे हुए कत्थे का स्वाद लिया है। उनके निशान ताजे थे। पं० हरिवंश ने प्रस्ताव किया कि हाथियों का झुंड कहीं निकट भी हो सकता है, अतः थोड़ा-सा यत्न उन्हें ढूंढने का भी कर लिया जाय। यत्न करने में किसी को आपत्ति नहीं थी; परन्तु घास बहुत घनी थी, जमीन पर कांटे थे, और दूर दूर तक दृष्टि दौड़ाने पर भी निकट ही हाथियों की कोई संभावना दिखाई नहीं पड़ती थी। अतः उत्साह किसी ने व्यक्त नहीं किया।

परन्तु पं० हरिवंश इस तरह सस्ता छोड़ देने वाले नहीं थे। उनके साथ घूमने जाने वालों को प्रायः यह शिकायत रहती थी कि उनके साथ चलना बहुत अधिक पड़ता है। और यह शिकायत तब थी, जबकि अनेक बार पं० हरिवंश बाकी लोगों को पीछे छोड़कर, कभी संदिग्ध रास्ते की खोज करने, कभी पानी देखने और कभी ईंधन बटोरने अकेले जाते थे, और फिर लौटकर सब लोगों के साथ चलते थे। एक बार दिल्ली से भ्रमणार्थ आये हुए एक युवक ने शेखी बघारते हुए कह दिया था : "अजी चलने में हम किसी से पीछे नहीं रहते। बीस मील, तीस मील जितना कहो, मजे से चलते रह सकते हैं।" उस समय तो पं० हरिवंश ने कुछ कहा नहीं, परन्तु आगामी रविवार

को जो टोली जंगल में घूमने गई, उसने ऊंची-नीची पहाड़ी पगडंडियों और तंग नालों का उतार-चढ़ाव मिलाकर कुल चौंतीस मील रास्ता तय किया। टोली के और लोग भी थक गये थे, परन्तु दिल्ली वाले भाई का बुरा हाल था, उस दिन तो वह जैसे-तैसे रो-खीझकर चले गये, क्योंकि चलने के सिवाय और कोई उपाय ही नहीं था, पर उसके तीन दिन बाद तक वे घर से नहीं निकले। उसके बाद जब पिंडलियों और जांघों की अकड़न कुछ दूर हुई, तब उन्होंने घूमना-फिरना शुरू किया। इसी प्रकार एक और मित्र थे, जिन्हें एक भ्रमण में कुछ ज्यादा चलना पड़ा था। जब अगली बार उनके सामने फिर घूमने चलने का प्रस्ताव रखा गया, तो वे व्यंग से बोले: 'मुझे क्या कोई सजा मिली है, जो मैं आप लोगों के साथ जाकर ऐसी बेहिसाब मशक्कत करूं। अरे साहब छुट्टी का दिन है। दिन भर मजे से लेटूंगा, और शाम को हरिद्वार जाकर घंटा-दो घंटा हर की पैड़ी की सैर कर आऊंगा।'

पं० हरिवंश के साथ घूमने आकर ज्यादा चलना पड़ेगा, यह तो हम पहले से ही समझ रखते थे। जब उन्होंने हाथियों के झुण्ड को 'जरा देख चलने' का आग्रह किया, तो हम उत्साह विशेष न होते हुए भी चल पड़े। हाथियों के झुण्ड के चलने-फिरने से तीखी पत्तियों वाली घास अच्छी तरह दब गई थी, अतः झुण्ड का पीछा करना उतना कठिन नहीं था, जितना कि पहली दृष्टि में दिखाई पड़ता था। हाथियों ने वृक्षों को तोड़-मरोड़कर अपनी जिस अद्भुत शक्ति का प्रदर्शन किया हुआ था, उससे देख-देखकर हमें आश्चर्य होने लगा। इस आश्चर्य का एक बहुत संगत कारण था।

हाथी कितने बड़े वृक्ष को अपनी सूंड की ताकत से तोड़ सकता है, इस विषय में हमारी जानकारी केवल सुनी सुनाई अप्रामाणिक बातों पर आधारित थी। कभी हमें अनुमान होता था कि हाथी आठ फुट परिधि के तने वाले वृक्ष को भी तोड़ सकता है और कभी हम समझने लगते थे कि दो फुट परिधि के तने वाले वृक्ष को भी तोड़ डालना उसके लिए आसान नहीं है। अपनी इतनी लचीली जानकारी को प्रत्यक्ष प्रमाण से पुष्ट करने का अवसर हमें कभी मिला नहीं था। फिर भी पिछली गरमियों में, जब कि जंगल में पानी का बड़ा अभाव होता है, और सभी पशुओं को विवश होकर पानी वाले स्थान पर आना पड़ता है, हमने सिद्धकुण्ड के जंगल में हाथियों को देखने के लिए एक रात बिताई थी। शाम को जंगल में पहुंचते ही हमें हाथियों के चिह्न, पदचिह्न, लीद तथा खाये हुए बांस मिल गये थे, और हमें निश्चय हो गया था कि आज रात को हम हाथियों का दर्शन अवश्य कर सकेंगे। पानी

के गड्ढों को ध्यान में रखते हुए हमने तीन मचान इस प्रकार बनाये कि तीनों जगह से हाथी—जब वे पानी के गड्ढे के पास हों—बिल्कुल स्पष्ट दिखाई पड़ें। एक-एक मचान पर हम तीन-तीन आदमी बैठे। दो मचान तो खूब मजबूत शीशम के पेड़ों पर बनाये; पर तीसरा मचान एक छोटे से बेरी के पेड़ पर बनाया। यह बेरी का पेड़ पानी के मुख्य गड्ढे के एक-दम पास पड़ता था और नाले के ऐन किनारे पर था; यहां तक कि बर-सात के दिनों में नाले के बहाव ने इसकी जड़ों को मिट्टी बहाकर एकदम नंगा कर दिया था। नाले का किनारा लगभग सात फुट ऊंचा और सीधा खड़ा हुआ था। इस बेरी के वृक्ष पर—जिसका तना मुश्किल से दो फीट परिधि का था, जिसकी आधी जड़ें मिट्टी के बाहर थीं और जब हम उस पर चढ़ गये तो वह हमारे हिलने के साथ ही हिलता था—मचान बनाते हुए हमने अपने सम्मुख यह तर्क रखा था, कि कगार पर खड़ा वृक्ष होने के कारण यह हाथी की पहुंच से बाहर है। न हाथी इस वृक्ष पर कगार के ऊपर की ओर से चोट कर सकता है, क्योंकि तब हाथी के एकदम सात फीट नीचे गिरने की पूरी संभावना थी, और न वह नीचे नाले म खड़ा होकर इस वृक्ष को नीचे खींच सकता है। फिर दो फुट मोटे वृक्ष को तोड़ डालना भी कोई हंसी खेल नहीं है। इस तीसरे बेरी के वृक्ष वाले मचान पर बैठे तीन साथियों में एक मैं भी था।

आशा के अनुकूल ही आधी रात के बाद हाथियों का झुण्ड उधर आया। पर उन्हें पानी पीने की कोई जल्दी नहीं मालूम होती थी। दूर दूर तक जंगल में फैले हुए वे बांस खा रहे थे और बांसों के टूटने की आवाजें रह-रहकर आ रही थीं। काफी देर की प्रतीक्षा के बाद वे पानी पीने के लिए नाले में उतरे। एक बड़ा हाथी, जब तीसरे मचान के पास से गुजर रहा था, उसी समय एक हथिनी अपने बच्चे के साथ मेरे मचान वाले पेड़ के उत्तर की ओर से पानी के गड्ढे की ओर बढ़ रही थी। यद्यपि सभी साथियों को यह बात खूब समझा दी गई थी कि केवल उत्सुकता-वश वे अधीरता में टार्च न जला दें, परन्तु पहले मचान वालों ने इसका ध्यान नहीं रखा। जब वह हाथी उनके मचान के पास से गुजर रहा था, तो उन्होंने टार्च का प्रकाश उस पर डाला। टार्च के तेज प्रकाश से बुरी तरह चौंककर हाथी चिंघाड़ता हुआ नाले को पार करके जंगल में भाग गया। उसकी चिंघाड़ को सुनते ही जंगल में और हाथियों के भागने की आवाज सुनाई पड़ी और थोड़ी ही देर में फिर शान्ति छागई। बड़े आश्चर्य की बात यह कि पानी पीने के लिए इस स्थान पर जब वन के अनेक प्राणियों को आना ही चाहिए था, हाथियों के भाग जाने के बाद एक भी प्राणी उस ओर फटका तक नहीं। अगले दिन सवेरे मचान

से उतरकर जब हमने हाथियों के पदचिह्नों को ध्यान स दखा, तो यह देखकर हमें बड़ा विस्मय हुआ, कि टार्च से चौंककर भागने वाला हाथी नाले को पार करके पांच फुट ऊंचे सीधे कगार पर दौड़ता हुआ चढ़ गया था। उसके पर कुछ फिसले भी थे, पर उससे कोई विशेष बाधा नहीं पड़ी।

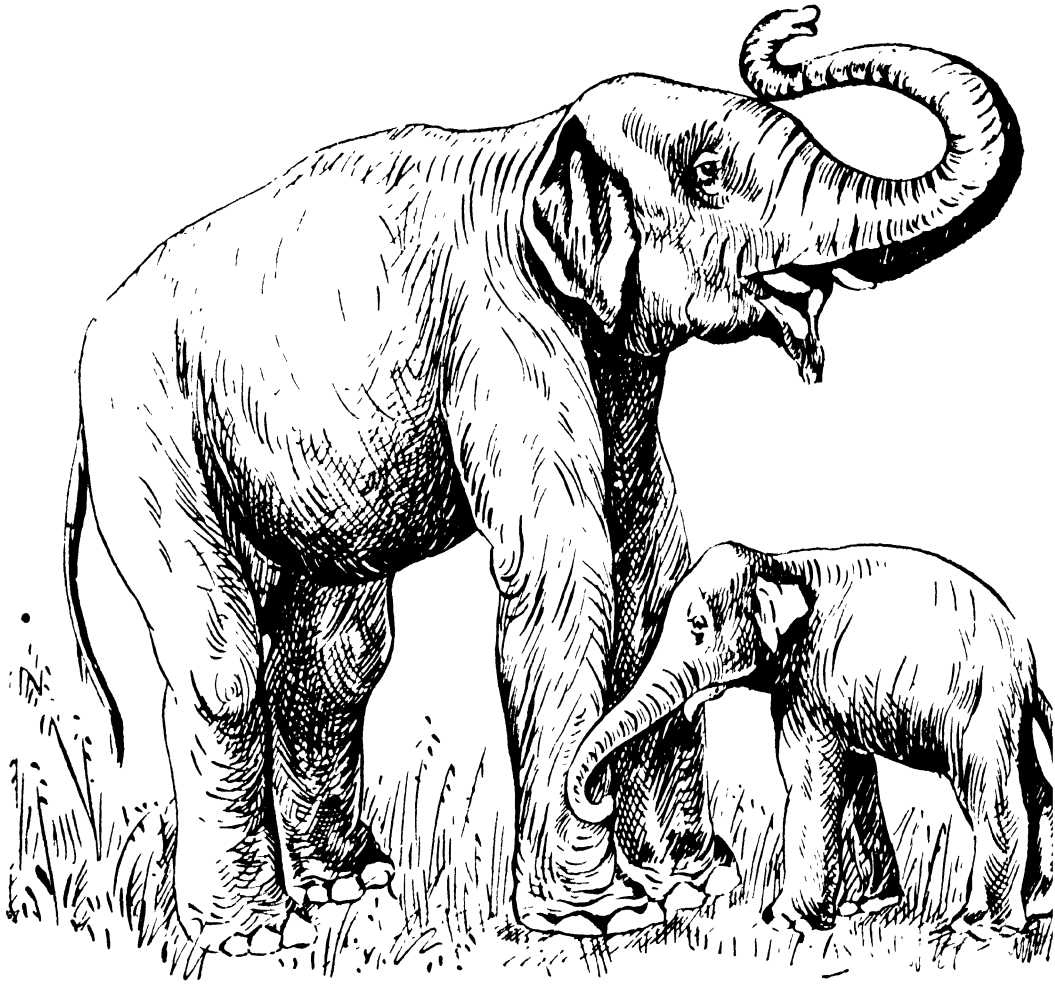

उस दिन भी हमें खयाल हुआ था कि यदि हाथी इतने ऊंचे सीधे खड़े कगार पर चढ़ सकता है, तो क्या घटना-चक्र के फेर में पड़कर वह हमारे बेरी के पेड़ तक नहीं पहुंच सकता था ?

और आज जब यहां हाथियों द्वारा तोड़े गये मोटे-मोटे पेड़ों को देखा, तो मन फिर आश्चर्य और भय से भर उठा। न केवल ये खैर के वृक्ष उस बेरी के पेड़ से बहुत मोटे थे, बल्कि खैर का वृक्ष बेरी की अपेक्षा मजबूत भी बहुत होता है। जब इन वृक्षों को हाथियों ने किसी क्रोध में आकर नहीं, केवल विनोद में इतनी सरलता से तोड़ डाला है, तो उस रात चौंककर, घबराकर, अथवा क्रुद्ध होकर हाथी उस बेरी के पेड़ का क्या कुछ कर सकते थे, यह न सोचना ही भला है।

"उस रात विराज जी ने तो कोई कसर रखी नहीं थी; पर हम

लोग बच गये, यह केवल संयोग की ही बात थी।" सुभाष ने कहा।

उत्तर में क्या देता? मैं स्वयं यही अनुभव कर रहा था।

कुछ दूर तक हम लोगों ने हाथियों का पीछा किया, परन्तु कोई बीसेक मिनट चलने के बाद झाड़-झंखाड़ों का घना जंगल शुरू हुआ और हाथियों के बहुत निकट होने का कोई चिह्न मिला नहीं, अतः हम इन चिह्नों की खोज छोड़कर फिर वापस वन विभाग की सड़क की ओर लौट पड़े।

कुछ दूर चलने के बाद बाईं ओर एक दूर तक खुला मैदान दिखाई पड़ा; और इस मैदान के परले छोर पर, जहां खुली भूमि समाप्त होकर वृक्ष प्रारम्भ होते थे, हिरनों का एक झुण्ड विश्राम कर रहा था। पुराने कवियों ने हिरनों के सौन्दर्य का वर्णन झूठ-मूठ नहीं किया है। महाकवि कालिदास की अमर रूपसी शकुन्तला के वस्त्र का छोर विदा के समय एक स्नेहपालित हिरन ने ही खींचा था। वहां पर शायद बकरी का बच्चा अथवा कुत्ते का पिल्ला भी रखा जा सकता था; परन्तु उसमें वह सुकुमारता न आ पाती। सारे प्राणी जगत में से महाकवि की सुरुचि हिरन पर ही आकर टिकी। मैदान के छोर पर विश्राम करता हुआ यह मृग-यूथ इस समय भी परम रमणीय दिखाई पड़ रहा था। कुछ हिरन खड़े थे; कई हिरनियां बैठी थीं और छोटे-छोटे बच्चे—जैसे इनसे चैन से बैठा ही नहीं जाता—कूद-फांद रहे थे। अपराह्न की धूप में उनके चितकबरे शरीर खूब चमक रहे थे। कुछ देर खड़े रहकर हम इन स्वच्छन्द जीवों को देखते रहे।

डाक्टर अनन्तानन्द कहने लगे: "प्रकृति के चमत्कार भी आश्चर्य-जनक हैं। अच्छे से अच्छा कलाकार इतना सुन्दर चित्रण करने में सफल नहीं हो सकता, जितने सुन्दर ये जीव स्वभावतः होते हैं। और सबसे विचित्र है रंगों का यह मिश्रण। पीठ के ऊपर के रंग गहरे हैं और पेट के नीचे की ओर का भाग क्रमशः हल्के रंग का होते-होते एकदम सफेद हो गया है। रंगों के इस सुविचारित मेल के कारण हिरन एकाएक दृष्टि में नहीं आता। यह अपनी पृष्ठभूमि के जंगल में छिप सा जाता है, उसी का एक भाग मालूम पड़ता है। हिरन है या नहीं; और है, तो कहां, यह देखने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। यदि इनके पेट का रंग भी इनके पीठ के ही रंगों की भांति गहरा होता, तो ये जहां भी खड़े होते, दूर से ही चमक जाया करते।"

इस विषय में थोड़ी सी जानकारी सुभाष की भी थी; बोला: "डाक्टर जी, इन्हीं को प्रकृति के रक्षात्मक रंग कहते हैं न? पशु जिन परिस्थितियों में रहते हैं, उनके अनुकूल ही उनके शरीर के रंग बन जाते

हैं। चीता पेड़ों की छाया में छिपकर बैठता है, जहां धूप और छाया के कारण काली और सफेद गोल-गोल चित्तियां बनी होती हैं, इसलिए उसकी खाल पर ही चित्तियां बन गई हैं। परिणाम यह होता है कि पेड़

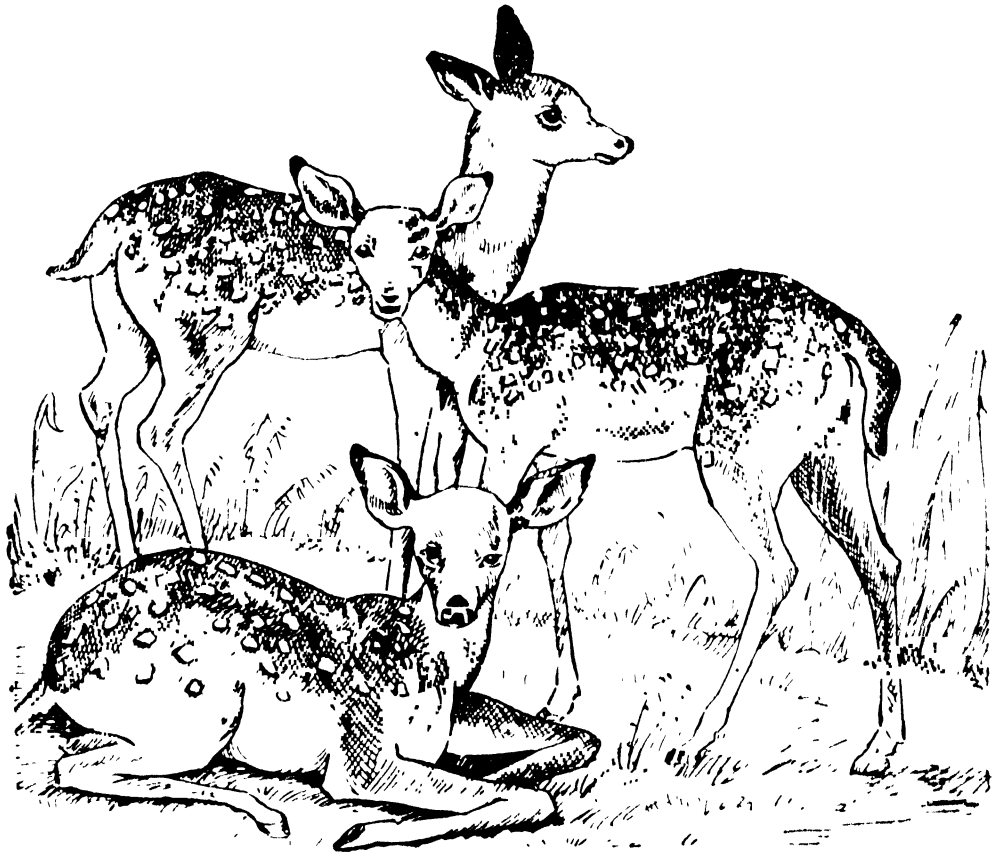

पीठ पर गहरे और पेट पर हलके रंग

की छांह में बैठा हुआ चीता दूर से आने वाले को एकाएक दिखाई नहीं पड़ता। इससे वह न केवल अपना बचाव करने में, बल्कि भले-भटके निकट आये अपने शिकार को भी दबोचने में समर्थ होता है।"

सुभाष को बीच में ही थामकर मत्र फिर डाक्टर ने अपने हाथ में ले लिया: "इसी तरह बाघ सरकंडों और लम्बी-लम्बी घास के जंगल में रहना पसन्द करता है। इन सरकंडों और घासों की धूप में बनने वाली छायाएं लम्बी काली धारियों जैसी दिखाई पड़ती हैं। बाघ के शरीर ने भी इन धारियों को अपना लिया है। लम्बी-लम्बी घास में पड़ा हुआ बाघ तब तक आपको दिखाई नही पड़ेगा, जब तक कि आप उसके मुंह में ही न पहुंच जायें। यही हाल बबर शेरों (केसरी) का है, जो रेतीले मैदानों और भूरी चट्टानों के प्रदेश में पाये जाते हैं। उनका रंग उन्हीं प्रदेशों की परिस्थितियों के अनुसार भूरा हो गया है।"

थोड़ा सा पाण्डित्य प्रदर्शन का जोश मुझे भी चढ़ा; बोला:

"प्रकृति ने जीवों को उनकी निकटवर्तिनी परिस्थितियों में छिपा देने का जो यह कौशल किया है, उसे देखकर मैं भी कम विस्मित नहीं हुआ हूं। रंग विरंगे फूलों में विहार करने वाली तितलियां उन फूलों से इतनी मिलती-जुलती होती हैं कि कई बार तितली और फूल में भेद करना कठिन हो जाता है। इससे वे बेचारी उन पक्षियों के आक्रमण से बच जाती हैं, जो उनकी ताक में रहते हैं और मौका मिलते ही उन्हें झपटकर दबोच लेते हैं।"

डाक्टर कहने लगे : "मैंने तो पुस्तक में ऐसी मछलियों तक का हाल पढ़ा है, जिनके शरीर का रंग पानी के नीचे की भूमि की सतह के अनुसार बदलता रहता है। जब ये मछलियां ऐसे स्थान पर होती हैं, जहां नीचे भूमि की सतह पर गोल-गोल कंकर होते हैं, तो इनके शरीर पर भी गोल-गोल चित्तियां दीखने लगती हैं; और जब ये ऐसे स्थान पर पहुंचती हैं, जहां नीचे रेत होती है, तो इनके शरीर की चित्तियां छिप जाती हैं और सारा शरीर रेत की तरह एकसार सलेटी दिखाई पड़ने लगता है। एक बार परीक्षण के लिए इन मछलियों को ऐसे पानी में रखा गया, जिसके नीचे शतरंज की तरह काले और सफेद खाने चित्रित कर दिये गये थे। बड़े आश्चर्य की बात यह हुई कि चार-पांच घण्टे बाद मछलियों के शरीर पर भी वैसे ही ठीक चौकोर खाने दिखाई पड़ने लगे।"

बात सचमुच विस्मय की थी। देवेन्द्र कहने लगा : 'मैंने इन हरी घास पर जीवित रहने वाले टिड्डों में एक अद्भुत बात देखी है। सर्दियों में इन टिड्डों का रंग बिल्कुल हरी घास से मिलता जुलता होता है --और जब यह टिड्डा हरी घास में बैठा हो, तब इसको ढूंढ पाना बहुत ही मुश्किल है। परन्तु इससे भी बड़ी विचित्र बात यह है कि अप्रैल-मई के गरमी के महीनों में, जब घास का रंग सूखकर भूरा और सफेद पड़ चलता है, तब घास के साथ-साथ इन टिड्डों का रंग भी बदलकर वैसा ही भूरा और सफेद हो जाता है। मैंने हरे और भूरे दोनों प्रकार के टिड्डों के नमूने शीशियों में रखे हुए हैं। यदि इन्हें यह सुविधा प्राप्त न होती, तो वे चिड़ियां इन्हें कभी का चट कर गई होतीं, जिनकी भूख इन्हें देख पाते ही फिर ताजी हो जाती है।"

कृष्ण कम बोलता है; पर अब उसने भी अपने दिमाग पर जोर डालकर कुछ बात निकाली : "और डाक्टर जी गिरगिट ? वह भी तो इसी तरह रंग बदलता है !"

हिरनों का झुण्ड कभी का पीछे छूट गया था, परन्तु उनके चितकबरे रंगों ने कुछ देर के लिए मनोरंजक सामग्री हमें प्रदान कर दी थी। पं० हरिवंश चुपचाप चल रहे थे। मैंने कहा : 'क्या सोच रहे हैं, हरिवंश जी ?"

१०

पशुओं का वर्णान्ध संसार

पं० हरिवंश हँस पड़े; कहने लगे: "एक बार एक चींटी एक चीनी के कारखाने में पहुंच गई। वहां चीनी की बोरियों के ढेर लगे हुए थे और सैकड़ों आदमी चीनी के निर्माण में तत्पर थे। देखकर चींटी विस्मय और आनन्द से भर उठी--'अहो, मेरे लिए इतने आदमी जुटे हुए हैं।' कभी वह इस बोरी पर चढ़ती और कभी उस पर। काफी घूम-फिरकर उसने कहा: 'यह चीनी तो हमें बहुत दिन के लिए काफी होगी; और इसे बोरियों में न भरा जाय तो भी कोई हर्ज नहीं।' पर उसके इस मन्तव्य को किसी ने सुना नहीं। चीनी की मिल से निकलते हुए दरवाजे के पास वह 'महान चींटी' एक कारीगर के पांव से दबकर मर गई।"

"क्या मतलब हरिवंश जी ?" मैंने चींटी की कथा पर हँसते हुए कहा।

"मतलब कुछ नहीं। एक सच्ची घटना है। अखबार में छपी न होने पर भी इसकी सत्यता की गारंटी मैं कर सकता हूं" मुस्कराते हुए वह बोले।

"इसकी सत्यता के विषय में हम में से किसी को भी सन्देह नहीं है। परन्तु अचानक बाघ, चीतों और गिरगिटों के बीच में यह चींटी कहां से आकर टपक पड़ी ?"

"चींटी उनके बीच में नहीं टपकी; यह टपकी है आपके बीच में। जैसे चींटी ने समझा था कि सारा कारखाना एक उसी को ध्यान में रखकर और उसी को केन्द्र मानकर चल रहा है, उसी तरह आपने भी यह मान लिया है कि सारी दुनिया मनुष्य को केन्द्र मानकर चल रही है, और सब काम उसी ढंग से हो रहे हैं, जैसे कि हम उन्हें देखते हैं।"

कुछ देर तक हम सभी चुप रहे; फिर पं० हरिवंश स्वयं ही बोले: "आप लोगों ने बड़े मनोरंजक रूप से यह मान लिया कि बाघ की धारियां और चीते की चित्तियां इसलिए बनाई गई हैं, जिससे कि वह

अपने आस-पास की परिस्थितियों में छिपकर बैठ सके और दिखाई न पड़े; इस प्रकार अपनी जीवन-यात्रा को सुगम बना सके। आपने इसी तरह यह भी मान लिया कि आज तक जो हिरन पृथ्वी-तल पर बचे हुए हैं, वे केवल इसीलिए कि उनकी पीठ के रंग घने चितकबरे हैं, और पेट की ओर रंग हल्के होते हुए अन्त में बिल्कुल सफेद हो गये हैं। बातें सुनने में बड़ी मनोरंजक मालूम होती हैं, पर ये हैं बिल्कुल गप !"

पं० हरिवंश बड़ी भारी भूल कर रहे हैं। उनका खयाल है कि ये रंग इत्यादि की बातें हमारे अपने मस्तिष्क की उपज हैं और इनका खण्डन बड़ी सरलता से किया जा सकता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि हमने तो ये बातें केवल अंग्रेजी की मोटी पोथियों में पढ़ी हैं, जिनमें रंगीन तस्वीरें देकर इन जीव-शास्त्र के सिद्धान्तों का विशदीकरण किया गया है। ऐसे असंदिग्ध प्रामाणिक सिद्धान्तों का खण्डन करने की चेष्टा करके पं० हरिवंश कुछ भला नहीं कर रहे। इन्हें गप बताकर वे अपनी स्थिति उपहासास्पद बना रहे हैं।

पं० हरिवंश कहने लगे : "आपने यह मान लिया है कि जैसे आप देखते हैं, वैसे ही शेर चीते भी देखते हैं और जैसे आप सोचते हैं वैसे ही हिरन और भालू भी सोचते हैं। और आपने बड़े गजे से अपनी ही तराजू से उन्हें भी तोल डाला है।"

इस बार मुझे सात्विक जोश आगया; बोला : "देखिये हरिवंश जी, ये पशु हम मनुष्यों की तरह देखते और सोचते हैं या नहीं, इस विषय में मेरी जानकारी नहीं है। परन्तु मैंने बन्दरों, गिलहरियों, यहां तक कि चिड़ियाघर के शेरों को भी अपने भोजन के सम्बन्ध में बिलकुल वैसा ही आचरण करते पाया है, जैसा आदमी करते हैं। भोजन को मुख तक पहुंचाने और पेट में डालने का उन सबका प्रयत्न देखने में भी बिलकुल हमारे प्रयत्न सरीखा ही होता है। कभी गिलहरी को, या बन्दर को खाते देखिए, आपको यही मालूम होगा, मानो कोई छोटा बालक भोजन कर रहा है।"

"आप विषय से दूर जा रहे हैं। मैं भोजन खाने के ढंग की बात नहीं कर रहा, भोजन प्राप्त करने के ढंग की बात कर रहा हूं। इतना मानने के लिए तो किसी पुस्तक का हवाला देने की आवश्यकता नहीं है, कि ये प्राणी निशाचर हैं और हम मनुष्य दिवसचर।"

देवेन्द्र कुछ अड़ गया : "कई बार शेर, बाघ और चीते दिन में भी शिकार करते हैं।"

परन्तु मैं इस बात पर अड़ना नहीं चाहता था; बोला : "उनका वह दिन का शिकार नियम नहीं, अपवादस्वरूप है। यह मानने में हमें

कोई आपत्ति नहीं है, कि ये प्राणी निशाचर हैं।"

"तो यह भी आप मान जायेंगे कि रात के अंधकार में रंग वैसे दिखाई नहीं पड़ते, जैसे कि दिन के प्रकाश में। सत्य यह है कि रंगों को चमक प्रकाश से ही प्राप्त होती है। जितना तीव्र प्रकाश होगा, उतनी ही रंगों की चमक अधिक होगी। परन्तु ये प्राणी तो तेज प्रकाश सहन ही नहीं कर पाते। ये अपने शिकार के रंगों को कैसे देख पायेंगे ?"

"तो आपका मतलब है कि ये बिना अपने शिकार को देखे ही उस पर आक्रमण करते हैं ?" डाक्टर अनन्तानन्द ने कहा।

"यह बात मैं अभी नहीं कह रहा, थोड़ी देर बाद कहूंगा। अभी तो मैं केवल यह कह रहा हूं कि रात के अंधेरे में वे रंग–रक्षात्मक रंग–जिनके ऊपर आपने वन के पशुओं का जीवन आधारित कर दिया है, उस प्रकार दिखाई ही नहीं देते, जैसे कि वे दिन में दीखते हैं। इसलिए न तो बाघ अपनी धारियों का लाभ हिरन की दृष्टि से बचने के लिए उठा सकता है, और न हिरन अपनी पीठ के गहरे और पेट के सफेद रंग के कारण चीते की दृष्टि से छिप सकता है।"

"पर एक बात है ! रात में हम मनुष्यों को बहुत कम दिखाई पड़ता है, पर वन के पशुओं को वैसा ही दिखाई पड़ता है, जैसा हमें दिन में। अतः क्या यह सम्भव नहीं कि हमें दिन में रंग जैसे चमकते दिखाई पड़ते हैं, वैसे ही इन पशुओं को रात में भी दिखाई पड़ते हों ?" सुभाष ने शंका की।

"ये प्राणी वर्णान्ध–जिसे रंग दिखाई न पड़े; काला, पीला, लाल सब एक जैसा ही दीखे–होते हैं। अतः शेर को हिरन और हिरन को शेर एक ही रंग के नजर आते हैं; ठीक वैसे ही, जैसे कि कैमरे के फोटो में रंग बिरंगी सब चीजें एक ही रंग की दिखाई पड़ती हैं। अतः रात में रंगों की चमक न होने के साथ-साथ इन पशुओं की वर्णान्धता आपके उस रक्षात्मक रंग के विरुद्ध बड़ी युक्ति है।" पं० हरिवंश ने कहा।

इस बात का क्या उत्तर दिया जाय ? मैं जानता हूं कि ये प्राणी वर्णान्ध होते हैं––इतना ही नहीं, हमारे गाय, बैल, घोड़े, और भैंसें सभी वर्णान्ध हैं।

पं० हरिवंश फिर कहने लगे : "और यह धारणा––कि जैसे मनुष्य दृष्टि का उपयोग करता है, वैसे ही ये पशु भी करते होंगे–– और भी गलत है। यह ठीक ऐसा ही है, जैसे कोई बन्दर यह सोचे कि शेर का भय उपस्थित होने पर जैसे मैं पेड़ पर चढ़कर जान बचाता हूं, वैसे ही हिरन भी बचाते होंगे, या शेर यह विचार करे कि जैसे मैं पंजे

की चोट से शिकार को मार डालता हूं, वैसे ही हाथी भी पंजे की चोट करता होगा। सच बात यह है, कि प्रत्येक प्राणी की शक्तियां अलग-अलग दिशा में विकसित हुई हैं। शेर की शक्ति उसके पंजों और कीलों में है, तो हाथी की शक्ति उसकी सूंड में और हिरन की शक्ति उसके पतले-पतले पैरों में है, जिनसे वह बीस-बीस फीट की कुलांचे भरता चला जाता है। इसी तरह यह भी सच है कि चारों ओर की परिस्थिति की जानकारी के लिए जिस तरह मनुष्य अपनी आंखों पर निर्भर रहता है, उसी तरह ये वन के निशाचर और दिवसचर सभी पशु मुख्य रूप में अपनी नासिका और कानों पर निर्भर रहते हैं। दृष्टि शक्ति इनके लिए बिल्कुल गौण है। शेर या चीते को आंखों से बिना देखे, केवल वायु-प्रवाह के साथ आने वाली गंध से चीतल या काकड़ यह पहचान जायगा कि शेर आस पास ही कहीं है। इसी प्रकार शेर और बाघ भी—कहा जाता है कि चीते में घ्राण-शक्ति तीव्र नहीं होती—अपने भोज्य पशुओं की स्थिति का पता गन्ध और शब्द से लगा लेते हैं। फिर रक्षात्मक रंगों का प्रश्न ही कहां उठता है?"

सत्य को ग्रहण करने में सदा तत्पर रहना चाहिये, मैं तो इस सिद्धान्त में विश्वास रखता हूं। मैं जानता हूं कि वन के इन सभी पशुओं की श्रवण-शक्ति और घ्राण-शक्ति स्वभावतः अत्यधिक सूक्ष्म होती है। फर्लांग भर दूरी पर भी यदि कोई लकड़ी टूटने या पत्थर फिसलने का मामूली सा भी शब्द होगा, तो चीता या बाघ न केवल उस शब्द को सुन लेगा, बल्कि सही-सही उस स्थान का भी अनुमान कर लेगा, जहां कि वह शब्द हुआ है। स्वयं शब्द और गन्ध के प्रति इतने ग्रहणशील होने के कारण ये प्राणी अपने शब्द और अपनी गन्ध को छिपाने में भी बहुत सावधान रहते हैं। घने से घने जंगल में, जहां सूखे पत्ते पड़े होते हैं, जो मामूली से दबाव से ही टूटकर शब्द करते हैं, ये प्राणी छाया की तरह निःशब्द चल-फिर सकते हैं और बिना पता चलने दिये अपने शिकार का चुपचाप मीलों तक पीछा कर सकते हैं। वायु के प्रवाह का ये खूब ध्यान रखते हैं, क्योंकि उससे इनकी गन्ध फैलती है। अतः जब ये अपने शिकार की घात में होते हैं, तब सदैव यह यत्न करते हैं कि अपने संभावित शिकार की ऐसी दशा में रहें, कि वायु का प्रवाह शिकार की ओर से इनकी ओर आ रहा हो, जिससे ये तो अपने शिकार की गन्ध पा सकें, परन्तु शिकार इनकी गन्ध न पा सके। अतः मैंने चट पं० हरिवंश के इस मत को स्वीकार कर लिया कि रक्षात्मक रंगों की बात पूर्णतः सत्य नहीं हो सकती। कम से कम वन के पशु आत्म-रक्षा के लिए अथवा दूसरे पर आक्रमण करते हुए इन रंगों से विशेष लाभ नहीं उठाते। वन का जीवन किन्हीं और ही सूत्रों से संचालित होता है।

मैंने कहा : "यह ठीक ऐसा ही है जैसा हाल कुत्ते का है। कुत्ते की घ्राण-शक्ति एवं श्रवण-शक्ति हम मनुष्यों से बहुत भिन्न होती है। कुत्ता उन गंधों को सूंघ सकता है, जिन्हें हम किसी तरह अनुभव नहीं कर सकते। वह उन शब्दों को सुन सकता है, जो हमें बिलकुल सुनाई नही पड़ते। कुत्ता एक मनुष्य के शरीर की गन्ध को दूसरे मनुष्य के शरीर की गन्ध से अलग करके पहिचान सकता है। और मेरा अनुमान है कि रात में चोर की मामूली-सी आहट अथवा बिना आहट जो कुत्ता उसकी स्थिति को जान जाता है, वह चोर (अपरिचित व्यक्ति) के शरीर की गन्ध के कारण जान पाता है; उसके शब्द के कारण उतना नहीं।"

हमारा रास्ता अब अपेक्षाकृत खुली भूमि को छोड़कर घने वन में प्रविष्ट होने लगा था। बाईं ओर ऊंची पहाड़ी शुरू हो गई थी, जिस पर घास, बेलों, झाड़ियों और पेड़ों के कारण भूमि को देख पाना कठिन था। इस पहाड़ी के कारण हमारे रास्ते की मिट्टी भी सील रही थी। पहाड़ी से रिस-रिसकर जलीय अंश नीचे की ओर आता रहता है और वह महीनों तक पहाड़ी के निचले भाग में सील बनाये रखता है। यहां सीली मिट्टी पर हमें बाघ के पदचिह्न दिखाई दिये, जो देखने में ताजे मालूम होते थे। पर यह भी सम्भव था कि ये गत रात्रि में बने हों, बाघ रास्ते पर उसी ओर गया था, जिस ओर हम बढ़ रहे थे और उसके लौटने के कोई पदचिह्न रास्ते पर नहीं थे। यह आवश्यक नहीं कि बाघ हमें रास्ते में बैठा हुआ ही मिल जाय; यह और भी कम सम्भव है कि मिल जाने पर वह हम पर आक्रमण ही कर दे, परन्तु फिर भी बाघ के पीछे इस घने जंगल में चलने में एक विचित्र-सा अनुभव होने लगा; कारण कि वन में इस तरह चलना-फिरना हमारा नित्य का कार्य नहीं है। पहाड़ी गांवों के निवासी तथा वन में रहने वाले गूजर इन बातों का खयाल भी नहीं करते। बहुत सम्भव है कि वे शेर और चीतों के पदचिह्नों को पहिचान भी न पाते हों।

चीला अब दूर नही है। मुश्किल से डेढ़ मील होगा। यह भी कोई ठेका नहीं है कि चीला के बंगले पर ही चलकर सोयेंगे, बल्कि जहां भी रात बिताने लायक ढंग की जगह दीख जायगी, वहीं डेरा डाल देंगे। इस बात को ध्यान में रखकर, हम सोने के लिए उपयुक्त स्थान देखते हुए चलने लगे।

रक्षात्मक रंगों के सिलसिले पर अंतिम चोट की पृथ्वीराज सेठी के चुटकुले ने। बिना कोई प्रसंग जोड़े वे कहने लगे : "एक तरुण विलायत से कृषिशास्त्र की बड़ी भारी परीक्षा पास करके लौटा था। एक दिन वह अपने गांव गया और घर के बागीचे में पहुँचकर अपने दादा से कहने लगा : 'अरे दादा जी, आपने इस आम के पेड़ की क्या दुर्दशा कर रखी

है। न इसे खाद दिया गया है और न बरसों से इसकी नियमित सिंचाई हुई दीखती है। यदि आप इसे अमोनियम सल्फेट और पोटाशियम नाइट्रेट का खाद अमुक परिणाम में मिलाकर नियम से १५-१५ दिन बाद दें, तो यह आपको चौगुने आम देगा। वे आम बड़े भी होंगे और मीठे भी। शिक्षा के अभाव में इसी तरह देश के बाग निकम्मे हुए जा रहे हैं।'

"बूढ़े दादा जी अपने तरुण पौत्र के ज्ञान से चकित होकर मुंह बाये देखते रह गये। अन्त में बोले : 'पर बेटा, यह पेड़ तो अमरूद का है !'

"आप लोगों ने भी आज कुछ ऐसा ही हाल किया है।"

११

नरभक्षकों की रोमांचकारी लीला

जो स्थान हमने आज रात बिताने के लिए चुना था, वह सामान्यतः ठीक ही था। एक ओर पहाड़ सीधा बीस फुट ऊंचा खड़ा था; उसके नीचे बरसाती नाले के बहाव में बहकर आया हुआ बालू जमा हुआ था। यह बालू का विस्तार कोई तीस-पैंतीस कदम तक था, जिस पर कोई घास का तिनका तक नहीं उगा हुआ था। उसके परे पेड़ों और झाड़ियों में जंगल था। यदि इस जंगल में से कोई पशु निकलकर हमारी ओर बढ़े, तो उसे कम से कम बीस कदम खुली हुई भूमि को पार करना होगा; तभी वह हम तक पहुंच सकेगा। पहाड़ की एकदम जड़ के साथ साथ पानी की छोटी सी धारा बह रही थी। इस बालू के मैदान की बायीं ओर भूमि का अंश कुछ टीले की तरह उठकर फिर सीधा खड़े हुए पहाड़ में जा मिला था। जो कुछ थोड़ा बहुत सावधान रहने की आवश्यकता थी, वह इसी ओर से थी।

दोपहर को गौरीकुंड में भोजन बनाते हुए पं० हरिवंश ने सुझाव दिया था कि शाम के लिए भी रोटियां उसी समय बना डाली जायें, परन्तु पृथ्वीराज सेठी का आग्रह तुरन्त तैयार करके भोजन करने का ही रहता है। अभी हमारे पास भोजन बनाने के लिए समय था और अविलम्ब हम उसमें जुट गये। भोजन बनाने का मुख्य काम करना तो दो तीन ही साथियों को पड़ता था, परन्तु यह सम्भव नहीं था कि दूसरे लोग पास न बैठें। सबके पास बैठे रहने से काम करने वालों को काम बोझल नहीं मालूम होता था। गप-शप और हँसी-मजाक में कार्य का परिश्रम सुखद बन जाता है।

सुभाष आलुओं की सब्जी बनाने का जिम्मा लेकर बैठा था। आग जब ठीक ढंग से जलने लगी, तो उसने सिर ऊपर उठाया; बोला : 'क्यों भाई जी, अगर इस जंगल में भी कोई नरभक्षक शेर हो तो ?"

पं० हरिवंश को ऐसी बातों का उत्तर देने में क्षण भर का भी विलम्ब नहीं लगता; बोले : "तब कल सवेरे तक हम में से कोई न कोई एक कम हो जायेगा।"

कृष्ण बड़ा उत्साह प्रकट करते हुए हँसता हुआ कहने लगा : "बस सुभाष ही कम होगा। बाघ सुभाष को ही पकड़ ले जायेगा।"

जिस प्रदेश में हम बैठे हैं, यह गढ़वाल और कुमाऊं की पहाड़ियों की शृंखला से सीधा जुड़ा हुआ है। इन पहाड़ियों में बाघ और चीते बहुत बार नरभक्षक बनते रहते हैं, अतः यह बात एक दम असम्भव नहीं है कि कोई भूला-भटका नरभक्षक आज इसी ओर आ जाये। सोचकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। तब पं० हरिवंश की भविष्यवाणी कितनी सच उतरेगी, इसे मुझसे अधिक अच्छी तरह कोई नहीं जानता। परन्तु कुशलता की बात यही है कि पिछले पचास वर्ष में इस क्षेत्र में किसी बाघ या चीते के नरभक्षक होने की खबर सुनी नहीं गई। परन्तु जो चीज पचास वर्ष में नहीं हुई, वह भी एक दिन हो जाती है।

"और अगर हम रात भर अपने पास आग जलाये रखें तो?" सुभाष ने पूछा।

"तो नरभक्षक आग की रोशनी में अच्छी तरह देख-भालकर मोटे ताजे आदमी को चुनेगा।"

सुभाष का आशय यह था कि आग की चमक शायद नरभक्षक से हमारी रक्षा कर सकेगी। परन्तु ऐसे अनेक उदाहरण विद्यमान हैं, जहां कि नरभक्षक बाघ या चीता मीलों दूर से केवल प्रकाश की चमक से ही आदमी का अनुमान करके आक्रमण करने को आ पहुंचा। मनुष्य के बलाबल तथा रहन-सहन का ज्ञान होने के साथ साथ इन पशुओं का आग और शब्द का भय कम हो जाता है और साहस की मात्रा प्रत्येक नये मानव-शिकार के साथ बढ़ती जाती है।

पं० हरिवंश कहने लगे: "बहुत वर्ष पहले गढ़वाल की पहाड़ियों में रुद्रप्रयाग के इलाके में एक चीता नरभक्षक हो गया था। सन् १९१८ से १९२६ तक के ८ वर्षों में इस एक नरभक्षक ने इतना आतंक फैला दिया था कि भयंकर से भयंकर डाकुओं की टोली भी उतना न फैला सकती। और आतंक की बात भी थी। सवा सौ से अधिक व्यक्तियों को इसने मारकर खा डाला था। कुछ सौभाग्यशाली केवल घायल होकर बच गये थे।

"इस चीते के रहने का कोई निश्चित स्थान नहीं था। आज यदि यह एक गांव में अपना शिकार पकड़ता, तो तीन दिन बाद अथवा अगले ही दिन १० मील दूर किसी दूसरे गांव में पहुंचकर किसी पुरुष अथवा स्त्री को धर दबोचता था।

"लोग अंधेरा होने से पहले ही अपने घरों में घुसकर दरवाजे बन्द कर लेते थे; परन्तु जब भी कोई अभागा व्यक्ति भूल से घर से बाहर रह जाता था——बड़े आश्चर्य की बात है——तो चीता उसे तुरन्त इस प्रकार दबोच लेता था, जैसे बस वह उस आदमी की प्रतीक्षा में ही खड़ा हुआ हो।

"कभी किसी मकान का दरवाजा भूल से खुला रह जाता था, तो

यह जरा-सी आवाज किये बिना अन्दर घुस आता था और इतने सधे हुए ढंग से अपने नुकीले दांत आदमी की गर्दन में गड़ा देता था कि उस बेचारे को एक बार चीखने तक का अवसर न मिलता था। अगले दिन सवेरे फर्श पर गिरी हुई खून की बूंदों की लम्बी पंक्ति से ही यह अनुमान होता था कि रात में चीता आकर आदमी को उठा ले गया है।

"कई बार मकानों से बाहर कोई शिकार चीते को नहीं मिल पाता था। तब वह ऐसा मकान ढूंढकर, जिसका दरवाजा कमजोर हो, दरवाजे को अपने पंजे से तोड़ डालता था और अन्दर के लोगों में से---जो चीते की गुर्राहट और दरवाजे पर पड़ रही चोटों की आवाज से जाग चुके होते थे, परन्तु भय के कारण कुछ भी प्रतिरोध नहीं कर पाते थे---किसी एक को पकड़कर उठा ले जाता था। यह उठा ले जाना ठीक इस प्रकार का था जैसे बिल्ली चूहे को मुंह में उठाकर ले जाती है। आदमी या औरत चाहे कितनी

शिकार को ले जाता हुआ बाघ

ही भारी क्यों न हो, जब चीता उसे उठाकर ले जाता था, तो साधारणतया शिकार का कोई भी अंग भूमि पर नहीं छू रहा होता था। लोग आतंक के मारे चिल्ला तक नहीं पाते थे। जब चीता अपने शिकार के साथ काफी दूर निकल जाता था, तब शोर मचता था---'ले गया, ले गया!' और इस शोर

को सुनकर बाकी लोगों के भी रोंगटे खड़े हो जाते थे। स्त्रियां अपने बच्चों को छाती से चिपटा लेती थीं और बालक घबराकर रोने लगते थे।

"कभी ऐसा भी होता था कि दरवाजा मजबूत होता था और चीते के बार-बार पंजे मारने और धक्का देने पर भी वह नहीं टूटता था। पंजों के गहरे निशान किवाड़ की लकड़ी में अंकित हो जाते थे; चीते की क्रुद्ध गुर्राहट दूर-दूर तक सुनाई पड़ती थी, परन्तु सारी बस्ती में कोई भी व्यक्ति चीते का प्रतिरोध करने की हिम्मत नहीं करता था। ऐसे एक-दो प्रयत्नों में असफल रहने के बाद चीते ने दीवार के नीचे से जमीन खोदकर मकान के अन्दर घुस जाने का तरीका ढूंढ निकाला और इस प्रकार अपने शिकार को पकड़कर ले जाने लगा।"

पं० हरिवंश के इस विवरण को सुनकर हमें दिन में भी कुछ विचित्र सा अनुभव होने लगा। अब दिन था भी कितना बाकी! पश्चिम में सूर्य तेजी से क्षितिज की ओर झुक रहा था। जंगल के ऊपर सांझ का अंधेरा अभी उतरा तो नहीं था, परन्तु उसकी रूपरेखा बंधने लगी थी।

डाक्टर अनन्तानन्द कहने लगे: 'इन पहाड़ी लोगों में वैसे साहस की कमी नहीं है। फौज में भरती होकर ये लोग आश्चर्यजनक वीरता प्रदर्शित करते हैं, परन्तु अशिक्षा, अन्धविश्वास और शस्त्रों के अभाव में नरभक्षकों का मुकाबला करने की ये कल्पना भी नहीं कर सकते। केवल विवश भाव से एक एक करके अपने साथियों और संबंधियों को नरभक्षक के पंजों और कीलों में दबते देखते रहते हैं और अपनी बारी आने की प्रतीक्षा करते हैं। पहाड़ों में यह अन्धविश्वास बहुत प्रचलित है कि नरभक्षक वस्तुत. बाघ या चीता नहीं होता, बल्कि कोई भ्रष्ट योगी या तांत्रिक बाघ या चीते का देह धारण करके अपनी नर मांस खाने की इच्छा पूरी करता है। सामान्य बाघ या चीते को तो मारा भी जा सकता है, परन्तु योगबल या तंत्रबल से नरभक्षक बने साधु को मार पाना कहां सम्भव है? उनका विश्वास है कि दुनिया की किसी भी बन्दूक की कोई भी गोली ऐसे नरभक्षक का बाल भी बांका नहीं कर सकती।"

पं० हरिवंश बोले: "इस अन्धविश्वास के प्रचलित होने का कारण यह है कि नरभक्षक होने पर ये प्राणी बहुत धूर्त और समझदार हो जाते हैं। उतने नासमझ नहीं रहते, जितना कि ग्रामीण लोग आशा करते हैं। इसलिए अपनी मामूली बुद्धि से गांव वाले इन पशुओं को मारने के जो जो उपाय बरतते हैं, वे सौ में से निन्नानवे असफल रहते हैं और प्रत्येक असफलता गांव वालों पर यह विश्वास बिठाती जाती है कि नरभक्षक किसी तरह मारा ही नहीं जा सकता। अवश्य ही उसमें कोई अलौकिक शक्ति होनी चाहिए। यह अलौकिक शक्ति योगबल अथवा तंत्रबल

के सिवाय और क्या हो सकती है ! किसी लालबुझक्कड़ की यह सूझ उन्हें चट से विश्वास दिला देती है कि हो न हो यह नरभक्षक कोई दुष्ट तांत्रिक ही है ।"

सुभाष बोला : "क्यों भाई जी, वैसे क्या यह सम्भव नहीं है कि आदमी शेर का रूप धारण कर ले और फिर बाद में आदमी बन जाय ?"

डाक्टर अनन्तानन्द कहने लगे : "अफ्रीका के 'अन्तुमसिम्बा'—मनुष्य-सिंह, जादू द्वारा शेर या चीता बन जाने वाला मनुष्य—किसी समय बहुत प्रसिद्ध थे। उस देश में नरभक्षकों द्वारा होने वाली हत्याओं में से आधी इन जादूगरों द्वारा की जाती थीं। अब भी वहां का यह जादू एकदम समाप्त नहीं हो गया है। रह-रहकर इन लोगों की कोई न कोई घटना सामने आती ही रहती है।"

पं० हरिवंश कहने लगे : "यों तो अपने देश में भी यह विचार खूब प्रचलित है कि जीवात्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाता है। प्राचीन ग्रन्थों में ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि लोग योग द्वारा सचमुच एक देह को छोड़कर दूसरी देह धारण कर लेते थे।"

"परन्तु अफ्रीका के इन 'मनुष्य-सिंहों' के रूपान्तर तथा अपने देश में होने वाले तथाकथित रूपान्तरों में बड़ा अन्तर है," मैंने कहा : "वहां के ये जादूगर सबके देखते देखते आदमी से शेर बन जाते हैं और दर्शकों में से किसी पर टूट पड़ते हैं। एक बार तीन हिन्दुस्तानी सिपाही अफ्रीका के जंगली प्रदेश में सफर कर रहे थे। रास्ते में उन्हें एक अफ्रीका का निवासी मिला, और बोला : 'आपके पास थोड़ा सा तम्बाकू तो नहीं होगा ?'

"एक सिपाही अपना थैला खोलकर उसमें से तम्बाकू ढूंढने लगा कि थोड़ा सा उस व्यक्ति को दे सके। इतने में वह अफ्रीकावासी व्यक्ति शेर बनकर उस पर टूट पड़ा और उसे घायल करके उठाकर भाग गया। बाकी दोनों साथी भय और विस्मय से जड़ होकर खड़े रहे और जब उन्हें चेत हुआ, तो वे चिल्लाते हुए उल्टे पांव दौड़ पड़े।"

"मेरा तो विश्वास नहीं है कि आदमी इस प्रकार शेर बन सकता है। कुछ न कुछ इसमें धूर्तता अवश्य होनी चाहिए।" पं० हरिवंश ने अविश्वास जताते हुए कहा।

मैंने कहा : "विश्वास तो बहुत लोगों को नहीं था। सन् १९३३ के लगभग अफ्रीका के एक जिले में कुछ नरभक्षक शेरों और इन 'मनुष्य-सिंहों' का सम्मिलित उपद्रव प्रारम्भ हुआ था। हताहतों की संख्या दो सौ से ऊपर पहुंच गई थी। सरकार के अफसरों का विश्वास था कि आदमी शेर नहीं बन सकता और मरने तथा घायल होने वाले व्यक्ति केवल नरभक्षकों के ही शिकार हुए हैं। परन्तु एक के बाद एक बीसियों विवरण

इस प्रकार के प्राप्त हुए, जिनमें आहतों ने बताया कि किस प्रकार उनके देखते-देखते आदमी शेर बन गया और उन पर टूट पड़ा। संख्या में निरन्तर इस तरह बढ़ रही घटनाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। इस रहस्य का उद्‌घाटन करने की काफी चेष्टा अधिकारियों ने की। एक बात और ध्यान देने की यह थी कि नरभक्षक सिंहों द्वारा आक्रमण किये गये व्यक्ति अपना हाल सुनाने को बचते नहीं थे। शेर जिन लोगों पर आक्रमण करते थे, उनमें से निन्नानवें प्रतिशत को मारकर उठा ही ले जाते थे और खा डालते थे। परन्तु इन मनुष्य सिंहों द्वारा आक्रान्त व्यक्ति बहुत बार केवल घायल होकर रह जाते थे और फिर वे विस्तार से रोमांचकारी विवरण सुनाते थे कि किस प्रकार मनुष्य ने सिंह बनकर उन पर आक्रमण किया। ये लोग उन लोगों का नाम-पता भी बताते थे, जो शेर बनते थे। ये शेर बनने वाले लोग अपने जादू के लिए दूर दूर तक मशहूर थे और जब पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार करने की कोशिश की, तो उन्हें ढूंढ पाना मुश्किल हो गया। कोई भी आदमी इन जादूगरों का कोपभाजन बनने को तैयार नहीं था। ये जादूगर भी एक-दो नहीं थे, इनका पूरा गुट का गुट था; और प्रत्येक जादूगर का प्रभाव देसी लोगों पर इतना अधिक था कि वे अपने प्राणों को संकट में डालकर भी उसके कड़े से कड़े आदेश का पालन करते थे, क्योंकि वे जानते थे कि इस आदेश का पालन न करने की दशा म जादूगर उन्हें किसी न किसी उपाय से जरूर मार डालेंगे।

"ये अन्तुमसिम्बा--शेर बन जाने वाले मनुष्य--खुल्लमखुल्ला घोषणा करते थे और लोगों को धमकाते थे कि यदि वे उनके आदेशों को नहीं मानेंगे, तो वे शेर बनकर उन्हें मजा चखा देंगे।

नरभक्षक शेरों के साथ--जिनकी संख्या सात से अधिक थी--मिलकर इन अन्तुमसिम्बाओं का उत्पात बहुत भयंकर हो उठा। एक ओर रात को शेर चुपचाप अथवा दहाड़ते हुए गांव की झोंपड़ियों पर आक्रमण करते थे और दूसरी ओर किसी झोंपड़ी के छप्पर को फाड़कर कोई अन्तुमसिम्बा किसी सोते हुए व्यक्ति पर कूद पड़ता था--जिसे कि वह कुछ समय पहले ही मजा चखाने की धमकी दे चुका होता था। सभी आहतों के शरीर पर शेर के पंजों और कीलों के ही निशान होते थे; हथियार से हुआ घाव किसी के शरीर पर नहीं देखा गया।

"अन्त में बड़ी दौड़-धप और छानबीन करने के पश्चात् पुलिस एक किलिगी नामक व्यक्ति को गिरफ्तार करने में समर्थ हो गई, जिसे इन अन्तुमसिम्बाओं का मुखिया कहा जाता था। उसके जादू का रोब झाड़ फेंकने की अंग्रेज अफसरों ने बड़ी कोशिश की। सबके सामने उसकी जादू की डिबियां और पुड़ियाएं--जिनमें जादूगर ने स्वीकार किया कि जहर

था--फोड़कर और फाड़कर फेंक दी गईं। सबके सामने उसे गालियां दी गईं और चपतियाया गया। देसी लोगों के विश्वास के अनुसार ऐसा करने वाले लोगों को तुरन्त भस्म हो जाना चाहिए था, अथवा निष्प्राण होकर गिर पड़ना चाहिए था। परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ; अंग्रेज अफसर सही सलामत रहे। पर इतनी सब लांछना के बाद भी किलिगी हतप्रभ नहीं हुआ। वह यही कहता रहा : 'रात आने दो; फिर मजा चखा दूगा।' इस बात की कुछ भी परवाह न करके अंग्रेज अफसरों ने उसे पुलिस के सिपाहियों को सौंप दिया और कहा कि 'इसे हथकड़ी बेड़ी पहिनाकर कड़ी देख-रेख में रखो। यदि यह किसी तरह भाग गया, तो जिम्मेदारी तुम्हारी होगी' शाम होने से थोड़ा सा पहले सिपाहियों का हवलदार अंग्रेज अफसरों के पास आया, और बोला : 'हुजूर, किलिगी धमकी दे रहा है कि रात होते ही वह शेर बन जायेगा और हमें मार डालेगा। क्या मैं पहरे के सिपाहियों की संख्या बढ़ा दूं, और उन्हें हुक्म दे दूं कि यदि किलिगी किसी भी तरह भागने की कोशिश करे, तो बिना बहुत सोचे वे उसे गोली मार दें?' अंग्रेज अफसर इतनी मुश्किल से पकड़े गये किलिगी को भागने नहीं देना चाहते थे। उन्होंने खुशी से अनुमति दे दी कि यदि किलिगी भागने की या शेर बनने की जरा भी कोशिश करे तो उसे गोली मार दी जाय।

"रात के लगभग दस बजे उस झोंपड़ी की ओर से एकाएक बड़ा शोर और गुलगपाड़ा सुनाई दिया, जिसमें किलिगी कैद करके रखा गया था। शेर की दहाड़ और आदमियों की चीख-पुकार से अंधेरी रात सिहर-सी उठी। अंग्रेज अफसर अपनी-अपनी राइफलें संभालकर झोंपड़ी की ओर लपके। वहां पहरेदारों का बुरा हाल था। सब बुरी तरह डरे हुए और घबराये हुए थे। एक भी अपने पूरे होश में नहीं था। किलिगी सचमुच ही शेर बनकर हथकड़ियों और बेड़ियों को तोड़कर भाग गया था। सिपाहियों ने उसे शेर बनते देखा। इतना ही नहीं, लालटेन की रोशनी में जब आस-पास पदचिह्नों की खोज की गई, तो जिस दशा में किलिगी गया था, उधर एक बड़े शेर के पदचिह्नों की पंक्ति तो दिखाई पड़ती थी, पर मनुष्य के पैरों के कोई चिह्न उधर नहीं मिले।

"रात के अंधेरे में केवल लालटेनों के प्रकाश के सहारे घने जंगल में इन पदचिह्नों का --जो देखने में शेर के प्रतीत होते थे --पीछा करना खतरे से खाली नहीं था, क्योंकि इस जंगल में किलिगी और उसके अन्य अन्तुमसिम्बाओं के अतिरिक्त छह-सात असली नरभक्षक शेर भी रहते थे। इन शेरों को दिन-दहाड़े आदमियों पर आक्रमण करते और उठा ले जाते देखा जा चुका था। अतः रात में किलिगी के पदचिह्नों का पीछा नहीं किया गया। अगले दिन सवेरे उन पदचिह्नों की खोज की गई। तीन मील तक

शेर के जैसे ही पदचिह्न चलते रहे और उसके बाद वही पंक्ति मनुष्य के पदचिह्नों में परिवर्तित हो गई।

"शिकारियों और सरकारी अफसरों के निरन्तर प्रयत्न के फल-स्वरूप नरभक्षक शेर भी गोली से मार दिये गये और कई अन्तुमसिम्बा भी पकड़कर जेलों में बन्द कर दिये गये, जहां नरहत्या के अभियोग में उन्हें फांसी दे दी गई। उसके बाद नरभक्षकों का उपद्रव शान्त हो गया; परन्तु यह पहेली पहेली ही बनी रह गई कि वे अन्तुमसिम्बा क्या सचमुच ही शेर बन जाते थे, अथवा भयग्रस्त मनुष्यों को अंधेरे में उनकी आकृति झूठमूठ ही शेर जैसी दीखने लगती थी ?"

सुनकर कुछ देर सभी स्तब्ध बैठे रहे। फिर पं० हरिवंश बोले : "किसी पुस्तक में मैंने भी कुछ ऐसा हाल पढ़ा है, जिसमें एक साधु शेर बन कर मनुष्यों को खाया करता था। वह किस्सा इसी देश का है।

"एक बार जब एक नरभक्षक चीते ने बहुत से आदमी मार डाले और उस चीते को मार डालने के सब उपाय व्यर्थ रहे, तो गांव वालों को यह विश्वास हो गया कि हो न हो, यह किसी दुष्टात्मा योगी की करतूत है। पर वह योगी कौन हो सकता है ? गांव वालों ने मिलकर विचार किया और उनका सन्देह एक साधु पर केन्द्रित हुआ। यह साधु कुछ ही महीने पहले इस गांव में आया था और गांव से बाहर एक झोंपड़ी बनाकर रहता था। वह लोगों से बहुत कम मिलता जुलता था; और संयोग कुछ ऐसा था कि नरभक्षक का उत्पात भी उसके इस गांव में आने के बाद ही प्रारम्भ हुआ था।

"निश्चय यह किया गया कि इस साधु पर गुप्त रूप से निगाह रखी जाय। क्योंकि मनुष्यों की हत्याएं प्राय. रात को ही होती थीं, अतः लोगों की बारियां निश्चित कर दी गई कि वे दो दो घंटे साधु की झोंपड़ी पर छिपे-छिपे पहरा दें। पहरा लग गया और दो-तीन रात तक कोई खास बात नहीं हुई। साथ ही इन दो-तीन रातों में कोई मनुष्य भी कहीं नहीं मारा गया।

"उस रात चन्द्रमा नहीं निकला था। दो बजे के लगभग पहरेदारों ने देखा कि वह साधु एक.एक अपनी कुटिया का दरवाजा खोलकर निकला और बड़ी तेज चाल से एक ओर को चला गया। इस समय पहरेदार भय के मारे कांपने लगे थे और साधु का पीछा करने की हिम्मत किसी में न थी। थोड़ी देर बाद गांव के परले छोर से, जिस ओर साधु गया था, एक आदमी की मरणान्तक चीख सुनाई दी और फिर सब शान्त हो गया। पहरा देने वाले अपनी जगह से हिले नहीं। कोई घंटे भर बाद वह साधु फिर अपनी कुटिया की ओर आता दिखाई दिया। उसके मुंह पर खून लगा

हुआ था । कुटिया में घुसकर उसने दरवाजा बन्द कर लिया और सो गया ।

"जान हथेली पर रखकर वे पहरे पर बैठे हुए आदमी आगे बढ़े और बाहर से दरवाजे की कुंडी चढ़ा दी । उसके बाद उन्होंने जो कुछ देखा था, वह लौटकर गांव वालों को सुनाया । फिर समझदार लोग इकट्ठे हुए और सर्वसम्मति से यह तय हुआ कि साधु की कुटिया में आग लगाकर उस दुष्ट साधु को अन्दर ही भस्म कर दिया जाय, और दोपहर से पहले ही वह साधु अपनी कुटिया में जलकर समाप्त हो गया । बड़े आश्चर्य की बात यह कि उसके बाद उस इलाके में नरभक्षक द्वारा होने वाली हत्याएं बन्द हो गईं ।

"मेरा अपना मन इस घटना को सच मानने का नहीं होता, पर यह इसी रूप में मैंने पढ़ी है ।" पं० हरिवंश ने अपनी सम्मति प्रकट की ।

"संसार में असम्भव कुछ भी नहीं है ।" डाक्टर अनन्तानन्द ने गंभीरतापूर्वक कहा : "जितना कुछ हमें दिखाई पड़ता है और जितना कुछ हम जानते हैं, उसके परे भी दुनिया बहुत बड़ी है । विचित्र तथ्यों और अद्‌भुत शक्तियों की कुछ सीमा ही नहीं है ।"

मैंने कहा : "इसमें सन्देह क्या है । जबसे मनुष्य की जिज्ञासा प्रारम्भ हुई है, तब से आये दिन वह एक न एक चौंकाने वाली बात देखता ही आ रहा है । कुछ दिन देखते रहने के बाद हर नई विस्मयजनक बात पुरानी पड़ जाती है और तब उसमें चौंकाने वाला तत्व नहीं रहता । परन्तु यह अब असंदिग्ध रूप से पता चल गया है कि विश्व का बहुत सा रूप अब तक मानवीय नेत्रों को या तो दीख ही नहीं रहा था और या गलत दीख रहा था । परन्तु आज जो रूप दिखाई पड़ता है, सौ साल बाद उसमें से कितना गलत सिद्ध हो जायगा और तब लोगों को दुनिया किस रूप में दिखाई पड़ेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता ।"

"क्या मतलब ?" सुभाष ने पूछा ।

"यही कि ये असम्भव जान पड़ने वाली बातें झूठ नहीं भी हो सकती हैं" मैंने कहा ।

१२

शानदार फनियर

इस समय सूर्य छिप रहा था । हमारा भोजन भी तैयार हो गया था। बिना विलम्ब किये, वार्तालाप को बीच में ही छोड़कर हम भोजन करने बैठ गये। भूख अच्छी लगी थी, अतः जिन पदार्थों के पकाने में इतनी देर लगी थी, उनके समाप्त होने में कुछ भी देर न लगी।

इस स्थान पर एक बड़ा विचित्र अनुभव हुआ। सूर्यास्त के बाद काफी ठंड होने लगी थी, और अब भोजन करने के बाद तो एकदम कुछ कपड़ा ओढ़कर लेट जाने का मन होने लगा। गत रात्रि में गंगा के किनारे इतनी ठंड अनुभव नहीं हुई थी, जितनी आज यहां होने लगी। कारण कुछ समझ में नहीं आया।

हम लेटने की तैयारी कर रहे थे। इस समय अंधेरा तेजी से बढ़ रहा था। जंगल में ज्यों-ज्यों अंधेरा बढ़ना प्रारम्भ होता है, त्यों त्यों शरीर का प्रत्येक रोम स्वयं सावधान होने लगता है। जिस बालू के प्रदेश पर हमने सोने का विचार किया था, उससे थोड़ा सा हटकर एक जरा सा उठा हुआ टीला था। इस टीले पर कुछ 'सर सर' की आवाज सुनाई पड़ी। इस तरह की छोटी-छोटी आवाजें सावधान कानों को बहुत शीघ्र आकृष्ट करती हैं। हम में से कई ने चौंककर उस ओर देखा और जब वह आवाज कुछ देर लगातार आती ही रही, तो हम लपककर उस ओर बढ़े। जब हम टीले के ऊपर पहुंचे, तो हमने एक सांप की पूंछ का अंश झाड़ियों में लुप्त होते देखा।

"आज क्या अजगरों से ही वास्ता पड़ता रहेगा ?" कृष्ण बोला : "एक सबेरे मिला और एक अब यह मौजूद है।"

उस अपर्याप्त प्रकाश में बहुत थोड़ी देर देखी गई वह पूंछ पहले पहल अजगर की मालूम हुई थी। परन्तु भ्रम देर तक नहीं रहा, क्योंकि शीघ्र ही झाड़ियों के दूसरे सिरे पर सांप ने मुंह निकाला। जब तक हमने सांप को अजगर समझा था, हमारे मन में एक अव्यक्त सी प्रसन्नता थी। अजगर से हमें विशेष भय नहीं था, उलटे थोड़ी बहुत यह सम्भावना थी कि शायद हम उसे पकड़कर साथ ले जा सकें। परन्तु यह देखकर हमारी प्रसन्नता चिन्ता में बदल गई कि सांप अजगर न होकर चौड़े फन वाला कोबरा था।

सांप ने भी हमारी उपस्थिति अनुभव कर ली थी और चौकन्ना होकर फन उठाकर इधर-उधर देखने लगा था। कोबरा की यह बड़ी दुर्बलता है कि संकट का आभास होते ही वह चट फन उठाकर खड़ा हो जाता है और इस प्रकार अपना मर्मस्थल शत्रु के प्रहार के लिए खुला कर देता है। इसके विपरीत वाइपर जाति के सांप बहुत धूर्त होते हैं। खतरा उपस्थित होते ही वे अपना मुंह इस प्रकार छिपाकर बैठ जाते हैं कि फिर आसानी से मुंह पर चोट नहीं की जा सकती। कोबरा के फैले हुए फन को देखकर दर्शक आतंकित अवश्य हो जाता है।

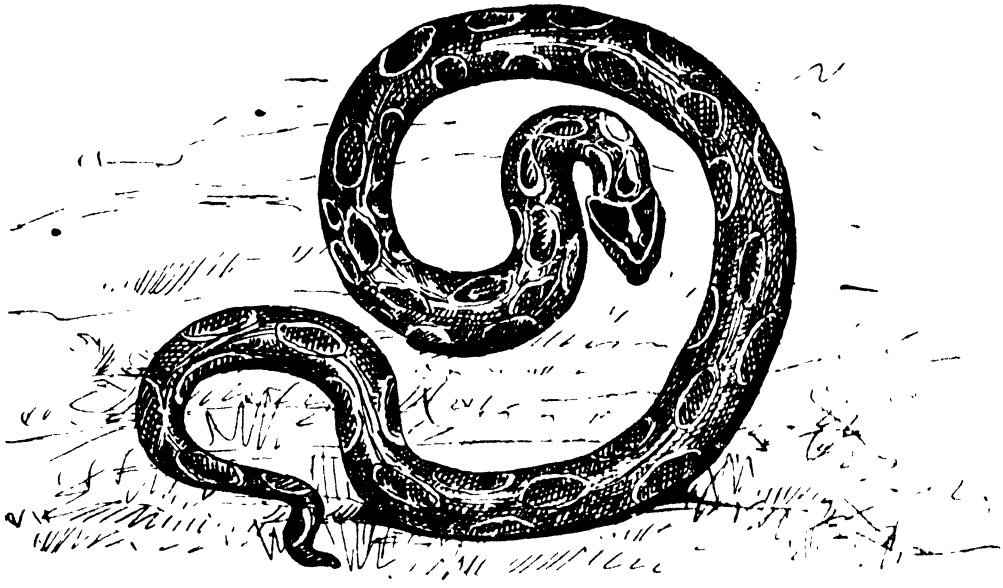

वाइपर सिर को छिपाकर बैठता है

थोड़ी देर फन खड़ा करके स्थिर रहने के बाद भी जब उसे हमारी ओर से कोई आक्रमण होता दिखाई न दिया, तो उसने फन नीचे कर लिया और आगे बढ़ा। अब उसकी सारी देह झाड़ियों से बाहर आ गई थी। वैसा सुन्दर और शानदार कोबरा मैंने दूसरा नहीं देखा। उसका रंग हलका सलेटी था और उसकी गति में एक ऐसी निश्चिन्तता थी, जैसी कि शक्ति-गर्वित सिंह की गति में होती है।

कोबरा सांप हमने बहुत देखे, मारे और पकड़े हैं, पर सदैव उन्हें डरपोक तथा आश्चर्यजनक रूप से फुर्तीला पाया है। हाकी से उसके फन को दबाने की कोशिश में हमें कई बार बड़ी देर में सफलता मिली है, क्योंकि वह इतनी फुर्ती से अपने फन को हिला जुला लेता था कि हाकी सदा गलत जगह भूमि पर पड़ती थी। परन्तु यह कोबरा कुछ और ही चीज था। बाद में नापने पर उसकी लम्बाई भाले के बराबर निकली। यह भाला छह फीट लम्बा था। साधारणतः इस ओर जो कोबरा सांप पाये जाते हैं, उनकी लम्बाई तीन से पांच फीट तक होती है और इस प्रकार के सांपों की

छह फीट लम्बाई अधिकतम समझी जाती है। किंग कोबरा तथा गेंहुअन सांप भी फन वाले होते हैं और उनकी लम्बाई अठारह फीट तक होती है। परन्तु यह जो कोबरा सांप हमारे सामने था, वह अपनी जाति के सर्वोत्तम सांपों में से एक था।

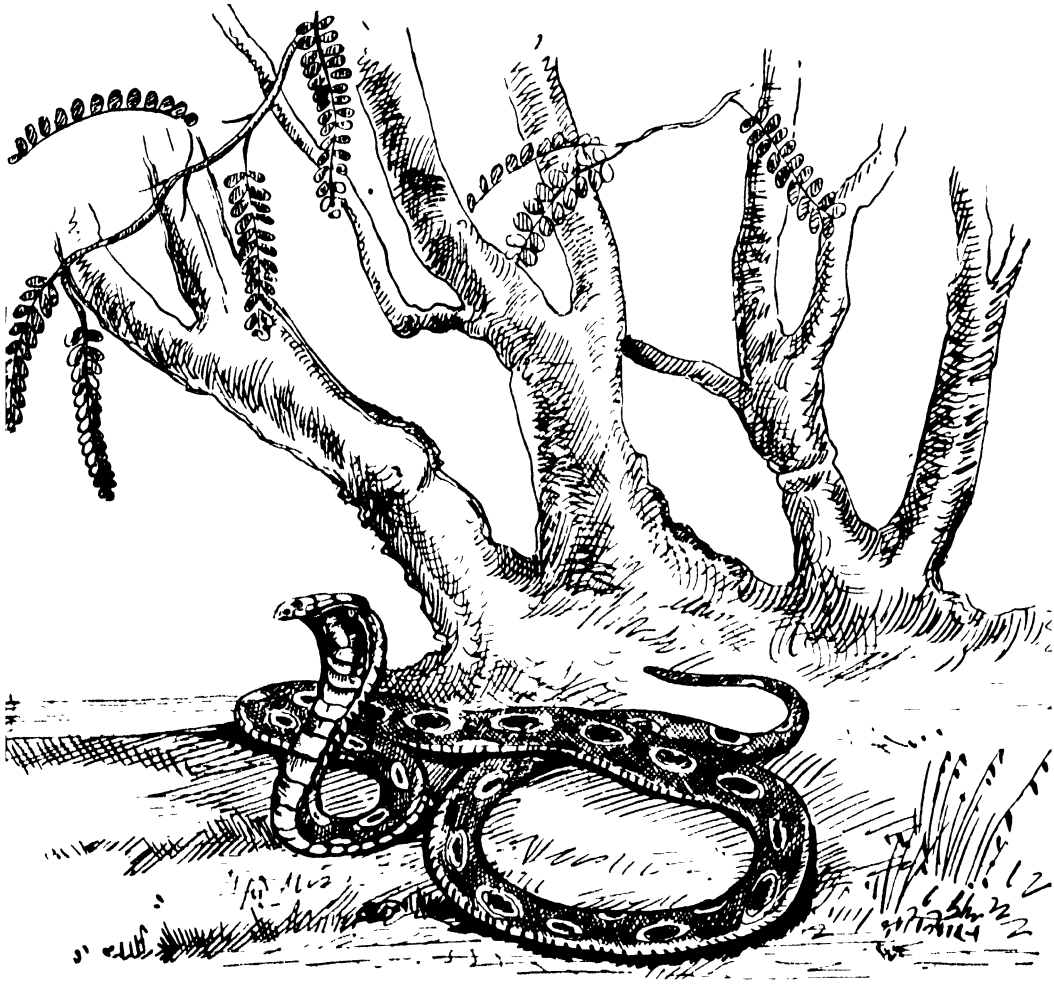

आक्रमण की मुद्रा में कोबरा

यदि दिन का समय होता, तो शायद हम उसे जीवित ही पकड़ने का यत्न करते। परन्तु उस समय बढ़ते हुए अंधेरे में हमने यह खतरा लेना उचित न समझा; और जीवित हम उसे छोड़ सकते नहीं थे। कृष्ण ने उस पर खुखरी फेंकी। खुखरी सांप की पीठ पर लगी, परन्तु उलटी। इससे सांप का शरीर कटा तो नहीं, परन्तु लगता है कि उसकी रीढ़ की हड्डियां टूट गईं, जिससे वह भागने में असमर्थ हो गया। वहीं पड़े पड़े उसने अपना फन उठाकर आक्रमण करना चाहा। इसी समय सुभाष ने उस पर भाले से लाठी की तरह चोट की और भाले के फलक से सांप का फन कटकर एकदम अलग जा पड़ा।

इस तरह कटे हुए फन के विषय में मैंने कई किस्से सुने थे। सुनाने वालों ने सदैव मुझे सावधान किया था कि यदि सांप का फन कटकर धड़ से अलग हो जाय, तो उससे वहुत संभलकर रहना चाहिए, क्योंकि ऐसा फन एकदम झपटकर हमला करता है और हलका होने के कारण वह वड़ी दूर तक उड़कर जा सकता है। इस समय इस बियाबान जंगल में, जबकि रात का अंधेरा काला पड़ता जा रहा था, और एक भयंकर विषैले कोबरे का फन कटकर अलग जा पड़ा था, मुझे उन लोगों द्वारा दी गई चेतावनियां चट याद हो आईं और स्वतःचालित की भांति मैंने कहा : "देखना, फन से दूर रहना। यह उड़कर हमला कर सकता है।"

थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करने के वाद भी जव उस कटे हुए फन ने हमारी ओर उड़कर आने की कोई चेष्टा नहीं दिखाई, तो हम चलकर उसके पास पहुंचे। वह उस समय निर्जीव मांस के टुकड़े के अतिरिक्त कुछ नहीं था। वह कूदकर हमला कर सकता है, ऐसा कोई चिह्न मुझे उसमें दिखाई नहीं पड़ा। इसके विपरीत साप की लम्वी देह देखने में वहुत सुन्दर थी और निष्प्राण होने के वाद भी वह अन्दर की गरमी से काफी देर तक गति करती रही।

सांप का फन कट जाने से हमारा एक नुकसान यह हो गया था कि हम उसकी खाल को सुरक्षित करके अपने अजायवघर में नहीं रख सकते थे। खाल सम्पूर्ण रहती, तो इतने लम्वे कोवरे की होने के कारण उसका महत्व वहुत अधिक होता। फन कट जाने पर उसका सारा सौंदर्य समाप्त हो गया था, अतः मरे हुए सांप को वहीं पड़ा छोड़कर हम वालू पर लौट आये और चादरें ओढ़कर लेट रहे। परन्तु सांप की मृत देह घास-फूस में पड़ी धीरे-धीरे गति कर रही थी और उससे उसी प्रकार की आवाज हो रही थी, जैसी कि झाड़ियों में सांप के चलने से होती है। यदि यह 'सर सर' की आवाज लगातार होती ही रहे, तो यह हमें असावधान वना दे सकती थी और इसके भ्रम में हम उन आवाजों को सुनने में भी धोखा खा सकते थे, जिनसे कि वास्तविक खतरे की सूचना मिलती। इसलिए उस मरे हुए सांप को हमने झाड़-झंखाड़ों में से निकालकर वालू और पत्थरों पर डाल दिया, जहां उसके हिलने से भी कोई शब्द न हो।

जव कहीं कोई सांप मारा जाता है, तो उसके पीछे न जाने कितनी पुरानी कहानिया और सच्ची घटनाएं दुहराई जाती हैं। कव, कहां, कौनसा सांप देखा गया था, किस सांप ने किसको काटा था और वह कितनी देर में मर गया था, इत्यादि कितने ही किस्से लोगों के सामने फिर नये हो उठते हैं। परन्तु इस समय रात काफी वढ़ चुकी थी और जंगल में हमारा अव बातचीत करना उस उद्देश्य को विलकुल ही निष्फल कर देता, जिसके लिए

हम यहां आये थे। इसलिए मन में उठी इस प्रकार की कितनी ही बातों को मन में ही दबाकर चुपचाप लेट रहे ।

बारियां निश्चित कर दी गईं। एक-एक घंटे एक-एक आदमी जाग और पहरा दे, बाकी निश्चिन्त होकर सो जायें।

१३

सांप बदला लेता है ?

ठंड होने के कारण हम चादरें ओढ़कर लेट अवश्य गये थे, परन्तु नींद आने का अभी कोई समय नहीं हुआ था। लेट इसलिए गये थे कि जब बातचीत कर नहीं सकते, तो मुंह सीकर बैठे रहने में क्या तुक है ?

यहां रात के अंधेरे म मैंने पहली बार विचित्र प्रकार के जुगनू देखे। साधारण जुगनू की चमक टिमटिमाती-सी होती है। मेरा मतलब कि वह चमक कुछ देर दीखती है और फिर छिप जाती है; थोड़ी देर बाद फिर दिखाई पड़ती है। इस छिप-छिपकर दिखाई पड़ने वाली चमक के कारण ही मैंने कई बार बड़े सुन्दर दृश्य देखे हैं। बरसात की रात्रियों में कई बार पेड़ों पर इन जुगनुओं का इतना जमघट हो जाता है कि पेड़ इन प्रकाशमान जुगनुओं से जगमगा उठते हैं। हरिद्वार और ऋषिकेश के बीच की सड़क पर मैंने जुगनुओं की यह नयनाभिराम लीला बहुत बार देखी है। इन जुगनुओं का सबसे बड़ा मेला मैंने अपनी केदारनाथ की यात्रा में देखा था। अगस्त्य मुनि नामक पड़ाव तक पहुंचने में हमें अंधेरा हो गया था। हमारा रास्ता एक नाले के पास आकर घूमा। इसी मोड़ पर दाईं ओर को—जिधर से नाला आ रहा था—देखा, तो विस्मय से आंखें खुली ही रह गईं। नाले के दोनों ओर पहाड़ ऊपर की ओर उठते चले गये थे और यह बीच का घाटी जैसा प्रदेश असंख्य जगमगाते हुए जुगनुओं से भरा हुआ था। उतने जुगनू जीवन में फिर कभी नहीं देखे। ऐसा लगता था कि पहाड़ के घने काले अंधेरे में समाप्ति-हीन फुलझड़ियां छूटी चली जा रही हैं। देवता जैसे प्रकाश से खेल कर रहे हैं। वह बुझ-बुझकर चमकने वाला संख्यातीत जुगनुओं का प्रकाश कभी भूलेगा नहीं।

परन्तु आज रात यहां जो जुगनू देखे, उनकी चमक स्थिर थी; वह बुझती नहीं थी। वे अंधेरे में अपनी चमक के साथ इधर-उधर उड़ते ऐसे मालूम हो रहे थे, जैसे काली कसौटी पर कोई सोने की लकीर खींच रहा हो। वैसे उनकी चमक प्रकाश के बिन्दु के समान थी, पर जब वे उड़ते थे, तो वही प्रकाश की एक रेखा-सी दिखाई पड़ती थी।

कल रात गंगा के तट पर हवा चल रही थी, और ओस का नाम भी नहीं था। परन्तु यहां जंगल घना था, वायु शांत थी और ओस इतनी अधिक पड़ने लगी थी कि सरलतापूर्वक उसे हलकी वर्षा कहा जा सकता था।

कब नींद आ गई, कुछ पता नहीं चला। लगभग दो बजे पहरे पर जागते हुए साथी ने सबको जगाया। दूर से कोई लकड़ी टूटने की सी आवाज आई थी। हम लोग ध्यानपूर्वक वन में होने वाली आवाजों को सुनने का यत्न करने लगे। परन्तु कोई आवाज नहीं, एकदम सन्नाटा था। कोई दस मिनट तक प्रतीक्षा करने के बाद फिर लकड़ी टूटने की आवाज आई। इस बार संदेह नहीं रहा। इस प्रकार की आवाजें जंगल में केवल तभी आती हैं, जबकि हाथी बांस, खैर या अन्य किन्हीं पेड़ों को तोड़कर अपनी क्षुधा मिटाने में लगे होते हैं। फिर तो यह आवाजें बहुत थोड़े अन्तर पर सुनाई पड़ने लगीं। जंगल में हाथियों का झुण्ड आया हुआ था।

ऋषिकेश में गंगा-पार स्वर्गाश्रम से लेकर कोटद्वार और लैंसडाउन तक वन की अटूट शृंखला चली गई है। इस वन की अटूट शृंखला में हाथियों के कई झुण्ड रहते हैं। क्योंकि हाथी का पेट बहुत बड़ा होता है, अतः किसी भी एक स्थान पर रहने से इस बेचारे प्राणी का काम नहीं चल सकता। दो-चार दिन में ही बांस, पेड़, पत्ते सब जठरानल में स्वाहा हो जाते हैं; अतः हाथी परिव्राजक बनकर घूमते रहते हैं। आज वे एक जगह रहते हैं, तो अगले दिन आठ-दस मील दूर जाकर विश्राम करते हैं। कभी-कभी ये हाथी जंगल के बाहर की ओर बसे गांवों की ओर भी निकल जाते हैं और वह समय गांव वालों के लिए बड़े दुर्भाग्य का होता है। मुझे कुछ ऐसे खेतों को देखने का अवसर प्राप्त हुआ है, जिन पर इन हाथियों का प्रकोप हुआ था। अगर पचास आदमियों को यह काम सौंपा जाता कि वे रातों-रात ज्वार और बाजरे की खड़ी हुई फसलों को बरबाद कर दें, तो वे बड़े से बड़े इनाम का लालच होने पर भी उन फसलों को उस तरह न उजाड़ पाते, जैसे कि कुल चार-पांच हाथियों ने उजाड़ दिया था। तीस-चालीस बीघे खेत में एक भी ज्वार या बाजरे का पौधा सीधा खड़ा नहीं रह गया था। छह महीने तक परिश्रम करके अगले छह महीने अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए इस फसल पर निगाह लगाकर बैठे हुए किसान के मनोभावों को सही-सही समझ पाना सम्भव नहीं है। जान पर खेलकर भी वे किसान मशालें लेकर शोर मचाते, थालियां पीटते हाथियों की ओर दौड़ते हैं: परन्तु यह हाथी की मर्जी पर निर्भर है कि वह इस प्रकार के प्रकाश और शोर से डरकर भाग जाय या उलटा उत्तेजित होकर इन गांव वालों पर ही झपट पड़े।

इन हाथियों के झुंड की जब-जब भी आस-पास आये हुए होने

की खबर हमें मिलती थी, हम जंगल में जाने का यत्न करते थे। परन्तु हमारी अपनी बहुत सी विवशताएं थीं; अधिकतर हम शनिवार और रविवार के बीच की रात ही जंगल में बिता पाते थे और संयोग सदा ऐसा होता था कि जब भी हम जंगल में जाकर डेरा डालते थे; ये मूंजी हाथी आस-पास कहीं ढूंढे भी नहीं मिलते थे। अतः आज हाथियों का झुंड पास आया हुआ है, यह जानकर हमें प्रसन्नता ही हुई। दो-एक घंटे खाते रहकर हाथी दूर निकल गये और हम फिर निश्चिन्त होकर सो गये।

शेष रात्रि में कोई विशेष घटना नहीं घटी। प्रातःकाल हुआ और नित्यकर्म से निवृत्त होकर जब हमने आगे बढ़ने की तैयारी की, तो एक बार फिर दृष्टि उस रात मारे हुए सांप पर जा पड़ी। इस समय सवेरे के उज्ज्वल प्रकाश में उसकी जांच-पड़ताल और अच्छी तरह की जा सकती थी। ध्यान से देखने पर मालूम हुआ कि साप पर केंचली आई हुई थी और संभवतः इसी से उसकी दृष्टि और गतिविधि निर्बल हुई हुई थी। सांझ के क्षीण होते प्रकाश में उसकी देह जैसी सुन्दर मालूम हुई थी, इस समय वैसी नहीं लगी। जीवन समाप्त हो जाने पर शरीर की कान्ति मिट जाना स्वाभाविक ही है। रात जो हमारा सबल प्रतिद्वंद्वी था और जिससे हमारे जीवन को उतना ही खतरा था, जितना कि हम से उसे, इस समय वह पत्थर और मिट्टी के समान ही निश्चेष्ट पड़ा था।

पं० हरिवंश उसके कटे हुए फन के मुख को दो लकड़ियों से खोल कर देखने लगे। दूज के चन्द्रमा की तरह हलका सा घुमाव लिये उसके विष-दांत चमकते हुए सफेद रंग के थे। मनुष्य द्वारा इंजैक्शन की सुई का आविष्कार किये जाने से शताब्दियों पहले से सांप अपने इन दांतों द्वारा—जो बहुत पतली हड्डी की अन्दर से खोखली सुइयां ही हैं—अपने शिकार के शरीर में घातक विष प्रविष्ट कराता आ रहा है। दांतों के पीछे विष की पोटली थी, जिसमें हलके पीले रंग का विष झलक रहा था। विष का रंग न जाने कैसे नीला या काला मान लिया गया है। सांप के इस सुनहले रंग के विष का मामूली सा कण भी यदि जाने-अनजाने मनुष्य के रक्त में प्रविष्ट हो जाय, तो उसके प्राण बचाना केवल विधाता के ही वश में है। कैसे इतना अल्प विष इतने बड़े शरीर को निष्प्राण कर देता है? और इससे भी अधिक विस्मयजनक यह बात है कि मुंह द्वारा खा लिये जाने पर इस विष का कुछ भी दुष्प्रभाव नहीं होता।

"क्यों भाई जी, क्या सांप का कटा हुआ फन आदमी पर झपटता है?" सुभाष ने एकाएक पूछा।

पं० हरिवंश की आँखों में हंसी चमकने लगी; बोले : "हां, हां, झपटता ही नहीं, बल्कि उड़ा-उड़ा पीछा करता रहता है। कई बार

तो आकाश में चील की तरह उड़ता हुआ वह मीलों तक मारने वाले का पीछा करता है ।"

लगभग सभी परिहास को समझ गये और हँसने लगे। कुछ देर बाद डाक्टर अनन्तानन्द बोले : "कटे फन के बारे में तो मैं कुछ जानता नहीं, पर चोट खाया हुआ सांप मौका ताककर बदला लेता है, ऐसा मुझे कुछ भरोसा होता है ।"

"सांप के पेट के नीचे एक छोटी सी थैली होती है। उसमें वह एक छोटी सी डायरी और पतली सी पेंसिल रखता है । जब सांप को कोई मारता है, तो घायल होकर भागते-भागते सांप इस डायरी में मारने वाले का नाम-पता लिख लेता है ।" पं० हरिवंश ने व्यंग किया।

मैंने कहा : "मैंने ऐसा सुना है कि यदि कोई सांप को मार दे, तो मारने वाले का चित्र सांप की आंखों में फोटो की भांति चित्रित हो जाता है। और उस नाग की नागिन उस चित्र को देखकर फिर मारने वाले को ढूंढती है और डसकर उससे बदला लेती है ।"

"नागिन न हुई, सी० आई० डी० का अच्छा-खासा जासूस हुई । और सांप भी फोटोग्राफर से क्या कम रहा ?" सुभाष ने कहा ।

"तो आपका खयाल है कि सांप बदला नहीं लेता ?" मैंने जोर देकर कहा ।

"मेरा तो खयाल है कि बदला लेता ह" डाक्टर अनन्तानन्द ने कहा : "आपको खयाल है कि नहर के पुल के पास कुछ पंजाबियों ने छोटी-छोटी लकड़ी के ढांचों की दूकानें बना ली हैं ?"

ये दूकानें हम में से सभी ने देखी थीं, अत: सिर हिलाकर हमने अपनी स्वीकृति जताई कि हमें मालूम है।

"पिछली बरसात की बात है । इन दूकानों के पीछे बहुत ही घना जंगल है और यह जंगल इन दूकानों से आकर एकदम लग गया है। एक दिन दोपहर के समय एक सांप दूकानों के सामने दिखाई पड़ा। लोगों ने उसे मारने की कोशिश की। एक तो मारने वाले अनाड़ी थे, दूसरे कोई उपयुक्त शस्त्र उनके पास नहीं था, इसलिए सांप मरा नहीं। ईंट-पत्थर की मामूली सी चोट खाकर वह तेजी से भागता हुआ जंगल म घुस गया। बरसात के दिनों में कितने ही सांप निकलते हैं और कितने ही मारे जाते हैं, किसी ने कुछ खास खयाल नहीं किया।

"चोरी के डर से रात को भी दूकानदार दूकानों के सामने ही सोते थे। एक बालक दूकान के सामने चौड़े लकड़ी के तख्ते पर सो रहा था। रात को दो बजे एकाएक उसकी नींद खुली। उसे लगा कि उसके पैर में कुछ सुई सी चुभी है। जिस जगह सुई चुभती अनुभव हुई थी, वहां जलन

हो रही थी। तभी उसने कुछ गिलगिली-सी वस्तु अपने पैर से फिर छूती हुई अनुभव की और वह चिल्ला उठा : 'सांप ! सांप !!'

"उसने जल्दी-जल्दी आस-पास सोये हुए लोगों को जगाया। उन्हें सांप की चिकित्सा के विषय में कुछ भी मालूम नहीं था, अतः वे किसी गुणी संपेरे अथवा झाड़-फूंक करने वाले की तलाश में दौड़े। सबेरे तक उनके सारे प्रयत्न इसी ढंग के रहे, जिससे असली चिकित्सा कुछ न हो सकी और वह कीमती समय, जिसमें कुछ किया जा सकता था, हाथ से निकल गया। जब मैं सबेरे वहां पहुंचा, उस समय लड़के का शरीर ठंडा पड़ चुका था और हृदय की धड़कन पूर्णतया बन्द हो चुकी थी।"

"परन्तु यह कैसे मान लिया गया कि रात में जिस सांप ने लड़के को काटा, वह वही सांप था, जिसे दिन में घायल किया गया था" पं० हरिवंश ने आक्षेप किया।

एकाएक डा० अनन्तानन्द कुछ उत्तर न दे सके। जरा रुककर बोले : "नहीं तो रात में जमीन से तीन फुट ऊपर उठे लकड़ी के तख्ते पर चढ़कर सामान्यतः किसी को सांप काटता नहीं है।"

मैंने कहा : "पर डाक्टर, यह बात उस काटने वाले सांप को दिन में घायल हुआ सांप प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। आप स्वयं जानते हैं कि उस नहर के किनारे के जंगल में सौ से अधिक ही सांप रहते हैं। पता नहीं, उनमें से कौन सा घायल हुआ और किसने काटा ?"

"दिन में जो सांप घायल हुआ, वह कोबरा था; और लड़के में सांप काटे के जो लक्षण प्रकट हुए, उनसे भी यही स्पष्ट था कि काटने वाला सांप कोबरा था।"

"पर कोबरा सांप भी तो उस जंगल में एक नहीं है। काटने वाला सांप वही दिन में घायल हुआ सांप भी हो सकता है और कोई दूसरा भी। यह किस प्रकार मान लिया जाय कि यह सांप वही सांप था। जब तक इस बात का कोई स्पष्ट प्रमाण न हो, जैसा कि नहीं है, तब तक सांप की बदला लेने की बात केवल बात ही है।"

पं० हरिवंश कहने लगे : "यों तो सांप के बारे में लोग बड़ी से बड़ी गप हांकने में आनन्द अनुभव करते हैं। हमारे एक साथी ने एक बार निम्न-लिखित घटना सुनाई थी और मुझ से आग्रह किया था कि मैं उस पर विश्वास कर लूं।

"जोधपुर राज्य में एक छोटे से कस्बे में एक मिडिल स्कूल था। जगह छोटी थी और सस्ती थी। स्कूल के एक अध्यापक महोदय को एक दिन एक सांप ने काट लिया। काटने के बाद सांप भाग गया और अध्यापक महोदय सब प्रकार की चिकित्साओं के बावजूद मर गये। पर

उनकी अन्त्येष्टि नहीं की गई। तीन दिन तक शव पड़ा रहा। एक गुणी ओझा महोदय संयोगवश उस कस्बे में पधारे और उन्हें भी मालूम हुआ कि इस प्रकार रात ही में एक व्यक्ति सांप काटने से मर गया। वे वहां पहुंचे, जहां लाश पड़ी थी।"

सुभाष ने हँसते हुए कहा : "जब संयोगवश वे कस्बे तक आ पहुंचे तो फिर लाश तक क्यों न पहुंचते ?"

"लाश को उन्होंने गौर से देखा। उनकी मुद्रा गम्भीर हो गई। बोले : 'इसे जिला तो दे सकता हूं, पर कोई लाभ नहीं है।'

"लोगों ने विनय की : 'फिर का फिर देखा जायगा महाराज, इस समय तो जिला ही दो।'

"ओझा महोदय ने बात मान ली और उनके सुप्रयत्नों के फलस्वरूप अध्यापक फिर जी उठा। ओझा महोदय को कुछ और दया आई। भविष्य में विपत्ति आयेगी, इसका विचार करके उन्होंने उस अध्यापक को एक मन्त्र तथा एक जड़ी दी। कहा कि यदि भविष्य में कभी सांप काटे, तो यह मंत्र पढ़ना और यह जड़ी दायें हाथ की कनिष्ठा अंगुली में बांध लेना।

"बात आई गई हो गई। दिन पर दिन बीतने लगे। सांप और सांप के काटने की बात को सभी लोग भूल चुके थे कि अध्यापक महोदय को फिर सांप ने काट लिया। लोगों ने हिसाब फैलाया तो देखा कि साल भर बीत चुका है और आज वही तिथि है, जिस तिथि को गत वर्ष सांप ने काटा था। विस्मय की सीमा न रही। खैर, उपाय हाथ में था। वही किया गया। उपाय के बावजूद अध्यापक जी तीन दिन बेहोश पड़े रहे, और उसके बाद स्वत. बिना किसी अन्य इलाज के वे ठीक हो गये।

"उसके बाद तो सांप ने क्रम बना लिया। चाहे सारी दुनियां भूल जाय, पर सांप कैलेन्डर और घड़ी देखकर आना न भूलता। वह आकर नियम से काट जाता और अध्यापक जी मरकर मन्त्र और जड़ी के जोर से फिर जिन्दा हो जाते। यह क्रम कई वर्षों तक चलता रहा। आखिर अध्यापक महोदय इस बार-बार के मरने से तंग आ गये। उस कस्बे में उनकी कोई पैत्रिक जायदाद तो थी नहीं; मिडिल स्कूल की नौकरी ही तो थी; जैसी यहां की, वैसी कहीं और। इतनी दूर जाया जाय कि इस मुँजी सांप से पिंड छूट जाय। उन्होंने यत्न किया और बम्बई के एक उपनगर में उन्हें नौकरी मिल गई। वे बम्बई चले गये।

"इस बार वे वर्ष की उस एक विशिष्ट तिथि के विषय में सावधान थे। वे उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे और उन्हें विश्वास था कि इस बार उन्हें उस दिन तीन दिन के लिए मरना नहीं पड़ेगा।

"फिर भी सावधानी के तौर पर उन्होंने अपने विद्यालय के मुख्या-

ध्यापक से तीन दिन की छुट्टी ले ली। जब उन्होंने मुख्याध्यापक को छुट्टी लेने का कारण बताया कि उन्हें सांप काटेगा और वे तीन दिन मरे पड़े रहेंगे, तो पहले तो उसने हँसी में उस बात को उड़ाना चाहा; पर अन्त में जब उसने देखा कि अध्यापक महोदय हँसी नहीं कर रहे हैं तो उसे भी बड़ा आश्चर्य हुआ। जो आदमी तीन दिन तक मरा पड़ा रहेगा, उसे छुट्टी दिये बिना काम कैसे चल सकता है।

'यद्यपि इस बार मैं आशा कर रहा हूं कि वह सांप यहां नहीं आ पायेगा, पर फिर भी इतने वर्षों तक नियमित रूप से काटे जाते रहने के कारण मेरा मन भीरु हो गया है। यदि सांप ने न काटा, तो मैं छुट्टी नहीं लूंगा और काम पर आ जाऊंगा।'

"पर उस दिन वे काम पर नहीं आये। जब अपनी उत्सुकता निवारण करने के लिए मुख्याध्यापक उनके घर पहुंचे, तो वे सचमुच मरे पड़े थे। चौथे दिन वे फिर विद्यालय में उपस्थित हुए। डेढ़ हजार मील की दूरी उस सांप को अपने निश्चित समय पर पहुंचने से न रोक सकी थी।"

पं० हरिवंश ने फिर कुछ व्यंग्य सा करते हुए कहा : "और हमारे उस मित्र ने मुझसे आग्रह किया कि मैं इस कथा पर विश्वास कर लूं!"

"तो आपका मतलब है कि सांप बदला नहीं लेता?" देवेन्द्र ने जोर दिया।

उत्तर दिया मैंने : "सांप इतने विकसित मस्तिष्क वाला प्राणी नहीं है, कि वह विचारकर योजनापूर्वक बदला ले सके। मस्तिष्क के विकास की दृष्टि से सांप हीन कोटि का प्राणी है। अपने ऊपर संकट अनुभव होने पर अथवा चोट खाने पर सभी प्राणी प्रत्याक्रमण करते हैं, परन्तु वह सहज वृत्ति द्वारा, विचारपूर्वक नहीं। ऐसे प्रत्याक्रमण की उग्रता एक बार शांत होने के बाद दूसरी बार स्वतः नहीं जाग उठती।"

डाक्टर अनन्तानन्द बोले : "यह सहज वृत्ति की बात आपने खूब याद दिलाई। इस सहज वृत्ति के द्वारा प्राणी ऐसे-ऐसे काम कर दिखाते हैं, जो बुद्धि द्वारा भी किये जाने कठिन हैं। मकड़ी बारीक जाला बुनती है; मधुमक्खियां और दीमकें अपने आश्चर्यजनक घर बनाती हैं; बया अपना घोंसला तैयार करती है। इतना ही नहीं, जो पक्षी ऋतु विशेष में एक स्थान छोड़कर चले जाते हैं, वे अगली ऋतु में सैकड़ों-हजारों मील का चक्कर काट आने के बाद अपने उन्हीं घोंसलों में वापस आ जाते हैं। तो क्या यह सम्भव नहीं है कि सांप अपनी सहज वृत्ति से उसी प्रकार बदला भी ले सकता हो?"

बात संगत तर्क पर आधारित थी। परीक्षणों द्वारा यह निर्विवाद रूप से देखा जा चुका है कि एक खास जगह खास मकान में घोंसला बनाकर

रहने वाले पक्षी सरदी या गरमी आने पर उस जगह को छोड़कर चले गये। उस प्रतिकूल ऋतु को बिताने के लिए वे हजारों मील उड़कर ऐसे प्रदेश में पहुंचे, जहां उनके अनुकूल सरदी या गरमी थी और अगले वर्ष अपने मौसम में वे न केवल उसी शहर या गांव में लौट आये बल्कि उसी मकान और अपने उसी घोंसले में आकर रहने लगे। हजारों मील की यात्रा और कई महीने का व्यवधान भी उनके अपने घोंसले की स्मृति को पोंछ नहीं सका। बिना कागज-पेंसिल या फोटो के ही उन्होंने अपने घोंसले को उसी तरह पहिचान लिया, जैसे कि विदेश से लौटकर आने वाला मनुष्य अपने घर को पहिचान लेता है।

मैंने कहा : "परन्तु सांप के इस प्रकार बदला लेने की बात परीक्षण से सिद्ध नहीं हुई।"

देवेन्द्र ने छूटते ही कहा : "परन्तु इस दिशा में अभी परीक्षण किया किसने है। परीक्षण करने पर ही तो कोई बात परीक्षण से सिद्ध या असिद्ध होगी। जब तक परीक्षा से उलटी बात सिद्ध न हो जाय तब तक प्रचलित प्रवादों को अकारण झूठा नहीं माना जा सकता।"

इस बात का किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

१४

सांप की मणि

"और आपके मणिसर्प ?" सुभाष ने मुस्कराते हुए कहा और सब लोग ठहाका मारकर हंस पड़े ।

इस हंसने का कारण हमारे एक मित्र हैं, जिनका नाम उनके अनजाने में हमने 'मणिसर्प' रखा हुआ है । उनके सिवाय यह नाम और भी मित्रो को मालूम है । वैसे वे आयु में हम से बहुत बड़े हैं, परन्तु उत्साह और सौहार्द उनमें इतना अधिक है कि लगभग बलपूर्वक ही उन्होंने अपनी गिनती मित्रों में करा ली है । जिस प्रकार परिचितों म म अविश्वास की मूर्ति समझा जाता हूं, उसी तरह वे मानों जीते जागते विश्वास हैं । किसी समय उन्होंने कलकत्ते में घोषणा की थी कि वे आदमी को मारकर जिला सकते हैं । परन्तु कई बाधाओं के कारण यह परीक्षण जनता में प्रदर्शित नहीं किया जा सका । सबसे बड़ा कारण तो यह था कि सारे कलकत्ते मे उन्हे ऐसा मूर्ख कोई न मिला, जो अपने आपको इस परीक्षण के लिए प्रस्तुत करता । इससे भी बड़ी दूसरी बाधा पुलिस की थी । यदि किसी कारण परीक्षण के सफल होने में कहीं भी जरा सी चूक रह गयी, तो पुलिस बिना फांसी दिलवाये न छोड़ेगी । इसी तरह की छोटी-छोटी बातों ने इतने बड़े आयोजन को सफल होने से रोक दिया । परन्तु इससे उन मित्र महोदय ने हिम्मत नहीं हारी बोले : "लोग खिलखिलाकर हंसते क्या हैं ? यदि मैं अपना परीक्षण मनुष्यों पर नहीं कर सका, तो क्या हुआ ? मैं मछलियों पर अपना परीक्षण करके दिखाऊंगा । मछलियां मनुष्यों से अधिक बहादुर हैं और वे मेरे इस परीक्षण के लिए अपने आपको प्रस्तुत करने में न हिचकेंगी ।"

उनके साहस की प्रशंसा करनी होगी, क्योंकि उन्होंने यह सूचना अखबारों में भी छपवा डाली, जिसमें इस परीक्षण के जनता में प्रदर्शित किये जाने की तिथि, समय और स्थान का भी उल्लेख था ।

सूचना अखबारों में छप गई । कलकत्ते में इतना बड़ा मूर्ख चाहे उन्हें न मिला हो, जो उनके परीक्षण के लिए मरने को तैयार हो जाय, परन्तु वैसे कलकत्ते में मूर्खों की कमी नहीं है । अच्छी-खासी भीड़ इस परीक्षण को

देखने के लिए उपस्थित हुई। जब स्थान खचाखच भर गया, तो परीक्षणकर्ता मंच पर उपस्थित हुए। एक बड़ी मेज पर शीशे के मर्तबानों में पानी में कुछ छोटी-छोटी मछलियां तैर रही थीं। परीक्षणकर्ता महोदय ने चिल्लाकर जनता से कहा : "आप लोग यहां आकर देख सकते हैं कि ये मछलियां ही हैं, रबड़ के खिलौने नहीं।"

कुछ लोगों ने, जो अपने आपको औरों की अपेक्षा अधिक समझदार समझते थे, मेज के पास जाकर बहुत ध्यान से मछलियों को देखा और स्वीकार कर लिया कि वे मछलियां ही थीं। इस बात को जनता के प्रतिनिधियों के रूप में उन्होंने घोषित भी कर दिया कि इसमें कोई छल नहीं है। तब परीक्षणकर्ता महोदय ने उन मछलियों को पानी में से निकालकर मेज पर डाल दिया। थोड़ी देर तक फड़फड़ाने के बाद मछलियां मर गईं। परीक्षणकर्ता महोदय ने फिर जनता से कहा: "अब आप इन्हें फिर देखकर तसल्ली कर सकते हैं कि ये मछलियां मर गई हैं।"

समझदार लोगों का दल फिर मेज के पास पहुंचा और बहुत ही गम्भीर भाव से निरीक्षण करने के बाद उन लोगों ने इस चीज को स्वीकार कर लिया कि निःसंशय रूप से मछलियां मर गई हैं।

उसके बाद परीक्षणकर्ता ने अपना ध्यान जनता की ओर से एकदम हटा लिया और बिलकुल एकाग्र भाव से उन मरी हुई मछलियों को जिलाने में जुट गये। तरह तरह की रहस्यपूर्ण क्रियाएं वे कर रहे थे, जिनका अर्थ उनके सिवाय और कोई नहीं समझता था। यह रहस्यपूर्ण क्रियाकलाप काफी देर तक चलता रहा। इस बीच में एक बार भी उन्होंने सिर उठाकर जनता की ओर नहीं देखा। उनकी इस तन्मयता और परिश्रम को देखकर उपस्थित लोगों में से प्रायः सभी को यह विश्वास हो गया कि मछलियों को अवश्य ही जीवित हो उठना चाहिए और वे यदि जीवित नहीं हो रही हैं, तो इसमें मछलियों का ही कुछ दोष है, परीक्षणकर्ता का नहीं।

परीक्षण पहले ही बहुत देर में शुरू हुआ था और अब काफी रात हो चुकी थी। दर्शकों का धैर्य उचटने लगा। एक-एक दो-दो करके भीड़ कम होने लगी। परन्तु परीक्षणकर्ता ने इस ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। जब भीड़ आधी से अधिक छंट चुकी, तो एकाएक जैसे बहुत परिश्रम कर चुके हों, उन्होंने सिर उठाया और घोषणा की कि आज रात बहुत हो चुकी है, इसलिए शेष परीक्षण कल दिखाया जायगा। दर्शक लोग कुछ हताश और प्रकट रूप से परीक्षणकर्ता का उपहास सा करते लौट गये।

अगले दिन परीक्षणकर्ता महोदय अपनी बड़ी मेज पर अपने पानी से भरे मर्तबानों के साथ निर्धारित समय से एक घंटा पूर्व ही रंगमंच पर उपस्थित थे। पानी के मर्तबानों में गिनती की मछलियां तैर रही थीं।

उसके बाद रात के दर्शकों में से जो भी आते गये, उन्हें वे बड़े उत्साह के साथ बताते गये कि आज सबेरे से घोर परिश्रम करके इन्हें बस अभी-अभी जिला पाया हूं। और इसके साथ ही वे किसी छोटी सी "टैकनिकल" भूल का उल्लेख करते थे, जिसके कारण रात मछलियां नहीं जिलाई जा सकी थी।

परन्तु समाचार-पत्रों ने इस सफलता का समाचार छापने से इन्कार कर दिया। हमारे मित्र महोदय ने अपने परिचितों में इस बात को इस रूप में प्रचारित किया कि अखबारों में इस खबर के न छपने का कारण बहुत गहरा था। अंग्रेजी सरकार ने अखबारों को यह हुक्म दे दिया था कि एक हिन्दुस्तानी की ऐसी अद्भुत सफलता का समाचार किसी भी रूप में न छापा जाय।

और इनकी मुठभेड़ हो गई मुझसे। एक छोटे से बासे में, जहां भोजन करने वाले हम गिने-चुने १०-१५ व्यक्ति ही थे, एक दिन ये कहीं से आ टपके। बरसात का मौसम था। शाम से ही रह रह कर वर्षा हो रही थी। सील और अंधेरे के कारण बिजली का प्रकाश होते हुए भी वातावरण कुछ धुंधला-धुंधला सा मालूम हो रहा था। ऐसे समय उपस्थित होकर इन्होंने न जाने कहां से वार्तालाप का सूत्र पकड़कर कहा : "मणि वाले साप तो इस इलाके में बहुत होते है।"

सुनकर मैं बहुत चौंका। वैसे जहां हम बैठे थे, वह पक्का मकान था; सीमेंट का फर्श था और बिजली का बल्ब जल रहा था। परन्तु बहुत बार के अनुभव से मैं जानता हूं कि यदि बरसात की अंधेरी रातों में सांपों, चोरों और भूतों की कहानियां सुनाई जाने लगें, हत्याओं और डाकुओं के किस्से दुहराये जाने लगें, तो बिजली की रोशनी होने या न होने में कोई फर्क नहीं रहता। और फिर मणि वाले सांप?

सांप की मणि ऐसी वस्तु है, जिसके बारे में हम में से प्रत्येक जवान होने से पहले ही बहुत सी आकर्षक और रोमांचकारी कहानियां सुन चुका होता है। परन्तु बड़े होने पर यह नीरस तथ्य मालूम पड़ता है कि उन मणियों के सम्बन्ध में सुनी हुई वे कहानियां केवल कहानियां ही थीं। ऐसे समय यदि कोई विद्वान बुजुर्ग आकर यह कहे कि मणि वाले सांप सचमुच होते हैं, इसी इलाके में और वे भी एकाध नहीं, बहुत से, तो कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो उत्सुकता और विश्वास से न भर उठे। बल्कि कोई कोई उत्साही युवक तो सांप को मारकर उसकी मणि प्राप्त करके लखपति बनने का भी स्वप्न देखने लगेंगे।

परन्तु मैं तो वर्षों से इसी इलाके में रह रहा हूं। कोबरा, करैत, वाइपर, धामन, और अजगर सभी तरह के सविष और निर्विष सांपों को

इस इलाके में मैंने देखा है । बहुतों को मारा है, बहुतों को पकड़ा है और दो एक के प्रचंड विष से कुछ व्यक्तियों को प्राणों से हाथ धोते भी देखा है । और सांपों के सम्बन्ध में जितना कुछ यह महाशय जानते हैं, उससे काफी अधिक मैं जानता हूं । ऐसी दशा में अगर एक आदमी सांप की मणियों के झूठे और रंगीन किस्से सुनाकर मेरे सामने ही रोब जमा जाय, तो उससे बढ़कर खीझने की बात क्या हो सकती है ? फिर भी मैं बोला नहीं, सुनता रहा ।

वह वृद्ध सज्जन सुनाने लगे कि किस प्रकार उन्होंने अंधेरी पगडंडी पर चलते हुए दूर से चमकती हुई एक मणि देखी । पर ज्योंही वे उसके पास पहुंचने वाले थे, त्योंही मणि एकाएक लुप्त हो गई । इसी प्रकार एक और अवसर पर, उन्होंने बताया कि, मणि उनके हाथ आती आती रह गई । इस चीज की मैं प्रशंसा करूंगा कि उन्होंने दुनियां बहुत देखी थी और उनका वर्णन इतना सजीव और आकर्षक था कि एक बार तो जानकार आदमी भी बुद्धू बन जाय; फिर अनजान का तो कहना ही क्या ? परन्तु एक बात उनके विपक्ष में थी कि वे मुझे न जानते थे और मेरे विषय में भी कुछ न जानते थे । इसके विपरीत बासे में उपस्थित अन्य सभी व्यक्ति मुझे अच्छी तरह पहचानते थे और वे प्रतिक्षण यह आशा कर रहे थे कि अब मैं कोई बहुत ही बेतुका उत्तर देकर उन्हें हतप्रभ कर दूँगा ।

वृद्ध महोदय अपना प्रभाव और लोगों का विश्वास जमते देख कर और अधिक उत्साहित हो उठे; कहने लगे कि सांप की मणि का प्रकाश बिजली के बल्ब के प्रकाश जितना होता है और एक निश्चित स्थान पर रात को दो बजे यह प्रकाश मैंने कई बार देखा है ।

सुनते-सुनते मेरा धैर्य टूट गया, और मैंने कहा : "हां, सांप की मणि अंडे जितनी बड़ी होती है । पं० हरिवंश के पास दो-तीन पड़ी हुई हैं ।"

सांप की मणि चाहे अंडे जितनी बड़ी हो, चाहे संतरे जितनी; हमारे मित्र महोदय को उसमें कोई आपत्ति नहीं थी । परन्तु यह, कि किसी आदमी के पास एक नहीं, दो-तीन सर्पमणियां पड़ी हुई हैं और वह अब तक लखपति करोड़पति नहीं बन गया है, मानने को वह तैयार नहीं थे । फिर भी वह अत्यन्त कुशल व्यक्ति थे । हँसकर अविश्वास-सा प्रकट करते हुए बोले : "क्या कहते हैं आप ? दो-तीन मणियां पड़ी हुई हैं ?" फिर स्वयं ही उत्तर सा देते हुए बोले : "नहीं, नहीं, आप मजाक करते हैं ।"

मैंने कहा : "इसमें मजाक की क्या बात है ? अगर आपको मणि वाले सांप दिखाई पड़ सकते हैं तो पं० हरिवंश के पास दो-तीन मणियां होना क्या आश्चर्य की बात है ?"

"आपका मतलब ?"

"मेरा मतलब आप सब समझते हैं।"

"तो आपका मतलब है कि मैंने मणिवाला सांप नहीं देखा?" उन्होंने आक्षेप-सा करते हुए कहा।

"मेरा मतलब है कि आपने जो कुछ देखा है, वह मणिवाला सांप नहीं, बल्कि जुगनू की तरह चमकने वाला एक कीड़ा है, जो कि यहां बरसात में बहुत पाया जाता है। यह डरपोक कीड़ा, जिसकी चमक स्थिर होती है, अर्थात् जुगनू की तरह टिमटिमाने वाली नहीं होती, अपने बिल के पास जरा सा मुंह निकालकर बैठ जाता है और ज्योंही किसी के पैरों की आहट सुनता है, त्योंही बिल में घुस जाता है। आपका मतलब शायद उसी कीड़े से है?'

अपनी बिगड़ी हुई बात को संभालते हुए वह बोले: "नहीं, नहीं, जिस कीड़े का आप जिक्र कर रहे है, मै उसकी बात नहीं कर रहा। मैं तो मणि वाले सांप की ही बात कर रहा हूं।" पर उसके बाद उनका उखड़ा हुआ रंग जमा नहीं और लगभग सभी उपस्थित व्यक्तियों ने यही समझा कि वे गप्पें ही हांक रहे थे। मैंने यह सोच लिया था कि अब यह भला आदमी कम से कम मेरे सामने कभी मणि वाले सांप का जिक्र नहीं करेगा। परन्तु तब तक भी मैं उनको पूरी तरह नहीं पहिचान पाया था, यह तब स्पष्ट हुई, जबकि दो-तीन दिन बाद ही वे फिर मिले और स्वयं ही चर्चा उठाकर कहने लगे: 'आजकल दक्षेश्वर के मन्दिर के सामने गंगा पार के जंगल में रोज रात में एक मणिवाला सांप आता है। उसकी मणि दूर से चमकती हुई देखी जा सकती है। सांप नित्य प्रति दक्षेश्वर के दर्शन करने आता है और दूर से ही दर्शन करके लौट जाता है। यदि आपको विश्वास न हो, तो मैं आपको भी साथ ले जाकर दिखा सकता हूं।"

मैंने कहा कि मुझे आपकी बात पर इतना भी इत्मीनान नहीं है कि आपके साथ चलने को तैयार हो जाऊं। हां, यदि आप मुझे विश्वास दिलाना ही चाहते हैं, तो आप किसी भी समय सुभाष को ले जा सकते हैं और यदि वह लौटकर मुझे कह देगा कि विचार योग्य कुछ संदिग्ध वस्तु वहां है, तो मैं भी एक रात की नींद खराब करने को तैयार हो जाऊंगा।

एकाध रात वे शायद सुभाष को साथ लेकर दक्षेश्वर गये भी, पर सुभाष कच्चा नहीं था। वह चक्कर में कहां आता? उसने उन सज्जन की इतनी खिल्ली उड़ाई कि फिर उन्होंने कभी मणि के सांप की चर्चा नहीं की। उन्होंने भले ही मणि के सांप का जिक्र छोड़ दिया, परन्तु उन बेचारों का नाम 'मणिसर्प' पड़ गया। उन्हीं 'मणिसर्प' का उल्लेख करते हुए सुभाष ने पूछा था—'और आपके मणि सर्प?' जिसे सुनकर सब लोग हंस पड़े थे।

१५

पशुओं का प्रतिशोध

"उस भले आदमी ने भी सांप की मणि की अच्छी रट लगा रखी थी" मैंने हंसते हुए कहा ।

"आपको सुनाया नहीं मैंने शायद ? एक बार वे मेरे साथ गंगा पार के जंगलों में जा रहे थे । चलते-चलते एकाएक रुककर उन्होंने रास्ते पर पड़ा हुआ पत्थर का एक टुकड़ा उठा लिया और दो मिनट तक खड़े-खड़े उसे कभी इधर से, कभी उधर से बड़े आश्चर्य के साथ देखते रहे । जब मैंने पूछा कि क्या बात है, तो बोले : 'इस पत्थर की कटाई यूनानी ढंग की मालूम पड़ती है । इस प्रकार का पत्थर वर्षा के पानी के साथ बहकर यहां आया है । इस बरसाती नाले के प्रवाह के ऊपर की ओर कोई ऐसा स्थान होना चाहिए, जहां इस प्रकार के पत्थर बहुत सारे हों । ये पत्थर किसी अति प्राचीन नगर की टूटी हुई इमारतों में से निकलकर यहां वह आते होंगे । यह नगर यूनानियों द्वारा बनाया हुआ होना चाहिए । सिकन्दर के बाद यूनानी कभी इस प्रदेश तक नहीं आये हैं । तो यह बड़े आश्चर्य की बात है कि सिकन्दर से पूर्व किसी समय यनानी इस प्रदेश तक आये थे और इस ओर उन्होंने पत्थर के मकानों वाले शहर बसाये थे । प्राचीन राजा शहरों को बसाते हुए किसी विशिष्ट मकान की नींव में अपने सिक्के, ताम्रपत्र और अन्य महत्वपूर्ण वस्तुएं गड़वाते थे । यत्न करने पर वह मकान वाला स्थान ढूंढा जा सकता है और खुदाई करने पर वे प्राचीन सिक्के प्राप्त किये जा सकते हैं, जो स्वर्ण के होने के कारण इस खुदाई इत्यादि का खर्चा भी पूरा कर देंगे ; और इसके अतिरिक्त इतिहास का एक बिलकुल नया रहस्य प्रकाश में आ जायगा ।"

सुनकर मैं दंग रह गया । "क्या ऐसा कहा उन्होंने ?" मैंने पूछा ।

"और क्या इतना किस्सा मैं स्वयं गढ़ सकता हूं ?" सुभाष बोला ।

मैं यह माने लेता हूं कि इतिहास की पोथियों में लिखी हुई अधिकांश बातें इसी प्रकार की आश्चर्यजनक खोजों का परिणाम हैं । परन्तु एक अर्थशून्य पत्थर के टुकड़े का सहारा लेकर इतना ऊंचा उड़ सकने वाली कल्पना की प्रशंसा न करना भी अन्याय होगा ।

"फिर तुमने क्या कहा ?"

"मैंने कहा बाबा जी, इस तरह के पत्थर तो यहां के प्रत्येक नाले में पाये जाते हैं।" पर इससे उनकी सनक और बढ़ी। बोले : 'हर नाले में पाये जाते हैं ओफ ओह ! कितना बड़ा शहर बसाया होगा उन यूनानियों ने।' फिर स्वयं ही सोचकर बोले : 'हो सकता है, उनकी बहुत सी बस्तियां इधर रही हों।'

"और यह नहीं हो सकता कि उस दिन उन्होंने सबेरे मुट्ठी भर भांग खा ली हो ?" मैंने कहा।

"यह बात तो खीझ की हुई; आप युक्ति द्वारा उनकी बात का खंडन कीजिये" देवेन्द्र ने कहा।

मैंने आंखें तरेरकर उसकी ओर देखा : "क्या युक्तियां बेचारी इसीलिए रह गई हैं कि चाहे जिस बेसिरपैर की बात में उन्हें भिड़ा दिया जाय ?"

डा० अनन्तानन्द ने देवेन्द्र का पक्ष लिया : "किसी भी बात को सिद्ध करने के लिए अथवा खंडित करने के लिए युक्ति आवश्यक है। युक्तिशून्य बात को आजकल तो कहीं भी सत्य नहीं समझा जाता।"

"इस प्रकार तो युक्ति से शायद सर्पमणि का अभाव भी सिद्ध नहीं किया जा सकेगा।"

"जब तक नहीं किया जा सकेगा, तब तक यह बात ढोल पीटकर नहीं कही जा सकेगी कि सांप की मणि होती ही नहीं।"

पं० हरिवंश बोले : "और इस बात का फैसला कौन करेगा कि प्रस्तुत की गई युक्ति उचित है या नहीं ? कहीं वह केवल हेत्वाभास तो नहीं है ?"

"हेत्वाभास?" देवेन्द्र बोला।

"जी हां, हेत्वाभास। कई बार ऐसा होता है कि तर्क की स्वाभाविक परम्परा पर चलते हुए हम एक परिणाम पर पहुंच जाते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष अनुभव उस परिणाम को गलत बताता है। उस समय हमें विवशता में स्वीकार करना पड़ता है कि जिस युक्ति को हम सही मानकर चल रहे थे, वह सही नहीं थी। वह केवल हेत्वाभास थी। मैं यही पूछता हूं कि जो युक्ति प्रस्तुत की जा रही है, उसकी संगति या असंगति का निर्णय कौन करेगा ?"

क्षण भर के लिए देवेन्द्र आकाश की ओर देखने लगा; पर बहस करने में ही उसने बरस बिताये हैं, इसलिए एकाएक परास्त नहीं हुआ, बोला : "इसका निर्णय भी युक्तियों और प्रमाणों से ही होगा।"

"इन युक्तियों को सत्य सिद्ध करने के लिए और नई युक्तियां आवश्यक होंगी; और उन नई युक्तियों को सत्य सिद्ध करने के लिए फिर

किन्हीं नई युक्तियों की आवश्यकता होगी। यह तो युक्तियों की अनन्त परम्परा है। इतनी सारी युक्तियां !" मैंने कहा।

"तो फिर घबराते क्यों हैं? बाजार से खरीदकर थोड़े ही लानी पड़ेंगी।"

"बाजार से भी खरीदकर लाई जा सकती थीं; पर सवाल यह है कि सबसे अन्त में जो युक्तियां पेश की जा रही होंगी, उनकी प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए युक्तियां कहां से आयेंगी।" मैंने कहा।

पं० हरिवंश बोले : "इसीलिए तर्क को 'अप्रतिष्ठ' कहा गया है। यह तो दिमाग का खेल है। जिसमें अधिक अक्ल है, वह अपने से कम अक्ल वाले को युक्ति द्वारा अपनी बात समझा देता है। किसी समय किसी समझदार व्यक्ति ने तर्क आविष्कृत किया--'प्रत्येक वस्तु का, जो हमें दिखाई पड़ती है, कोई न कोई निर्माता होता है; घड़े का कुम्हार, कपड़े का जुलाहा इत्यादि। इसी तरह यह जो इतना बड़ा संसार हमें दिखाई पड़ता है, इसका भी कोई न कोई बनाने वाला होना चाहिए; और वह बनाने वाला परमात्मा है।' तर्क लोगों की समझ में आ गया। इस आविष्कार को करने वाले महोदय अच्छे दिमाग वाले थे। उनकी धाक बैठ गई। उनके अनेक शिष्य बन गये। काल-गति में दिमाग वाले सज्जन का देहान्त हो गया और उनके शिष्यगण इसी युक्ति को देकर ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणित करते रहे। शिष्यों के दुर्भाग्य से एक और कोई औंधी खोपड़ी का आदमी पैदा हो गया। जब उसके सामने युक्ति पेश की गई और अन्त में कहा गया : 'इस प्रकार इस समस्त संसार का बनाने वाला कोई न कोई परमात्मा होना चाहिए' तो वह कहने वालों की आंखों में घूरता रह गया। बोला : 'हां, होना तो चाहिए।' ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणित हो गया; मुड़कर चलने की तैयारी करते हुए वक्ता महोदय की कमीज खींचते हुए यह औंधी खोपड़ी का आदमी बोला--'पर चले कहां ?'

'क्यों ?'

'जब हर एक का ही बनाने वाला कोई न कोई होना चाहिए, तब इस परमात्मा को बनाने वाला भी तो कोई···'

'परमात्मा को बनाने वाला कोई नहीं है।'

'फिर तुम्हारी युक्ति गलत है। यदि तुम्हारी युक्ति सही हो, तो परमात्मा का भी बनाने वाला कोई और उस 'कोई' का बनाने वाला भी और 'कोई न कोई' होना चाहिए। देखते-देखते औंधी खोपड़ी की धाक जम गई।

"इस तरह के और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं कि किस प्रकार किसी एक समय एक विचारधारा या एक तर्क-परम्परा

बहुत प्रचलित और लोकसम्मत थी, पर कुछ समय बाद वह दूसरी युक्तियों की धार से बिलकुल छिन्न-भिन्न हो गई। किसी समय विश्वास किया जाता था कि पथ्वी चपटी है; पति के शव के साथ जलने पर स्त्री स्वर्ग जाती है; पोप को पैसे देकर मृत्यु के बाद के लिए अभी से स्वर्ग में कमरे सुरक्षित करवाये जा सकते हैं; और देवताओं की पाषाण प्रतिमाओं के पूजन से यथेष्ट वरदान प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु लूथर और दयानन्द के तर्कों की कसौटियों पर कसे जाकर इन विश्वासों की धज्जियां उड़ गईं। पर मुझे आश्चर्य इस बात पर है कि स्वयं लूथर और दयानन्द के विचार इतने भ्रान्त और उनके विश्वास इतने अद्भुत थे कि आज उन पर भी हँसी आती है। पर किसी समय उनके ये विचार लोगों को अन्धविश्वास में से बाहर लाने वाले समझे जाते थे। इसलिए मैं तो यही समझता हूं कि बिना युक्ति की कसौटी पर कसे भी इस वक्तव्य को मान लेने में कोई हर्ज नहीं है कि 'मणिसर्प' महोदय की यह कल्पना कि गंगापार के इन वन-पर्वतों में सिकन्दर से पूर्व यूनानियों ने नगर बसाये होंगे, बिलकुल बेपर के कौए की उड़ान है।"

हरिवंश जी का वक्तव्य लगभग प्रवचन जैसा हो गया था। पर शायद सही होने के कारण लोग उसे सुन गये। डाक्टर अनन्तानन्द के लिए इस समय कोई ऐसी बात कहना आवश्यक हो गया, जिससे उनका उठता हुआ प्रभाव फिर बैठ जाय। बोले : "जिस तरह आप मणि वाले सांपों के अस्तित्व को नहीं मानते, उसी तरह आप शायद यह भी स्वीकार नहीं करेंगे कि दाढ़ी वाले और सींगों वाले सांप होते है।"

"यदि आप कहेंगे, तो हम स्वीकार कर लेंगे।" पं० हरिवंश ने कहा; और यह वाक्य बहुत तीखे व्यंग की तरह सुनाई पड़ा। सभी साथियों के चेहरे पर मुस्कराहट झलक गई।

व्यंग के प्रभाव को कम करते हुए मैं बोला : "सींग वाले वाइपर सांप के बारे में तो मुझे ज्ञान है। यह धूर्त सांप मिस्र के रेगिस्तानी प्रदेश में अधिक पाया जाता है। यह भी उल्लेख मिलता है कि केवल इस एक सांप में 'बुद्धि' के चिह्न पाये जाते हैं। दूर से किसी व्यक्ति या प्राणी के आने की आहट पाने पर यह रेत में छिपकर बैठ जाता है और इस प्रकार योजनापूर्वक पास पहुंचने पर उसे काट लेता है। यह सांप विषैला होता है और इसके सिर पर दो हड्डियां सींग की तरह उभरी हुई होती हैं।

"परन्तु दाढ़ी वाले सांप के अस्तित्व के बारे में मुझे भारी सन्देह है। एक बार अखबारों में मैंने खबर पढ़ी थी, जिसमें २५ फुट लम्बे सफेद और दाढ़ी वाले कुछ सांपों का जिक्र था। खबर के विश्वसनीय मानने के लिए मुझे कोई कारण नहीं मिला।"

"वह खबर मैंने भी पढ़ी थी।" सुभाष बोला : "उसे पढ़ने पर तो ऐसा मालूम होता था, जैसे उन सांपों के भी ऋषि-मुनियों की भांति बड़ी बड़ी और लम्बी दाढ़ियां होंगी। मैं तो यही सोचता रह गया कि जिस प्राणी को अपने मुंह से लेकर पूंछ तक की सारी देह जमीन पर घसीटते हुए चलना पड़ता है, उसके लिए यह दाढ़ी तो बहुत ही मुसीबत की चीज होगी। सांप की २५ फीट लम्बाई भी मुझे गपोड़ी की गप मालूम हुई।"

"इन अखबारों में जो न छप जाय, वही कम है। 'लड़की लड़का बन गई' 'स्त्री ने बछड़े को जन्म दिया' इतना ही नहीं एक अखबार ने समाचार छापा 'एक लड़के के पेट से बच्चा पैदा हुआ' ऐसी खबर कितनी ही निराधार क्यों न हो, छापे बिना सम्पादकों को चैन ही नहीं पड़ती।" मैंने कहा।

"और सांप! बड़ी से बड़ी गप लगाने के लिए भूत और सांप से अच्छा मसाला कुछ नहीं मिल सकता। सांप की फुफकार मात्र से आदमी मर गया; सांप ने लाठी को डसा; लाठी फटती चली गई और विष लाठी पकड़ने वाले के हाथ में पहुंच गया और देखते-देखते आदमी मर गया। ऐसे कितने ही रोचक और निराधार किस्से आये दिन प्रचलित होते रहते हैं।" पं० हरिवंश ने कहा।

मैंने कहा : "लोगों में यह जो विचार प्रचलित है कि सांप बिना छेड़े किसी पर आक्रमण नहीं करता, मैं तो इसे भी अहिंसावादियों की गप ही समझता हूं।"

देवेन्द्र भगवान बुद्ध की अहिंसा का भक्त है; बोला : "यह बात तो सही है कि बिना छेड़े सांप किसी को कुछ नहीं कहता। या तो आप उसे मारें और या अनजाने में ही आपका पांव उस पर पड़ जाय, तभी वह काटता है।"

"यही तो बात नहीं है। सांपों ने अन्याय न करने की कोई शपथ नहीं खाई हुई है। वे अपनी पशु बुद्धि से काम करते हैं। यह सही है कि सामान्यतः सांप मनुष्य से डरते हैं और जहां तक सम्भव हो बचकर हट जाने की कोशिश करते हैं; परन्तु उत्तेजित अथवा भयभीत होने की दशा में वे अकारण भी आक्रमण कर बैठते हैं।"

"उत्तेजित या भयभीत होने की दशा में किया गया आक्रमण अकारण नहीं कहा जा सकता। कारण तो भय या उत्तेजना विद्यमान ही है।"

"यह इस तरह होता है। रात के अंधेरे में व्यक्ति चला जा रहा है। रास्ते के पास सांप बैठा है। आदमी ने सांप को नहीं देखा, परन्तु सांप ने आदमी को देख लिया है। आदमी के मन में सांप को चोट पहुंचाने का कोई

विचार नहीं है; यहां तक कि अगर सांप चुप पड़ा रहे, तो आदमी आगे गुजर भी जायेगा। परन्तु जब पास पहुंचने पर सांप आदमी के पैर को उठते और आगे बढ़ते देखता है, तब वह उससे अपने लिए ठीक वैसा ही खतरा अनुभव करता है, जैसा कि लाठी या डंडे से; और मिथ्या भय से भयभीत होकर वह पांव पर आक्रमण कर बैठता है। इसके विपरीत कई बार यदि सांप के ऊपर ही पैर पड़ जाय, तो सांप आक्रमण करने का विचार छोड़कर भागने का ही प्रयत्न अधिक करता है। कम से कम तीन ऐसी घटनाएं तो मैं अपनी आंख से देख चुका हूं, जबकि एकाएक सांप पर पांव पड़ जाने पर उसने काटने के बजाय भागने में अधिक कुशल समझी।"

"ऐसा भी हो सकता है," पं० हरिवंश बोले : "और ऐसा भी बहुत बार होता है कि किसी और व्यक्ति द्वारा छेड़ा जाने से सांप उत्तेजित हुआ बैठा रहता है और जब कोई अन्य अनजान व्यक्ति पास से गुजरता है, तो क्रुद्ध होकर वह उस पर आक्रमण कर बैठता है। उस समय आक्रमण करने से पूर्व वह इस बात को जानने की बिलकुल चेष्टा नहीं करता कि उसे छेड़ने वाला व्यक्ति कौन था। अतः यह सोचकर निश्चिन्त नहीं हुआ जा सकता कि जब हम सांप को नहीं छेड़ रहे, तो वह हमें कुछ क्यों कहेगा?"

"मधुमक्खियों के साथ ऐसा बहुत बार होता है। छत्ते को छेड़कर कोई आदमी भाग जाता है और फिर बला भुगतनी पड़ती है किसी दूसरे को। लाहौर के गोल बाग में मैंने एक बार ऐसा तमाशा देखा था। सवेरे-सवेरे ही किसी शैतान लड़के ने पेड़ पर लगे एक बड़ी मक्खियों के छत्ते को छेड़ दिया था। बहुत से लोग प्रातःकालीन भ्रमण के लिए गोल बाग में आते थे। इनमें से दो-तीन आदमियों को मक्खियों ने बुरी तरह काट लिया था। उन बेचारों के चेहरे इतने सूज गये थे कि आंखें बिलकुल बन्द हो गई थीं।"

डाक्टर अनन्तानन्द कहने लगे : "पशु-पक्षी किसी के मन का भाव सहसा नहीं जान पाते। वे तो केवल उस प्रभाव को ग्रहण करते हैं, जो किसी के भी जाने या अनजाने आचरण से उन पर पड़ रहा होता है। मेरे एक मित्र हैं, उनके साथ भी एक बार बहुत बुरी बीती थी। वे किसी के यहां निमंत्रित होकर किसी संस्कार में गये हुए थे। जब हवन समाप्त हो चुका और उसके बाद गीत आदि का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ, तो बीच में रखे हुए हवन-कुंड का धुआं काफी कष्ट देने लगा। हमारे वे मित्र हवन-कुंड को उठाकर कमरे से बाहर ले गये और उसे आंगन में एक छोटे से पेड़ की जड़ के पास रख दिया। इस पेड़ पर बड़ी मक्खियों का एक बड़ा छत्ता लगा हुआ था। इस पर किसी का ध्यान नहीं गया था। घी और सामग्री के कारण हवन-कुंड में से धुआं खूब जोर से उठ रहा था। इस धुएं से मक्खियां

"वह खबर मैंने भी पढ़ी थी।" सुभाष बोला : "उसे पढ़ने पर तो ऐसा मालूम होता था, जैसे उन सांपों के भी ऋषि-मुनियों की भांति बड़ी बड़ी और लम्बी दाढ़ियां होंगी। मैं तो यही सोचता रह गया कि जिस प्राणी को अपने मुंह से लेकर पूंछ तक की सारी देह जमीन पर घसीटते हुए चलना पड़ता है, उसके लिए यह दाढ़ी तो बहुत ही मुसीबत की चीज होगी। सांप की २५ फीट लम्बाई भी मुझे गपोड़ी की गप मालूम हुई।"

"इन अखबारों में जो न छप जाय, वही कम है। 'लड़की लड़का बन गई' 'स्त्री ने बछड़े को जन्म दिया' इतना ही नहीं एक अखबार ने समाचार छापा 'एक लड़के के पेट से बच्चा पैदा हुआ' ऐसी खबर कितनी ही निराधार क्यों न हो, छापे बिना सम्पादकों को चैन ही नहीं पड़ती।" मैंने कहा।

"और सांप! बड़ी से बड़ी गप लगाने के लिए भूत और सांप से अच्छा मसाला कुछ नहीं मिल सकता। सांप की फुफकार मात्र से आदमी मर गया; सांप ने लाठी को डसा; लाठी फटती चली गई और विष लाठी पकड़ने वाले के हाथ में पहुंच गया और देखते-देखते आदमी मर गया। ऐसे कितने ही रोचक और निराधार किस्से आये दिन प्रचलित होते रहते हैं।" पं० हरिवंश ने कहा।

मैंने कहा : "लोगों में यह जो विचार प्रचलित है कि सांप बिना छेड़े किसी पर आक्रमण नहीं करता, मैं तो इसे भी अहिंसावादियों की गप ही समझता हूं।"

देवेन्द्र भगवान बुद्ध की अहिंसा का भक्त है; बोला : "यह बात तो सही है कि बिना छेड़े सांप किसी को कुछ नहीं कहता। या तो आप उसे मारें और या अनजाने में ही आपका पांव उस पर पड़ जाय, तभी वह काटता है।"

"यही तो बात नहीं है। सांपों ने अन्याय न करने की कोई शपथ नहीं खाई हुई है। वे अपनी पशु बुद्धि से काम करते हैं। यह सही है कि सामान्यतः सांप मनुष्य से डरते हैं और जहां तक सम्भव हो बचकर हट जाने की कोशिश करते हैं; परन्तु उत्तेजित अथवा भयभीत होने की दशा में वे अकारण भी आक्रमण कर बैठते हैं।"

"उत्तेजित या भयभीत होने की दशा में किया गया आक्रमण अकारण नहीं कहा जा सकता। कारण तो भय या उत्तेजना विद्यमान ही है।"

"यह इस तरह होता है। रात के अंधेरे में व्यक्ति चला जा रहा है। रास्ते के पास सांप बैठा है। आदमी ने सांप को नहीं देखा, परन्तु सांप ने आदमी को देख लिया है। आदमी के मन में सांप को चोट पहुंचाने का कोई

विचार नहीं है; यहां तक कि अगर सांप चुप पड़ा रहे, तो आदमी आगे गुजर भी जायेगा। परन्तु जब पास पहुंचने पर सांप आदमी के पैर को उठते और आगे बढ़ते देखता है, तब वह उससे अपने लिए ठीक वैसा ही खतरा अनुभव करता है, जैसा कि लाठी या डंडे से; और मिथ्या भय से भयभीत होकर वह पांव पर आक्रमण कर बैठता है। इसके विपरीत कई बार यदि सांप के ऊपर ही पैर पड़ जाय, तो सांप आक्रमण करने का विचार छोड़कर भागने का ही प्रयत्न अधिक करता है। कम से कम तीन ऐसी घटनाएं तो मैं अपनी आंख से देख चुका हूं, जबकि एकाएक सांप पर पांव पड़ जाने पर उसने काटने के बजाय भागने में अधिक कुशल समझी।"

"ऐसा भी हो सकता है," पं० हरिवंश बोले : "और ऐसा भी बहुत बार होता है कि किसी और व्यक्ति द्वारा छेड़ा जाने से सांप उत्तेजित हुआ बैठा रहता है और जब कोई अन्य अनजान व्यक्ति पास से गुजरता है, तो क्रुद्ध होकर वह उस पर आक्रमण कर बैठता है। उस समय आक्रमण करने से पूर्व वह इस बात को जानने की बिलकुल चेष्टा नहीं करता कि उसे छेड़ने वाला व्यक्ति कौन था। अतः यह सोचकर निश्चिन्त नहीं हुआ जा सकता कि जब हम सांप को नहीं छेड़ रहे, तो वह हमें कुछ क्यों कहेगा?"

"मधुमक्खियों के साथ ऐसा बहुत बार होता है। छत्ते को छेड़कर कोई आदमी भाग जाता है और फिर बला भुगतनी पड़ती है किसी दूसरे को। लाहौर के गोल बाग में मैंने एक बार ऐसा तमाशा देखा था। सवेरे-सवेरे ही किसी शैतान लड़के ने पेड़ पर लगे एक बड़ी मक्खियों के छत्ते को छेड़ दिया था। बहुत से लोग प्रातःकालीन भ्रमण के लिए गोल बाग में आते थे। इनमें से दो-तीन आदमियों को मक्खियों ने बुरी तरह काट लिया था। उन बेचारों के चेहरे इतने सूज गये थे कि आंखें बिलकुल बन्द हो गई थीं।"

डाक्टर अनन्तानन्द कहने लगे : "पशु-पक्षी किसी के मन का भाव सहसा नहीं जान पाते। वे तो केवल उस प्रभाव को ग्रहण करते हैं, जो किसी के भी जाने या अनजाने आचरण से उन पर पड़ रहा होता है। मेरे एक मित्र हैं, उनके साथ भी एक बार बहुत बुरी बीती थी। वे किसी के यहां निमंत्रित होकर किसी संस्कार में गये हुए थे। जब हवन समाप्त हो चुका और उसके बाद गीत आदि का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ, तो बीच में रखे हुए हवन-कुंड का धुआं काफी कष्ट देने लगा। हमारे वे मित्र हवन-कुंड को उठाकर कमरे से बाहर ले गये और उसे आंगन में एक छोटे से पेड़ की जड़ के पास रख दिया। इस पेड़ पर बड़ी मक्खियों का एक बड़ा छत्ता लगा हुआ था। इस पर किसी का ध्यान नहीं गया था। घी और सामग्री के कारण हवन-कुंड में से धुआं खूब जोर से उठ रहा था। इस धुएं से मक्खियां

एकदम क्षुब्ध हो गईं और इससे पहले कि हमारे वे मित्र समझ सकें कि हुआ क्या, सैकड़ों मक्खियां उन्हें चिपट गईं। लोगों ने शोर सुना, परन्तु बचाने का कोई उपाय नहीं था; अतः पास भी कोई नहीं आया। दरवाजे-खिड़कियां बन्द करके सबने बचने की ही कोशिश की। यन्त्रणा की अधिकता से वे मित्र बेहोश हो गये। बाद में जब मक्खियों का उत्पात शान्त हो गया, तब लोग उन्हें अस्पताल ले गये। वहां दीर्घीकरण कांच से देख-देख कर मक्खियों के सैकड़ों डंक चिमटी से पकड़-पकड़कर निकाले गये और कई दिन बाद जाकर वह स्वस्थ हो सके।"

"डंक न निकाला जाय, तो कष्ट बहुत अधिक होता है," पं० हरिवंश बोले।

१६

काला बिच्छू

इस समय हम जंगल के अन्दर वनी हुई वन विभाग की चौकी खारा की ओर वढ़ रहे थे । जंगल निरन्तर घना और घना होता जा रहा था। जब कभी हमारा रास्ता किसी पहाड़ी की चोटी पर पहुंचता था, तो चारों ओर दूर-दूर तक घने पेड़ों से ढंकी हुई पर्वत-शृंखलाएं दिखाई पड़ती थीं। ऐसा लगता था, जैसे इनका कहीं अन्त ही नहीं है। और जब वही रास्ता उतरता हुआ पहाड़ियों की जड़ के पास से अथवा तंग नालों में से होकर गुजरता था, तो सील और ठंड के कारण एक सुखद शांति अनुभव होती थी ।

चलते-चलते जब हम एक चौड़े बरसाती नाले के पास पहुंचे, जिसे पार करके हमें आगे बढ़ना था, तो दाईं ओर नाले की सूखी रेत पर हाथियों के ताजे निशान दिखाई पड़े। असंदिग्ध रूप से ये निशान उन्हीं हाथियों के थे, जो रात को बांस तोड़-तोड़ कर खा रहे थे। प० हरिवंश शुरू से ही इस बात को ध्यान में रखकर चल रहे थे कि हमें हाथियों की दिशा में ही बढ़ना है। हाथियों के ये निशान अनाड़ी आदमी को तो ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे हाथी अभी पांच मिनट पहले ही यहां से गया है, परन्तु जानकार व्यक्ति का अनुमान इतना कच्चा नहीं होता। पं० हरिवंश बोले : "यहां से गये हुए तो हाथियों को काफी देर हो गई मालूम होती है, परन्तु इस बात की संभावना है कि वे चार या पांच मील से अधिक दूर नहीं जा सके होंगे।"

उसके बाद हमने खारा वाला रास्ता छोड़ दिया और हाथियों के पदचिह्नों के साथ-साथ नाले में बढ़ने लगे। कुछ दूर तक हाथी नाले की समतल भूमि पर चले थे। वहां तक तो सब ठीक था, परन्तु कोई चार फर्लांग बाद उन्होंने एक और नाले के साथ पहाड़ी के ऊपर की ओर अपना रुख कर लिया था। हाथी अपनी रुचि और अपने बल के अनुसार रास्ता बनाते जाते हैं। हमें अनुभव हुआ कि इन हाथियों की रुचि और बल म से बहुत भिन्न था; अतः हमें काफी श्रम करना पड़ा

"ये भारी भरकम हाथी कैसे इतनी सीधी चढ़ाई पर चढ़ जाते हैं ?" कृष्ण ने कुछ हांफते हुए कहा।

वस्तुतः हाथी इतनी सीधी चढ़ाई पर चढ़कर गये थे कि यदि अपनी आंखों से हमने उनके पदचिह्न वहां न देखे होते, तो हम किसी के भी कहने पर यह विश्वास नहीं कर सकते थे कि हाथी ऐसी विकट चढ़ाई पर चढ़ने की कोशिश भी कर सकता है।

"जितनी भारी देह मिली है, उसे संभालने को उसे उतना ही बल भी मिला है," डा० अनन्तानन्द बोले : "अपने हलके-फुलके शरीर से जितना तेज हम भाग सकते हैं, हाथी उससे कहीं अधिक तेज भाग सकता है।"

हाथी को भागते हुए हम में से बहुतों ने देखा था, अतः किसी को इस मन्तव्य पर आपत्ति नहीं थी, परन्तु हम सभी की निश्चित धारणा थी कि हाथी समतल भूमि पर ही अपना बल प्रदर्शित करता है। यहां हाथी ऐसे रास्ते पर भी चले थे, जहां से गुजरने में एक बार बकरी को भी हिचक होती। कई जगह वे पैर रखने लायक पूरा स्थान न होने से चार-चार पांच-पांच फीट फिसल भी गये थे। कई जगह जहां उतराई सीधी थी और खड़े-खड़े उतरने का प्रयत्न करने में दूर गहराई में जा पड़ने का खतरा था, वहां वे बैठकर जान-बूझ कर नीचे की ओर फिसलते हुए उतरे थे और उपयुक्त स्थान तक पहुंच जाने पर फिर खड़े होकर चलने लगे थे। चलते-चलते वे सुविधानुसार रास्ते के——यदि इसे रास्ता कहा जा सकता है तो——दोनों ओर खड़े बांसों में मुंह मारते गये थे, ताजे टूटे हुए, उखड़े हुए और चिरे हुए बांस इस बात को अच्छी तरह स्पष्ट कर रहे थे। ?

चलते-चलते पं० हरिवंश रुक गये : एक पत्थर की जड़ में देखते हुए बोले : "बिच्छू है ! पत्थर की जड़ में छिपा बैठा है।"

पता नहीं पं० हरिवंश की निगाह किस तरह इन चीजों पर अनायास जाकर पड़ जाती है। जब हम लोगों का ध्यान न जाने कहां होता है, वे कोई ऐसी चीज ढूंढ निकालते हैं। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह एक अद्भुत प्रकार की शक्ति है, जो बहुत कम लोगों में पाई जाती है। एक बार तो हम लोग बिलकुल दंग ही रह गये थे, जब ऋषिकेश में बाबा काली कमली वाले की धर्मशाला में जमीन पर सोने की तैयारी करते हुए बरसाती रात के घुप अंधेरे में पं० हरिवंश ने चिल्लाकर हमें सावधान किया था, 'बिच्छू है, बिच्छू है, टार्च जलाना।' आपस में हास-परिहास की हमारी कोई सीमा नहीं थी, अतः हम सबने इसे पहले परिहास समझा था, क्योंकि इतने अंधेरे में बिच्छू दीख पाना संभव नहीं था। पर पं० हरिवंश ने गंभीरता-पूर्वक टार्च जलाने का आग्रह किया, तो हम सब हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए। टार्च जलाने पर देखा गया कि सचमुच एक छोटा-सा पी[illegible] बिच्छू दीवार

के कोने के साथ जाकर सट गया है। बिच्छू को हमने मार दिया था, पर यह हम में से किसी की समझ में नहीं आया कि आखिर उन्होंने बिच्छू को देखा कैसे? कहते हैं कि परमात्मा अंधेरी रात में काले पत्थर पर चलती हुई काली चींटी को भी देख सकता है। यह भी कुछ वैसी ही करामात थी। पहले तो पं० हरिवंश कहने लगे: 'जादू जानता हूं। उससे देख लिया था।' हम शायद इस बात को भी मानने को तैयार हो जाते, पर बाद में उन्होंने बताया कि यह केवल संयोग था। काफी दूर पर सड़क के किनारे एक लैम्प जल रहा था। उसका प्रकाश वैसे तो हमारे पास तक नाममात्र को पहुंच रहा था, परन्तु सीमेंट के फर्श पर उसी का प्रतिक्षेप कुछ चमकता दीखता था। जिस जगह यह प्रतिक्षेप पड़ रहा था, जब बिच्छू वहां से गुजरा, तो अचानक ही पं० हरिवंश की दृष्टि उस पर पड़ गई। परन्तु अचानक भी हर किसी की दृष्टि उस पर इस तरह नहीं पड़ सकती थी। प्रतिक्षण सतर्क और अभ्यस्त दृष्टि की पकड़ाई में ही ऐसी चीज आती है। यही कारण था कि इस समय जंगल में भी पत्थर की जड़ में बैठे हुए बिच्छू पर उनकी ही दृष्टि पड़ी, अन्य किसी की नहीं।

मुझे बिच्छू से बहुत डर लगता है। पर यह डर इस प्रकार का डर है कि कहीं बिच्छू काट न ले! काट लेगा तो बड़ा कष्ट होगा। जो बिच्छू दिखाई नहीं पड़ रहा, उससे यह डर है। जो बिच्छू दीख जाय उससे कुछ डर नहीं; क्योंकि बिच्छू सांप की तरह फुर्तीला नहीं होता कि उसे मारने में कठिनाई हो। परन्तु विचक्षण यह है कि यह दिखाई पड़ने से पहले काट सकता है। यह किताबों और कापियों के ढेर में छिपा बैठा हो सकता है; बिस्तर में आराम से आपकी प्रतीक्षा कर रहा हो, यह भी सम्भव है।

मैंने कहीं सुना हुआ है——पता नहीं, यह बात सही है या गलत——कि जिन लोगों को ततैये के काटने का जहर कम चढ़ता है, उन पर बिच्छू का जहर बहुत असर करता है। इसी तरह जिन पर ततैये का जहर अधिक असर करता है, उन्हें बिच्छू का जहर कम कष्ट देता है। मुझे बिच्छू ने अभी तक कभी नहीं काटा, परन्तु ततैयों ने बहुत बार काटा है; और उनके विष से मुझे बहुत कष्ट कभी नहीं हुआ। अतः मैंने परिणाम निकाल लिया है कि बिच्छू जब मुझे काटेगा, तो बहुत कष्ट देगा। अतः बिच्छू काटने की कल्पना से ही मुझे सिहरन-सी हो आती है।

यह बिच्छू, जो पत्थर की जड़ में छिपा बैठा था, बहुत बड़ा और एकदम काले रंग का था। इसे इधर पहाड़ी बिच्छू कहते हैं। सामान्यतः बिच्छू मनुष्यों की बस्तियों में ही पाये जाते हैं, अतः जंगल में इस भूजी को इस तरह पत्थर की जड़ में छिपे बैठे देखकर हमें आश्चर्य हुआ। हमने उस पत्थर को ही उलट दिया, जिसके पास वह छिपा बैठा था। इससे उसके

चट से कहीं दुबक जाने का अवसर जाता रहा।

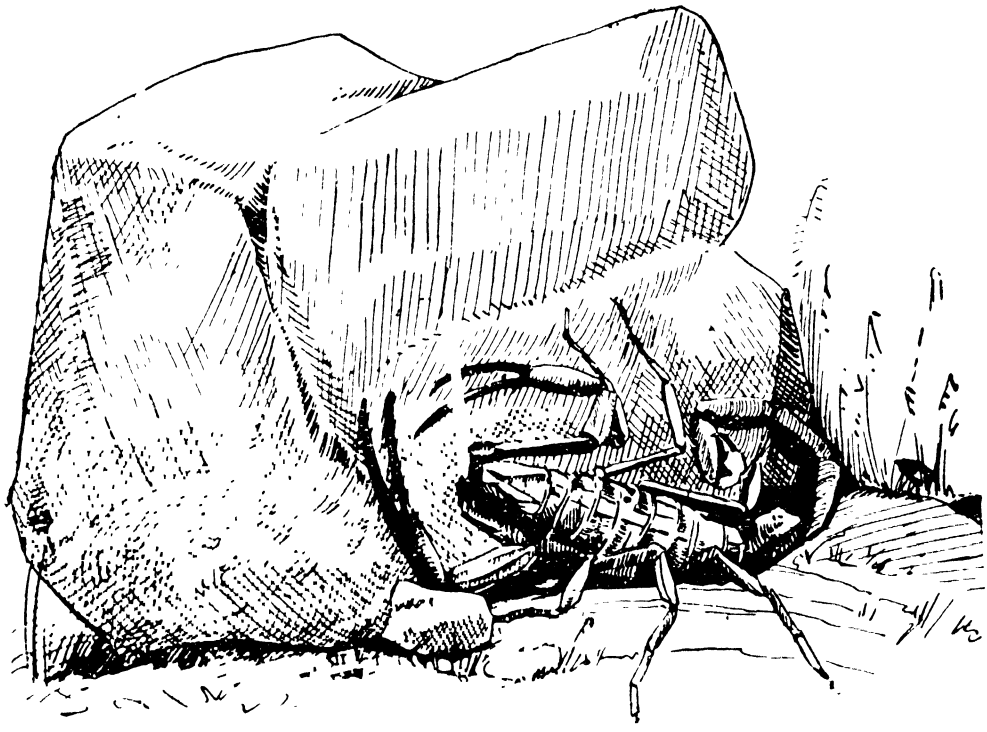

बिच्छू पत्थर की जड़ में छिपा बैठा था

पं० हरिवंश ने एक लम्बी लकड़ी लेकर उसकी पूंछ दबा ली, जिसस वह उत्तेजित होकर लकड़ी में ही डंक मारने तथा छूटने की कोशिश करने लगा। बिच्छू को डंक आत्मरक्षा करने तथा शिकार प्राप्त करने के लिए मिला है। छोटे-छोटे कीड़ों को यह पहले डंक मारकर अचेत कर देता है, जिस प्रकार सांप मेंढकों और चूहों को डंसकर बेहोश कर देता है, और फिर उन्हें सरलतापूर्वक निगल जाता है। इस समय वह लकड़ी को ही अपना शत्रु समझकर, उसे डंक मारकर छूटने की कोशिश करने लगा। परन्तु यह लकड़ी थी, अतः कुछ प्रभाव नहीं हुआ। जीवित प्राणियों पर बिच्छू के विष का प्रभाव इतना शीघ्र और इतना तीव्र होता है कि उसे उनसे छूटने में तुरन्त सफलता मिल जाती है। इस समय इस बेचारे के असफल प्रयत्न हमारे मनोरंजन और हास्य की सामग्री बन गये।

कृष्ण बोला : "कितना काला है, एकदम जहर से भरा हुआ!"

डाक्टर अनन्तानन्द बोले : 'देखने में तो यह काला बिच्छू अधिक बड़ा और डरावना होता है, परन्तु विष की पीड़ा पीले बिच्छू की ही अधिक होती है।"

उस काले विशालकाय बिच्छू को देखकर किसी तरह यह मानने का मन नहीं होता था कि पीला बिच्छू इससे अधिक जहरीला हो सकता है। यह तो आंखों से ही दिखाई पड़ रहा था कि यह बिच्छू अधिक भयंकर

है। परन्तु यह भी मैं अच्छी तरह जानता हूं कि हमारी अधिकतम विश्वास-योग्य आंखें——अपनी आंखों से देखी वस्तु सबसे अधिक प्रामाणिक मानी जाती है——हमें बहुत बार धोखा देती हैं। वाइपर और करैत सांप, जिनका विष भयंकर रूप से प्राणघातक होता है, उन अनेक अन्य सांपों की अपेक्षा बहुत छोटे और कम भयंकर दिखाई पड़ते हैं, जिन्हें बिना किसी संकट के गले में माला की तरह लपेटा जा सकता है। १८ फीट लम्बा और डेढ़ मन भारी अजगर मनुष्य के लिए उतना खतरनाक नहीं है, जितना कि बालिश्त भर लम्बा जलेबिया वाइपर, जिसका बोझ मुश्किल से दो छटांक होता है। परन्तु अजगर को देखकर जैसा मन आतंकित हो उठता है, वैसा इस जलेबिया सांप को देखकर नही होता। इसलिए कम-से-कम मुझे यह मानने में कोई ऐतराज नही हुआ कि पीले बिच्छू का विष इस काले बिच्छू की अपेक्षा अधिक तीव्र होता होगा।

सुभाष बोला : "डाक्टर जी, मैंने ऐसा सुना है कि इस काले बिच्छू के काटने से आदमी मर जाता है, और प्रवाद तो यहां तक है कि यदि यह पहाड़ी बिच्छू पत्थर में डंक मार दे, तो विष की गर्मी से पत्थर खौलने लगता है और संखिया बन जाता है।"

"और इसके डंक मारने से यह लकड़ी शायद चन्दन बन जायगी! पं० हरिवंश बोले।

हम सब हँस पड़े। स्पष्ट था कि जब हमारी आंखों के सामने ही बिच्छू के बारम्बार डंक मारने पर भी लकड़ी में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, तो पत्थर पर भी कोई जादू का प्रभाव होने वाला नही है।

डाक्टर अनन्तानन्द कहने लगे : "बिच्छू के विष से आदमी के मरने की घटनाएं बहुत कम होती हैं। कोई बहुत सुकुमार व्यक्ति ही मृत्यु की सीमा तक पहुंचता है, अन्यथा प्रायः सभी लोग कुछ देर तक तड़पते रहने के बाद ठीक हो जाते हैं।"

मैंने कहा : "बिच्छू का विष कुछ विचित्र ही ढंग से प्रभाव करता है, ऐसे ढंग से कि उसे अवास्तविक भी कहा जा सकता है। क्योंकि मैंने कुछ आदमियों को बिच्छू काटने की यंत्रणा से बुरी तरह चीखते-चिल्लाते देखा है, जबकि आठ-दस मिनट बाद खोज से निश्चित रूप से पता चल गया कि काटने वाला बिच्छू नहीं, बल्कि एक मामूली चींटा था। इसके विपरीत मैंने स्वयं एक बालक को देखा, जिसकी अंगुली में बिच्छू ने काटा था और वह बालक जोर-जोर से रो रहा था। एक हिप्नोटिज्म (सम्मोहन) करने वाले व्यक्ति ने बालक की उस अंगुली को अपने हाथ से पकड़कर धीमे से मला और कहा : 'रोते क्यों हो भाई, तुम्हारी अंगुली तो ठीक हो गई। कहां, अब तो तुम्हें दर्द बिलकुल नहीं हो रहा।'

और सचमुच ही बालक सम्मोहनकर्त्ता के मुंह की ओर देखने लगा। वह रोना भूल गया। उसके बाद उसे दर्द नहीं हुआ।"

"परन्तु इससे आप विष के प्रभाव को अवास्तविक नहीं कह सकते। हिप्नोटिज्म के प्रभाव से दर्द का अनुभव होना बन्द हो जाता है। बिच्छू का ही दर्द क्या, आपरेशन तक का दर्द इसके प्रभाव से अनुभव नहीं होता। क्लोरोफार्म के आविष्कार से पूर्व कलकत्ता में प्रतिवर्ष सैकड़ों आपरेशन हिप्नोटिज्म द्वारा रोगी को संज्ञाहीन करके किये जाते थे। हिप्नोटिज्म के प्रभाव से रोगी ठीक उसी तरह अचेत हो जाता था, जिस तरह क्लोरोफार्म से हो जाता है।" डाक्टर अनन्तानन्द ने कहा।

पं० हरिवंश अभी तक बिच्छू से खेल रहे थे। एकाएक उन्होंने उसे लकड़ी से उछालकर दूर झाड़ियों में फेंक दिया और उठकर खड़े होते हुए बोले : "चलिये, चलें।"

१७

हाथियों से मुठभेड़

हम फिर आगे चल पड़े। हाथी इतनी दूर निकल गये होंगे, इसकी हमने कल्पना नहीं की थी। रास्ता इस समय बड़े रमणीय, किन्तु भयंकर स्थान पर से गुजर रहा था। दोनों ओर पहाड़ की दीवारें खड़ी थीं, जिनमें जहां-तहां वृक्षों ने फैलकर रास्ते को आरपार ढका हुआ था। इन दीवारों के बीच में अन्तर कहीं दस फीट और कहीं केवल आठ फीट ही रह जाता था। पैरों तले की जमीन सीली हुई थी और जहां-तहां पानी के गड्ढे भरे हुए थे। जमीन पर हाथियों के अतिरिक्त एक शेर और एक चीते के भी पदचिह्न दिखाई पड़ रहे थे। पानी के कारण सब ओर वनस्पतियां प्रभूत और हरी थीं। वायुमंडल की सघन शीतलता से शरीर में कुछ सिहरन-सी हुई थी, वह शेर और चीते के पदचिह्नों को इस विषम स्थल में देखकर और बढ़ गई! जब दोनों ओर खड़े पहाड़ पर दृष्टि दौड़ाई, तो तुरन्त समझ में आगया कि यदि भागकर जान बचाने का प्रश्न उठ खड़ा हो, तो दायें और बायें, दोनों ही ओर दो कदम भी ऊपर चढ़ पाने की गुंजाइश नहीं है; केवल पीछे की ओर ही भागा जा सकता है।

"क्यों हरिवंश जी, यदि इस तंग नाले में सामने से शेर या चीता आ जाय तो?"

प्रश्न असम्भव नहीं; क्योंकि उनके पदचिह्न भूमि पर विद्यमान हैं। किसी भी कारण से उन्हें इस असमय में इधर आने की आवश्यकता पड़ सकती है। और यह भी तो सम्भव है कि हम ही चलते-चलते उन तक पहुंच जायें।

पं० हरिवंश बोले: "मिलते ही नमस्ते कीजियेगा।"

बात हँस पड़ने की थी, परन्तु नाला कम्बख्त इतना मुड़ता-तुड़ता चल रहा था कि हमारे सौ कदम आगे क्या है, सो हमें कुछ पता नहीं चल सकता था। समस्या की गम्भीरता के कारण हम लोग खुलकर हँस भी नहीं सके। कुछ सड़े मांस की दुर्गन्ध सी भी आती अनुभव हुई।

हमने सुना हुआ था कि यदि शेर, चीता अथवा अन्य कोई हिंस्र

पशु सामने पड़ जाय, तो भाग नहीं पड़ना चाहिए, क्योंकि इससे पशु भागते हुए व्यक्ति को भयभीत देखकर उस पर अवश्य टूट पड़ता है। हमने यह भी सुना था कि इन पशुओं को यदि अवसर दिया जाय, तो वे रास्ता छोड़कर दूसरी ओर निकल जाते हैं, परन्तु मुंह फेरकर वापस कभी नहीं लौटते, क्योंकि तब उन्हें यह ख्याल होता है कि वे डरे हुए समझे जायेंगे। और वनराज कभी डर सकता है ?

जंगल में घूमते-फिरते हमारे सामने यह प्रश्न कभी नहीं उठा था कि यदि शेर मिल जाय, तो क्या होगा ? क्योंकि हम अच्छी तरह जानते थे कि यदि हम जान-बूझकर शेर को उत्तेजित नहीं करेंगे अथवा डरकर नहीं भागेंगे, तो शेर रास्ता छोड़कर इच्छानुसार किसी भी ओर जा सकता है। परन्तु यहां इस समय विचित्र परिस्थिति थी। यदि शेर से नाले में एक बार आमना सामना हो जाय, तो फिर न उसे रास्ता छोड़कर जाने की सुविधा होगी, न हमें। मुंह मोड़कर लौटना दोनों ही के लिए खतरे से खाली नहीं है। और जिस रास्ते पर हम बढ़ रहे हैं, इस पर बढ़ते हुए परस्पर साम्मुख्य हो जाना ही अधिक स्वाभाविक है। यदि शेर की मांद में घुसना नाम की कोई वास्तविक क्रिया हो, तो वह इससे बढ़कर और कुछ नहीं हो सकती।

बरसात ने यहां पर भी काफी खिलवाड़ किया था। जगह-जगह पेड़ टूटे और अधटूटे पड़े थे। कहीं-कहीं हाथियों ने इन अधटूटे पेड़ों को अपना मार्ग बनाने के लिए और तोड़ डाला था। एकाएक खयाल आया कि शेर न सही, यदि हाथी ही सामने नाले में मिल जाय, तो भी भविष्य कुछ मनोरम नहीं है। आखिर हम स्वयं ही तो उन्हें ढूंढने निकले हैं। यदि वे मिलने के लिए यही स्थान उपयुक्त समझें, तो उन्हें कौन दोष देगा ? परन्तु जंगली हाथी से साक्षात्कार हो जाने पर बच भागने के जो भी उपाय हमें मालूम हैं, यहां उनमें से एक भी काम नहीं आयेगा। न यहां ऊपर चढ़ जाने लायक पहाड़ी है, न कोई सीधा ढलान, जिस पर हम भागते हुए जा सकें। बांसों के अथवा अन्य घने पेड़ों के झुरमुट में से होकर भागने का उपाय भी यों सोचने की चीज नहीं। यहां तो दोनों ओर सीधे खड़े पहाड़ों से घिरा संकरा, ऊबड़-खाबड़ नाला है। यदि सामने हाथी दीख पड़ा, तो उलटे पैरों भागने की दशा में हम में से दो-चार जरूर एक दूसरे से उलझकर अथवा पत्थर की ठोकर खाकर गिर पड़ेंगे ! और यदि हाथी सामने दीख पड़ा, तो हमें भागना अवश्य पड़ेगा। शेर का सामना खड़े रहकर किया भी जा सकता है, पर हाथी ? बाप रे ! हाथी कई बार हम पर झपट चुका है, पकड़ हमें वह कभी भी नहीं पाया। परन्तु बिना उतराई-चढ़ाई पर भागे उससे कैसे बचा जा सकता है, यह हम किसी भी तरह नहीं सोच सकते।

इन सब शंकाओं के साथ भी हम आगे बढ़ते ही रहे।

शेरों और चीतों ने भी दिन में सोने और विश्राम करन क लिए क्या वढ़िया स्थान चुना है! पेड़ों के सघन हरित-श्यामल पत्तों ने आकाश को छाकर सूर्य-किरणों का पृथ्वी तक पहुंचने का मार्ग बिलकुल रोक दिया हैं। धूप की कमी से नाले के किनारे उगी हुई घास स्वस्थ हरी न रहकर सुनहली पीली-सी पड़ गई है। देखने में बहुत सुन्दर जान पड़ती है। वड़ी-वड़ी मालझाड़ की बेलें पेड़ों पर चढ़ गई हैं। उनके हाथी के कान जैसे वड़े-वड़े पत्तों ने पेड़ों को ढंककर ऐसी हरियाली फैला दी है कि वन में कहीं-कहीं ही देखने को मिलती है। जहां-तहां करौंदे की झाड़ियां खड़ी हुई हैं। ऐसा घना और हरा पौधा जंगल में शायद दूसरा कोई नही है। यहां की निस्तब्धता केवल आंधी, वर्षा अथवा वनपशुओं की गर्जना से ही भंग होती है। मनुष्य की वस्तियों में होने वाले हजार तरह के शब्दों में से एक भी यहां तक नहीं पहुंच सकता।

सड़े हुए मांस की वदबू एक वार आई थी, पर वहां से आगे निकल आने के वाद वह फिर नही आई। कोई दो फर्लांग तक नाले में चलने के वाद रास्ता खुले पहाड़ पर आ गया। पता नहीं, कौन शेर कहां सोया हुआ रह गया। इस तंग रास्ते में चलते हुए हम बिलकुल चुपचाप चले थे। कारण कि शेर से सामना होने के वाद चाहे जो हो, परन्तु यदि आज सौभाग्य से सामना होने का अवसर उपस्थित हुआ ही हो, तो हम वातचीत के शोर से उसे गंवाने को बिलकुल तैयार नही थे। हमारी मन्द मे मन्द स्वर में की गई वातचीत किसी भी हिंस्र पशु को दूर से ही सावधान करने को पर्याप्त थी और उस दशा में वह हमारे निकट पहुंचने से पूर्व ही कहीं का कहीं निकल जाता।

परन्तु हमारी सारी सावधानी के वावजूद कोई हिंस्र पशु हमारे रास्ते पर नहीं पड़ा। जब तंग नाले को पार करके हम वाहर निकल आये, तो हमारी उद्विग्नता भले ही शान्त हो गई, परन्तु एक असफलता-सी भी अनुभव हुई कि लो आज भी कुछ नही मिला।

"क्यों विराज जी, इस रास्ते पर अंधेरी रात म अकेले आ सकते हैं?" सुभाप ने चुनौती देते हुए पूछा।

मिथ्या दम्भ से कोई लाभ नहीं, और यह स्वीकार कर लेने में कोई लज्जा भी नहीं, अतः मैंने कहा: "ना भाई, अंधेरी रात क्या, मुझे तो दिन में भी अकेले इस ओर आते डर लगेगा।"

कृष्ण वोला: "क्यों तू आ सकता है सुभाप?"

"अरे, यहां आने में क्या रखा है? जब कहो, तब आ सकता हूं।" सुभाष वोला। वह मेरी अपेक्षा अधिक व्यावहारिक है। आना न मुझे था,

न उसे; फिर कहने में क्यों कसर रखी जाय ? पर कसर न रखने पर भी विश्वास किसी ने नहीं किया कि वह आ सकता है ।

"दिन में तो मैं अकेला इस ओर कई वार आया हूं," पं० हरिवंश वोले : "और कोई वड़ी शर्त लग जाय, तो मैं भाला हाथ में लेकर रात में भी यहां अकेला आ सकता हूं ।"

सुनकर मैं सिहर उठा; क्योंकि इस कथन का एक अक्षर भी मिथ्या नहीं है। अंधेरी रात में इस वन-तरुलताओं से आच्छादित संकरे नाले का क्या रूप होता होगा ? इस समय, जव सूर्य सिर पर पहुंचने वाला है, तव यहां इतना अंधेरा, इतनी सील और इतना संकट है, तव रात के अंधेरे में, जव हर पेड़ और झाड़ी की छाया कई गुनी हो उठती है, जव मनुष्य की दृष्टि को अन्धकार हर लेता है, जव निशाचर हिंस्र पशु आहार की खोज में निकलते हैं, तव यहां अकेले आने की हिम्मत ! केवल इसलिए कि कोई वड़ी शर्त लग गई है——कोई मरने-जीने की समस्या नहीं उठ खड़ी हुई। हम लोग पं० हरिवंश की तुलना में स्वयं को वहुत छोटा अनुभव करने लगे। वैसे पृथ्वीतल पर हम लोग सवसे अधिक डरपोक नहीं हैं। हमारे परिचितों में ही कई मित्र ऐसे हैं, जो रात के समय शेरों, सांपों या डाकुओं की कहानियां सुनने तक से कांपते हैं। ऐसी कोई चर्चा प्रारम्भ होते ही वे कहते हैं : "तुमने भी क्या अंधेरे में शेरों और सांपों की वात छेड़ी है। और कोई ढंग की वात ही नहीं मिली तुम्हें करने को ?" पर शैतान साथी मानते कहां हैं, और वढ़ा-चढ़ाकर भयंकर वनाकर सुनाते हैं : 'और तव उस शेर ने उस लड़की की गर्दन में अपने दांत गाड़ दिये और उसे मुंह में दवाकर जोर की कुलांच मारकर अंधेरे में गायव हो गया।' दूसरा कहता है : 'जव काफी देर वाद दरवाजा खोला, तो दीवार से सटा हुआ एक आदम-खोर चीता गुर्राता हुआ आगे वढ़ आया। उसकी आंखें टार्च की तरह चमक रही थीं और लम्वे खूंखार दांत अंधेरे में भी दीख रहे थे। गुर्राता हुआ वह कूदने की तैयारी में जमीन पर दवक गया ।'

इससे आगे हमारे वे साहसी मित्र कथा भी नहीं सुन पाते। 'अगर तुम चाहते हो कि मैं चला जाऊं, तो साफ क्यों नहीं कहते ? अगर तुम ऐसी वेढंगी कहानियां सुनाओगे, तो मैं यहां वैठने से रहा ।' उन्हें भगाना हम नहीं चाहते, पर छेड़ते रहना अवश्य चाहते हैं। पर उस समय वह वेढंगी कहानी हमें छोड़ ही देनी पड़ती है ।

इसी तरह एक और भी मित्र हैं। वह अंधेरे कमरे में अकेले नहीं घुस सकते, भले ही सुरक्षा के लिए दस साथी कमरे के दरवाजे पर खड़े हों। कमरे में विजली का स्विच है; केवल पांच छह कदम चलकर उस स्विच तक पहुंचकर उसे दवा देना है, फिर प्रकाश हो जायगा। परन्तु

अंधेरे में पांच-छह कदम चलकर स्विच तक पहुंचना ही उनके बस का नहीं है। और भी कितने ही लोग इसी देश के शहरों और गांवों में निवास करते हैं, जिनकी अपेक्षा हम अपने आपको अधिक साहसी मान सकते हैं। परन्तु यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि उस साहस की अन्तिम बूंद तक निचोड़कर भी मुझ में यहां अकेले रात मे आने का दम नहीं है—चाहे वह रात अमावस्या की हो, चाहे पूर्णमासी की। पूर्णमासी की जगमगाती चांदनी में घने और शांत वनों को देखने का लोभ मुझे बहुत अधिक है, पर इस लोभ को मैं आठ-दस साथियों के साथ ही पूरा करना पसन्द करता हूं, अकेले किसी शर्त पर नहीं।

नाले में से क्या निकल आये, हमने समझा कि हम बिलकुल खुले मैदान में आ गये। पर बात ऐसी नहीं थी। जंगल अब भी खूब घना था; हाथियों और शेरों के पदचिह्न यहां भी उतने ही थे; खतरा यहां से भी दूर नहीं था; परन्तु निश्चिन्तता यह थी कि कुछ भी खतरा उपस्थित होने पर हम इच्छानुसार भाग या दौड़ सकते थे। नाले में हमारी सारी बेचैनी इस बात की थी कि खतरा जितना निकट प्रतीत हो रहा था, बचने का मार्ग उतना ही बन्द दिखाई पड़ रहा था।

आगे हाथी इस नाले को छोड़कर उतराई की ओर चले थे। इस उतराई को पार करके रास्ता समतल भूमि पर आ गया। यहां दूर तक बेरियों का जंगल फैला हुआ था, अन्य सब वनस्पतियां जैसे बहिष्कृत कर दी गई थीं। हाथी कहां निकल गये, इन प्रश्नों ने हमें अधीर कर दिया था। जंगल में प्रायः सभी घटनाएं अप्रत्याशित होती हैं। मनुष्य के आधे से अधिक अनुमान गलत निकल जाते हैं। रास्ते का छोटा सा घुमाव पार करते ही देखा कि एक नहीं, चार हाथी बेरियों के झुरमुट के नीचे खड़े हैं। कृष्ण सबसे आगे था। 'हाथी!' धीमे से उसने कहा और चलते-चलते एकदम रुक गया। बिना कुछ शब्द किये हम भी तेजी से आगे बढ़ आये। हाथी छोटे तो थे ही नहीं, बहुत बड़े भी नहीं थे। बाकी झुंड भी आस-पास ही कहीं चर रहा होगा, हमने अनुमान किया।

बेरियों के झुरमुट में खड़े हुए ये मध्यम कद के हाथी—पता नहीं क्यों—बिलकुल डरावने नहीं लगे। जंगल में चरती हुई भैंसें जैसी प्रतीत होती हैं, वैसे ही ये भी लगे। खतरनाक और बेखतरनाक पशु का कुछ-कुछ आभास देखने से भी हो जाता है। हालांकि कई बार यह आभास गलत भी सिद्ध होता है। इससे पहले हम कई बार शैतान हाथियों के सामने भी पड़ चुके थे, उन्हें देखते ही हमें लगा था कि यह मँजी मारेगा; और सोचने का अवसर दिये बिना ही वे हम पर झपट पड़े थे। परन्तु ये हाथी देखने में वैसे प्रतीत नहीं हुए। लगा कि हमारी जरा सी आहट

मिलते ही ये दम छोड़कर भाग खड़े होंगे ।

कुछ देर तक हम चुपचाप उन्हें देखते रहे । हवा उनकी ओर से हमारी ओर को आ रही थी, अतः वे हमारी उपस्थिति गन्ध द्वारा भी नहीं जान सके । उसके बाद हम योजना बनाकर एकाएक उनकी ओर लपके । मजा आ गया । हाथियों ने स्पष्ट कर दिया कि विशाल शरीर जान बचाकर भागने में कुछ भी बाधक नहीं है । हमारी आवाज सुनते ही हाथी चिंघाड़ते हुए––कहना चाहिए कि चीखते हुए––मुंह मोड़कर इस तेजी से भाग खड़े

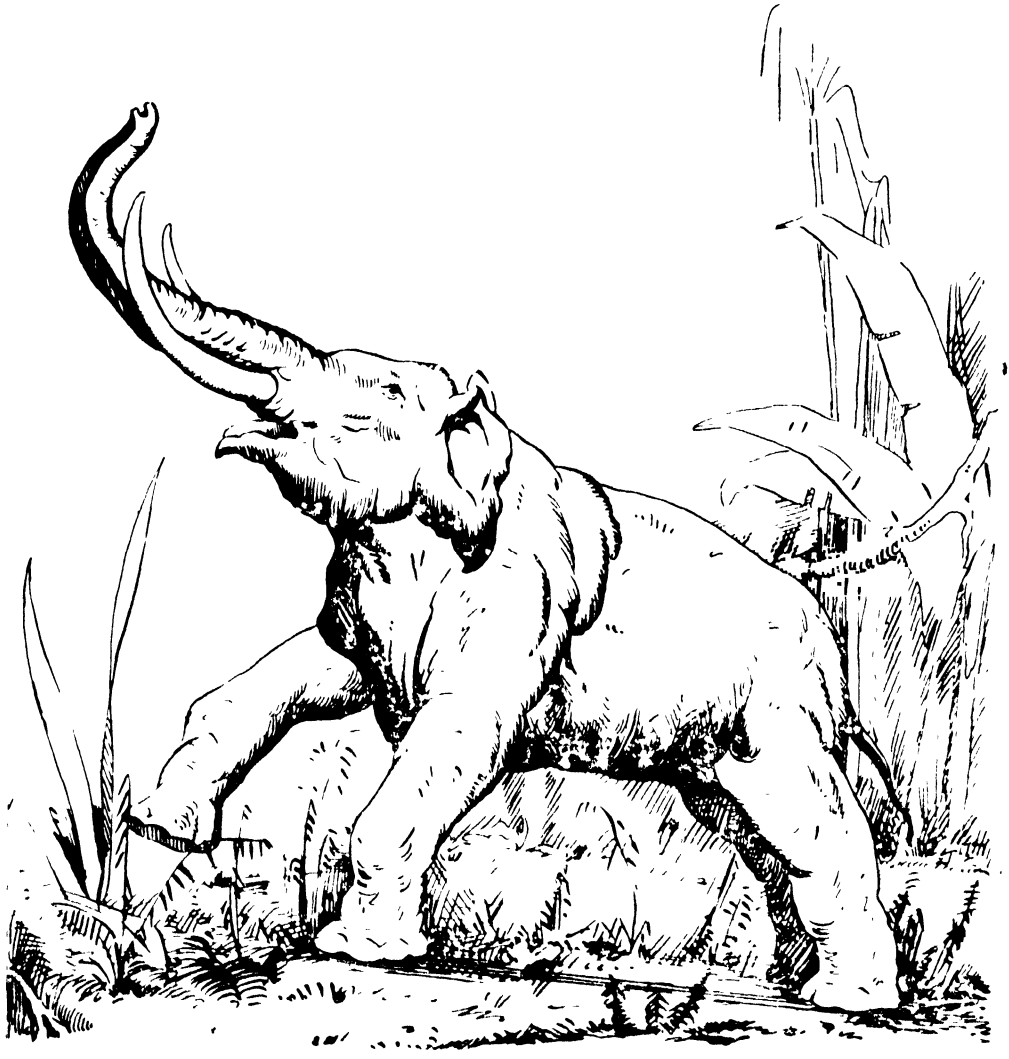

हाथी चिंघाड़ता हुआ भागा

हुए कि उन्हें हमारी आंखों से ओझल होने में आधा मिनट भी नहीं लगा । उनके भागने से उड़ी हुई धूल बड़ी दूर तक और देर तक दिखाई देती रही । हम भी कुछ दूर तक उनके पीछे दौड़ते रहे, पर इस तरह भागे हुए किसी भी पशु को जंगल में फिर ढूंढ पाना सरल नहीं है । फिर भी दो-तीन फर्लांग तक आगे बढ़कर हमने उन्हें देखने की कोशिश की । परन्तु हमारे इस

प्रयास से हमें केवल इतना पता चल सका कि उन चिंघाड़कर भागते हुए हाथियों की आवाज सुनकर इधर-उधर चरते हुए अन्य हाथी भी भाग खड़े हुए थे और लगभग दो फर्लांग आगे जाकर सब परस्पर मिल गये थे, क्योंकि इसके आगे बहुत से हाथियों के पदचिह्न जमीन पर साफ दिखाई पड़ रहे थे।

हाथी हम देख चुके थे; एक तरह से यात्रा का उद्देश्य पूर्ण हो चुका था। अब दोपहर हो चुका था। भोजन का आयोजन भी करना ही होगा। अतः हम किसी पानी वाले उपयुक्त स्थान की तलाश में चल पड़े।

१८

अदृश्य शक्तियां

हाथियों का पीछा करते-करते हम कहां आ पहुंचे हैं, इसका मामूली सा आभास भी हम में से पं० हरिवंश के सिवाय और किसी को नहीं था। सब ओर पेड़ थे, सब ओर पहाड़ियां थीं, अनगिनत नाले थे। हमारे लिए सब पेड़, पहाड़ियां और नाले एक जैसे थे। पर जैसे गड़रिया अपने रेवड़ की सब भेड़ों को पहचानता है, भले ही अपरिचित व्यक्ति को वे सब एक जैसी ही दिखाई पड़ें, वैसे ही पं० हरिवंश भी इन पहाड़ियों और नालों को पहिचानते थे। 'पेड़ों के ऊपर भरोसा नहीं किया जा सकता', उनका विचार था 'क्योंकि पेड़ प्रायः बिना किसी पूर्व सूचना के काट दिये जाते हैं, या वर्षा से गिर जाते हैं। पहाड़ियों का रूप-रंग आसानी से नहीं बदलता।'

पं० हरिवंश के अनुमान से पानी का अच्छा स्थान यहां से कोई दो मील दूर था। यह नहीं कि इससे निकट कहीं पानी था ही नहीं; था, परन्तु पं० हरिवंश की कसौटी पर वह पानी और वह स्थान 'अच्छा' नहीं उतरता था। आस-पास ही कहीं दोपहरी के लिए डेरा डाल दिया जाता, तो अच्छा था; यह इच्छा मन म होते हुए भी हम पं० हरिवंश के पीछे-पीछे उस अच्छे स्थान की खोज में चल पड़े। सुबह से हम काफी चल चुके थे और अब भूख कुछ-कुछ चमकने लगी थी।

"जब हाथी मांसाहारी नहीं है, तो वह आदमी पर आक्रमण क्यों करता है?" कृष्ण ने चलते-चलते पूछा।

"क्यों, आज तुझ पर किसी हाथी ने आक्रमण किया क्या?" सुभाष ने छेड़ा।

"आज न किया सही, पर आक्रमण करता तो है ही न।"

इसका सही उत्तर क्या है, मैं ठीक-ठीक नहीं जानता। सामान्यतः वन क पशु अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही हिंसा पर उतरते हैं। चीते के विषय में कहा जाता है कि वह बहुत बार केवल विनोद के लिए भी प्राणियों को मार डालता है, चाहे उसने उन्हें खाना न भी हो। परन्तु चीता मांसभोजी है, अतः मांस प्राप्त करने के लिए पशुओं अथवा मनुष्यों पर उसका आक्रमण किसी सीमा तक संगत प्रतीत होता है।

पर यह हाथी ? इसने तो केवल बांस तथा अन्य पत्ते खाकर ही पेट भरना होता है, इसे मनुष्य को मार डालने की प्रेरणा कहां से मिलती है। परन्तु अवसर मिले, तो यह मनुष्य को मार अवश्य डालता है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूं।

मैंने कहा : "हरिद्वार और देहरादून के बीच में रेल लाइन बड़े घने जंगल में से गुजरती है। इस लाइन पर कांसरो स्टेशन से कोई डेढ़ मील दूर एक चौकी है। यहां एक कच्चा रास्ता रेल-लाइन को पार करता है, जिस पर चिरान के मौसम में बैलगाड़ियां लकड़ी ढोती है। अतः इस बियाबान जंगल में भी इस चौकी पर किसी चौकीदार का रहना आवश्यक है। पहले वहां एक चौकीदार रहता था, परन्तु अब दो चौकीदार रहते हैं। सात-आठ वर्ष पहले की बात है। गर्मियों के दिन थे। चौकी की तंग कोठरी की गर्मी में रात में सो पाना बहुत कठिन था, अतः चौकीदार कोठरी के बाहर अपनी चारपाई बिछाकर सो रहा। शायद वह गर्मियों में सदैव ही इस प्रकार कोठरी से बाहर सोता रहा हो। वन के पशु नरभक्षक होने से पूर्व प्रायः मनुष्य को अकारण नहीं छेड़ते। परन्तु उस रात न जाने कहां से एक हाथी भटकता हुआ आ पहुंचा। चारपाई पर सोये हुए उस चौकीदार को देखकर उसके मन में क्या भाव उठे, सो ठीक नहीं कहा जा सकता। संभवत हाथी बिगड़ैल था। बिना जरा-सी भी आहट किये वह चारपाई के पास पहुंचा और चौकीदार को सूंड से पकड़कर पैर से कुचलकर उसका कचूमर निकाल दिया।

"आप आसानी से कल्पना कर सकते हैं कि रात के अंधेरे में पहले हाथी ने कुछ दूर से आदमी की गंध पाई होगी। फिर पास आकर एक-दो सैकण्ड उसे देखता रहा होगा। और जब हाथी की सूंड के कठोर स्पर्श से चौकीदार की नींद खुली होगी, तब उसने कितनी भयंकर स्थिति अनुभव की होगी ? इससे बड़ा डरावना भूत और क्या दिखाई पड़ सकता है ? उसके बाद मरने की तैयारी के लिए उसे आधा मिनट भी नहीं मिला होगा।

"अगले दिन प्रातःकाल जब पहली गाड़ी हरिद्वार से देहरादून की ओर आ रही थी, तो चौकी पर लगा हुआ सिगनल नीचे नहीं हुआ, जिसे नीचे और ऊपर करना चौकीदार का काम था। कुछ देर तक इंजिन खड़ा होकर सीटियां बजाता रहा। पर जब काफी देर की प्रतीक्षा के बाद भी सिगनल नीचे न हुआ, तो इंजिन का ड्राइवर तथा गार्ड उतरकर चौकी के पास गये। वहां जमीन पर चौकीदार की लाश बुरी तरह कुचली हुई और खून में लथ-पथ पड़ी थी। पास ही लकड़ी और बांसों का एक ढेर था, जिसे देखकर अनुमान लगाया जा सकता था कि किसी समय वह चारपाई रही होगी।"

पं० हरिवंश बोले--"हाथी सामान्यतः झुंड में रहते हैं। पर कभी कोई हाथी झुण्ड से निकाल दिया जाता है, तो वह बिगड़ैल हो जाता है और वही इस तरह के उपद्रव करता है। झुण्ड में रहने वाले हाथी प्रायः उसी तरह के होते हैं, जैसे आपने आज देखे। वे आदमी पर या अन्य दूसरे प्राणियों पर भी बिना बात आक्रमण नहीं करते। कभी आवश्यकता भी पड़ती है, तो वे केवल धमकी से काम चला लेना पसन्द करते हैं और आक्रमण को हिंसा की पूर्णता तक नहीं ले जाते।"

"और हाथियों के झुण्ड में भी केवल झुंड का सरदार (यूथपति) ही अधिक उग्र होता है। अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए वही सबसे पहले आक्रमण करता है।" मैंने कहा।

"हाथी और शेर भी आपस में लड़ते हैं क्या, भाई जी?" कृष्ण ने पं० हरिवंश से पूछा।

पं० हरिवंश कहने लगे: "यह कल्पना बड़ी मनोरंजक है कि शेर और हाथी आपस में लड़ते होंगे और किस तरह लड़ते होंगे। वैसे जब शेरों और हाथियों को एक ही वन में रहना होता है, तो उनमें परस्पर लड़ने का प्रसंग कभी न कभी आ जाना असम्भव नहीं है। परन्तु ऐसा मौका बहुत कम आता है, जबकि हाथी और शेर को आपस में लड़ने की जरूरत पड़ती हो। हाथी का मांस इतना कोमल और स्वादिष्ट नहीं होता कि शेर उसे मांस के लिए मारना पसन्द करे। हाथी की खाल मोटी होती है और सूंड बड़ी शक्तिशाली। मारने का प्रयत्न करने में मरने का संकट सदैव बना रहता है। दूसरी ओर हाथी अपनी सहजवृत्ति से यह जानता है कि शेर की फुर्ती और शक्ति बहुत अधिक है; उसके दांत और नाखून भयंकर हैं; वह मार नहीं भी पायेगा, पर घायल तो अवश्य बुरी तरह कर देगा। इस तरह दोनों एक दूसरे की शक्ति को जानते हुए एक दूसरे से भिड़ने में कतराते हैं।"

"हरिवंश जी दोनों से मिलकर आपसी भिड़न्त के विषय में उनके विचार पूछ आये हैं।" मैंने हँसते हुए कहा।

आखिर हम पानी वाले स्थान के पास पहुंच गये। एक चार फीट चौड़ी धारा में तीन-चार इंच गहरा पानी बह रहा था। वह दोपहर की धूप से गरम हो गया था। अच्छा छायादार स्थान देखकर हमने डेरा डाल दिया। डाक्टर अनन्तानन्द ने पूछा: "आखिर इस पानी में क्या अच्छाई है, हरिवंश जी?"

"यह बहुत ठंडा और मीठा है।"

स्पष्ट ही पानी छूने में गर्म मालूम हो रहा था। व्यंग करते हुए मैंने कहा: "मिठास तो इसमें इतनी है कि गन्ने के रस की तरह इससे गुड़ भी तैयार किया जा सकता है।"

सब लोग हँस पड़े, परन्तु पं० हरिवंश अप्रतिभ नहीं हुए; बोले : "जरा सा ठहर जाइये; फिर आप स्वयं देख लेंगे कि पानी ठंडा और मीठा है या नहीं।" और उसके बाद वे पानी की धार से कुछ दूर हटकर सीली बालू में गड्ढा खोदने लगे । जब गड्ढा लगभग एक फीट गहरा हुआ, तो उसमें नीचे से पानी आना प्रारम्भ हो गया। शुरू-शुरू का गदला पानी उन्होंने और सुभाष ने--जो गड्ढा खोदने में उनके साथ जा जुटा था--उलीचकर बाहर फेंक दिया। उसके बाद रिस-रिसकर जो पानी गड्ढे में आया, वह सचमुच ही बहुत ठंडा था। उससे गुड़ तैयार हो सकता था या नहीं, यह परीक्षण करने का मौका हम में से किसी को नहीं मिला; परन्तु पानी सचमुच स्वादिष्ट था। इतनी दूर चलकर आना निष्फल नहीं रहा ।

भोजन बनाते-खाते दो बज गये। कुछ थकान अनुभव हो रही थी। भरपेट भोजन करने के बाद सभी अपनी-अपनी पसन्द का स्थान ढूंढ कर लेट गये। पृथ्वीराज सेठी किसी भी तरह यत्न करके ताश खेलने के लिए चार साथी न बिठा सके । इस समय पेड़ों की छाया में पड़े रहना ही परम आनन्दप्रद प्रतीत हो रहा था। श्रम करके थकान आई हुई हो, रुचिकर भोजन से पेट भरा हुआ हो, उस समय विश्राम केवल दुख का अभाव नहीं, बल्कि भावात्मक अनुभव होने वाला सुख है। सही बात तो यह है कि तीव्र सुख का अनुभव करने के लिए पहले तीव्र दुख को अपने पास घसीट कर लाना पड़ता है। इसीलिए प्रबल तृष्णा में जल का, असह्य भूख में भोजन का और घोर संकट के उपरान्त मुक्ति का आनन्द अनुभव होता है। वस्तुतः आनन्द जल में नहीं, तृष्णा में है; अन्न में नहीं, भूख में है; मुक्ति में नहीं, संकट में है ।

इस विश्राम के सुख की तीव्रता जब जरा कम हुई, तो सुभाष बोला : 'क्यों भाई जी, क्या आप अदृश्य शक्तियों पर विश्वास करते हैं?"

प्रश्न पं० हरिवंश से किया गया था, पर मैंने बीच में स्पष्टीकरण मांगा : "अदृश्य शक्तियों से तुम्हारा मतलब क्या है ? ईश्वर, भूत, प्रेत, या रोगों के जीवाणु इत्यादि ?"

"मेरा मतलब भूत, प्रेत, सिद्धियां, फलित ज्योतिष तथा अन्य चमत्कारपूर्ण समझी जाने वाली शक्तियों से है। साधारणतया इन शक्तियों में विश्वास करने वाले अन्धविश्वासी और दुर्बल चित्त के लोग समझे जाते हैं। पर मैंने कुछ उच्च शिक्षितों को भी इस प्रकार की विचित्र शक्तियों में विश्वास करते देखा है। मैं जानना चाहता हूं कि ये विचित्र अदृश्य शक्तियां केवल भ्रान्तियां हीं हैं अथवा इनमें कुछ सचाई भी है ?"

अब प्रश्न स्पष्ट और दुविधाशून्य था। पर क्या इसका उत्तर

इतनी ही स्पष्टता तथा असंदिग्धतापूर्वक दिया जा सकता है ? भूत-प्रेत, ईश्वर, ज्योतिष तथा अन्य अद्भुत चमत्कारों ने न जाने कब जन्म लिया था। सैकड़ों हजारों पीढ़ियों से मानव-मस्तिष्क पर उन्होंने राज्य जमाया हुआ है । एक समय समस्त संसार के विद्वान एकमत से इन बातों पर विश्वास करते थे । कौन कह सकता है कि उस समय भूत-प्रेत तथा अन्य चमत्कार होते थे या नहीं ! आज की वैज्ञानिक बुद्धि इन बातों में विश्वास नहीं करती । परन्तु चाहे सच हों या झूठ, ये कल्पनाएं हमारी मज्जा के अन्दर तक समाई हुई हैं । आज भी बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को समय-समय पर इन चमत्कारों के सम्मुख सिर झुकाते देखा जा सकता है ।

पं० हरिवंश बोले : "तुम्हारा प्रश्न बिलकुल अधूरा और अस्पष्ट है। अदृश्य शक्ति तो एक नहीं है। सब अदृश्य शक्तियों को एक ही सांस में स्वीकार करना होगा अथवा अस्वीकार, यह तो कुछ ठीक नहीं जंचता। तुम किस विशिष्ट अदृश्य शक्ति की बात करना चाहते हो ?"

सुभाष शायद अप्रतिभ हो जाता; मैंने कहा : "यदि एक अदृश्य शक्ति का अस्तित्व हो सकता है, तो दूसरी का भी हो सकता है। यह भी सम्भव है कि कुछ अदृश्य शक्तियां हमारे अनुभव में आ गई हों और बाकी से हमारा वास्ता पड़ने का अवसर न आया हो। प्रश्न सिद्धान्त को स्वीकार या अस्वीकार करने का है। यदि एक अदृश्य शक्ति के अस्तित्व स्वीकार कर लें, तो भूत-प्रेत, मंत्र-तंत्र पर भी विश्वास करना पड़ेगा ?"

"विश्वास तो हृदय से होता है, तर्क और दिमागी कूद-फांद से नहीं होता। परन्तु यदि निराकार अदृश्य ईश्वर का अस्तित्व सम्भव मान लिया जाय, तो भूत-प्रेत को असम्भव कहना पागलपन होगा।"

पं० हरिवंश मुझे लक्ष्य करके कहने लगे : "आपकी युक्ति में कितनी सचाई है, यह मैं इस समय ठीक तरह नहीं कह सकता। परन्तु यह मैं मानता हूं कि इस संसार में ऐसा बहुत कुछ है जो हमें स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता, परन्तु वह हम सबके जीवनों को निरन्तर प्रभावित करता है। हमारी सामान्य गणित और हमारे सामान्य तर्क उस सबका पूरा समाधान कर पाने में असमर्थ रहे हैं।"

"आपकी यह बात पूर्णतया सत्य है। यदि रहस्य और चमत्कार के पहलू को छोड़ भी दिया जाय, तो भी यह तो अब सर्वविदित ही है कि चेचक, हैजा, प्लेग, मलेरिया आदि रोगों के जीवाणु हमें आंखों से दिखाई नहीं पड़ते, परन्तु सूक्ष्मवीक्षण से दिखाई पड़ने लगते हैं। ये अदृश्य जीवाणु कितना उत्पात करते हैं, यह किसी से भी छिपा नहीं है। पुराने लोग कहते थे कि 'शीतला माई का प्रकोप होता है' आजकल कहा जाता है कि 'चेचक के कीटाणुओं का आक्रमण हुआ है।' केवल नाम ही तो बदल दिया गया।

दृश्य रोग के पीछे अदृश्य शक्ति थी अवश्य। लगता यह है कि कुछ समय बाद हमें नाम बदलकर ईश्वर, भूत-प्रेत, ज्योतिष, शकुन, अपशकुन इत्यादि सब कुछ फिर मान लेना पड़ेगा।" मैंने कहा।

ऋषि दयानन्द का 'सत्यार्थ प्रकाश' हमने उपन्यास की तरह फुरसत के समय में नहीं पढ़ डाला, थोड़ा-थोड़ा करके पाठ्यक्रम में कई वर्षों में पढ़ा है। और अभी अनेक अन्धविश्वास से शून्य उपदेशकों के बड़े-बड़े व्याख्यान सुनकर चित्त में तर्क का प्रकाश 'पैट्रोमैक्स' के उजाले की भांति भर उठा है। उसके बाद मेरे मुंह से ऐसी बातें ठीक ऐसी मालूम होती हैं जैसे कोई जन्म भर का सनातनी एकाएक नास्तिक बन जाय।

इस अदृश्य शक्तियों की चर्चा ने वक्ताओं और श्रोताओं में कुछ उत्साह और ताजगी ला दी थी। यद्यपि सब बैठे ही रहे, परन्तु विश्राम के आलस्य का भाव अब नहीं रहा, सब पूर्णतः सजग होकर इस चर्चा का रस लेने लगे।

१६

मन्त्र, अपशकुन और स्वप्न

पं० हरिवंश कहने लगे : "देखिये विराज जी, मैं तो यह समझता हूं कि आदमी को जान-बूझकर अपनी आंखें नहीं मींचनी चाहियें। यदि कोई दुर्बोध विचित्र बात सम्मुख उपस्थित हो, तो पहले उसे यथाशक्ति समझने की चेष्टा करनी चाहिए। यदि उसके बाद भी वह समझ में न आये, तो भद्रतापूर्वक मान लेना चाहिए कि अमुक बात दुर्बोध और विचित्र है। बात समझ में न आने पर भी 'यों ही है' 'कुछ नहीं है' कहकर उसे दबा देना और उस पर विचार न करना हठधर्मी है।

"ऐसी कम से कम एक सुनिश्चित बात मेरे देखने में आई है। उसका रहस्य मैं अभी तक नहीं जान सका। सतीश को तो आप सब जानते ही हैं, वही हैदराबाद वाला।"

सतीश को हम सब अच्छी तरह जानते थे। वह बहुत ही हंसमुख, उत्साही और व्यायामप्रिय लड़का था। उसका कद यद्यपि छोटा था, परन्तु शरीर सुगठित और सुन्दर था। कुछ वर्ष पहले वह हैदराबाद चला गया था। तीन-चार वर्ष वहां रहने के बाद वह एक दिन वापस लौटा। उसकी सूरत ऐसी बदल गई थी कि देखकर पहिचाना नहीं जाता था। सारे शरीर में मांस का कहीं नाम तक शेष नहीं था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे हड्डियों के ढांचे के ऊपर किसी कुशल कारीगर ने केवल खाल मढ़ दी है। उसने बताया कि संग्रहणी ने उसकी यह दशा कर दी थी; पर अब मामला सुधार की ओर है। उसका स्वास्थ्य सुधरने में और भी दो-तीन महीने लगे और अन्त में वह पूर्णतया स्वस्थ हो गया।

यह सतीश अपने एक पैर में काला धागा बांधे हुए था। एक बार इस धागे की चर्चा चल पड़ी। मैंने यों ही पूछ लिया : "क्यों सतीश, यह पैर में काला धागा कैसा बंधा हुआ है?"

सतीश ने पहले तो मामूली-सी आनाकानी की; शायद वह अपने को अन्धविश्वासी समझा जाना पसन्द नहीं करता था। परन्तु थोड़े से आग्रह के बाद उसने उस धागे का जो रहस्य बताया वह बहुत ही विस्मयजनक था। उसने बताया कि संग्रहणी के रोग ने उसकी बहुत बुरी दशा कर दी थी।

किसी भी प्रकार की औषधि से कोई लाभ नहीं होता था। अन्त में एक दिन दुर्बलता के कारण मैं अचेत हो गया। बाद में जब मुझे होश आया, तो उस समय मैंने देखा कि यह काला धागा मेरे पैर में इसी तरह बंधा हुआ था। उस दिन मुझ से किसी ने कुछ विशेष बात नहीं की। पर उसके बाद मेरी दशा दिनोंदिन सुधरती गई। कुछ दिन बाद मेरे भाई ने मुझे बताया कि बेहोश होने के बाद मेरी नाड़ी बन्द हो गई थी और मुझे मृत समझकर चारपाई से नीचे उतार लिया गया था। उस समय एक ओझा को बुलाया गया। ओझा ने देख-भालकर आशा बंधाई और मंत्र पढ़कर यह काला धागा मेरे पैर में बांध दिया। कोई पांच मिनट बाद ही मेरी नाड़ी चलनी प्रारम्भ हो गई और अगले दिन सबेरे मुझे होश आया। जो संग्रहणी किसी तरह काबू नहीं आई थी, वह इस धागे के बंधने के पश्चात् स्वतः कम होती चली जा रही है।

सतीश स्वयं और उसका सारा परिवार कट्टर आर्यसमाजी है। परन्तु अपने पैर में बंधे उस धागे के विषय में वह उतना ही अन्धविश्वासी था, जितना कि कोई अशिक्षित ग्रामीण भूत-प्रेत के विषय में हो सकता है। उस मंत्र से सिद्ध काले धागे ने उसे मृत्यु के मुख में से खींचकर निकाल लिया था। इससे बढ़कर विश्वास जमाने वाली बात सतीश के लिए और दूसरी हो नहीं सकती। और मैं यह मानने को तैयार नहीं कि सतीश ने इस विषय में हम से झूठ बोला होगा। वैसे तो उसका झूठ बोलने का स्वभाव ही नहीं है, दूसरे इस तरह का झूठ बोलने से किसी प्रकार का लाभ भी नहीं था।

सतीश का पहले का, स्वस्थ शरीर, फिर अस्थिकंकाल मात्र रोग-ग्रस्त देह और फिर बाद में स्वस्थ हुआ शरीर हम में से अनेक ने देखा था, परन्तु इस काले धागे का रहस्य हमें मालूम नहीं था। सुनकर सभी विस्मित हो रहे।

मैंने कहा : "शकुन-अपशकुनों में मैंने कभी विश्वास नहीं किया। आज भी मैं यह नहीं मानता कि शकुन-अपशकुन का विज्ञान विकसित रूप में किसी को मालूम हो। परन्तु यह मैं निश्चित रूप से समझता हूं कि आने वाली शुभ और अशुभ घटनाएं पहले से अपने आगमन की सूचना दे सकती हैं और अनेक बार देती भी हैं।

"मेरे एक मित्र हैं--खूब सुशिक्षित और सुसंस्कृत। उन्होंने मुझे अपना एक विचित्र अनुभव सुनाया। उनकी आयु तीस के लगभग हो चुकी थी और उनकी सगाई की चर्चा चल रही थी। एकाएक एक ही दिन ऐसा संयोग उपस्थित हुआ कि दो-तीन कन्याओं के अभिभावक सम्बन्ध पक्का करने को आ जुटे। अन्ततः एक कन्या से सम्बन्ध होना निश्चित हो गया

और उसी दिन सगाई की सब विधियां पूरी कर दी गईं । इन विधियों के पूरा होते-होते दिन छिप गया । मकान के आंगन में एक नीम का पेड़ था। रात होते ही एक निशाचर उल्लू की जाति का पक्षी आकर उस पेड़ पर बैठकर रह-रहकर कर्कश स्वर में बोलने लगा । इस पक्षी का स्वर बहुत ही अप्रिय और कर्णकटु था। कई बार पत्थर फेंककर उसे उड़ाया भी गया, पर वह कहां मानने वाला ! उड़ाये जाने के बाद फिर तुरन्त आकर वह पेड़ पर बैठ जाता और अपनी मनहूस आवाज में बोलने लगता। यह आवाज सभी को अप्रिय लग रही थी और निरपवाद रूप से सब लोगों का ध्यान इस पक्षी की ओर गया था। कन्या के मामा सगाई की विधि के लिए आये थे । जब रात के भोजन के लिए वे लोग आये, तो इस पक्षी की आवाज सुनकर वे बोले--'हमारे यहां इस पक्षी का बोलना अशुभ समझा जाता है।' उनके इस मन्तव्य-प्रदर्शन के बाद भी वह पक्षी बोलता ही रहा। मामा महोदय ने यह भी बताया कि किस तरह इसी जाति का एक पक्षी एक बार उनके घर में आकर बोलने लगा था। 'मैंने तो उसे अगले ही दिन अपनी बन्दूक से मार डाला था' उन्होंने कहा। पर इस अवसर पर बन्दूक उपस्थित नहीं थी; वैसे भी इस प्रकार के मंगल समारोह के समय पक्षी की हत्या करना बुरा समझा जाता । मित्र महोदय स्वयं और उनका परिवार इन अपशकुनों में रत्ती भर भी विश्वास नहीं रखता था । फिर भी आवाज सबको बुरी लग रही थी और पक्षी लगभग सारी रात ही बोलता रहा ।

"उस समय किसी ने ध्यान नहीं दिया, पर इस पक्षी के बोलने का प्रभाव लगभग उसी समय से स्पष्ट होने लगा था। रात काफी हो चुकी थी। कुछ बात ही बात में ऐसी कहा-सुनी हो गई कि इस मंगल समारोह के नायक हमारे मित्र महोदय को--जो दूल्हा बनने वाले थे--बिना भोजन किये ही क्रुद्ध होकर सो जाना पड़ा । फिर भी किसी ने यह सोचने की कोशिश नहीं की कि यह बात अपशकुन से किसी तरह सम्बद्ध है।

"बात आई-गई हो गई। सगाई के दिन के एक मास बाद ही विवाह की तिथि निर्धारित की गई । धीरे-धीरे दिन बीतने लगे और विवाह की यह निर्धारित तिथि निकट आने लगी। हिन्दू परिवारों में विवाह से पहले कई प्रकार के अनुष्ठान होते हैं। इन अनुष्ठानों के लिए कन्यापक्ष वालों का वर-पक्ष के यहां आना-जाना लगा रहता है । विवाह की तिथि एकदम सिर पर आ पहुंची। पर कन्या पक्ष के लोग आवश्यक अनुष्ठानों के लिए आये नहीं । लम्बी और अधीर बना देने वाली प्रतीक्षा के पश्चात् एक दिन फिर वही मामा महोदय उपस्थित हुए--एकदम क्लान्त और परिश्रान्त, जैसे कई दिन से सो न सके हों। बिना किसी भूमिका के उन्होंने

बताया कि उनकी जिस भांजी के विवाह की बात तय हुई थी, उसका देहावसान हो गया है । एकाएक बुखार हुआ और तीन-चार दिन में ही यह दुर्घटना घट गई है ।

"इस समय तक भी उस कर्कश स्वर वाले पक्षी की बोली का सम्बन्ध इस दुर्घटना से नहीं जोड़ा गया । मामा महोदय के भांजियों की कमी नहीं थी । विवाह की सब तैयारियां पूरी हो चुकी थीं । सब आवश्यक व्यय किये ही जा चुके थे; यहां तक कि बरातियों के भोजन के लिए आटा तक पिसवाया जा चुका था । बरसात शुरू होने में देर नहीं थी । यदि यह आटा बरसात भर पड़ा रहा, तो इसमें कीड़े पड़ जायेंगे, इत्यादि अनेक असुविधाओं को ध्यान में रखते हुए पूर्वनिर्धारित तिथि पर ही मामा महोदय की एक और भांजी से हमारे मित्र महोदय का विवाह तय हो गया ।

"हठधर्मी का दंड सभी को भुगतना पड़ा । यदि समय रहते उस कर्कश स्वर के पक्षी की बोली को अपशकुन मानकर उस सम्बन्ध को छोड़ दिया जाता, तो भला रहता । परन्तु वहां तो अन्धविश्वासी एक भी नहीं था । जैसे-तैसे विवाह हो गया । परन्तु इतना असफल विवाह दूसरा हो नहीं सकता । अपनी पत्नी की सूरत तक देखे बिना हमारे मित्र महोदय को अपनी पत्नी का परित्याग कर देना पड़ा । घटना-चक्र कुछ इस विचित्र ढंग से चलता गया कि इसके सिवाय और कोई रास्ता ही न रहा । अब हमारे वह मित्र महोदय शकुन-अपशकुनों में पूरा विश्वास करने लगे हैं । उनका ख्याल है कि उस रात में वह पक्षी अकारण ही नहीं बोला था । 'उस बेचारे ने तो चेतावनी देने की बड़ी कोशिश की, पर हम ही जान-बूझ कर बहरे बन गये !' इसका क्या इलाज था ?"

डाक्टर अनन्तानन्द कहने लगे : "यह बिलकुल सम्भव है कि आने वाली घटनाएं विभिन्न प्रकार से अपना पूर्वाभास दे देती हों । स्वप्नों के विषय में ऐसा अनेक बार सुना गया है कि उनमें देखी गई बातें बाद में बिलकुल सच निकल गईं । जो घटनाएं बाद में घटीं, वे महीनों पहले ज्यों की त्यों स्वप्न में देख ली गई थीं । इंगलैण्ड के राजा चार्ल्स प्रथम को जिस प्रकार मृत्यु-दंड दिया गया, उसका सविस्तार विवरण एक किसान ने पहले ही अपने स्वप्न में देखकर लिख लिया था । यह लिखा विवरण उसने पार्लमेंट के एक सदस्य को भेजा था । उन महत्वपूर्ण घटनाओं के घटने से पूर्व इस लिखित विवरण को केवल विकृत मस्तिष्क की कल्पना समझा गया था, परन्तु बाद में इसे एक अद्भुत वस्तु माना गया । स्वप्न सच्चे निकलने के उदाहरण अनगिनत हैं । कुछ लोगों ने परीक्षा के पूरे के पूरे प्रश्न-पत्र स्वप्न में देखे और वस्तुतः परीक्षा भवन में पहुंचने पर उन्हें वही

प्रश्न-पत्र हल करने को मिले, जो उन्होंने स्वप्न में देखे थे। एक व्यक्ति का पुत्र एकाएक बीमार हुआ और बहुत जल्दी ही उसकी मृत्यु हो गई। लड़के का बाप उस समय लगभग आठ सौ मील दूर कहीं पर था। उसे तार द्वारा लड़के की मृत्यु की सूचना दी गई। पर मृत्यु के लगभग बारह घंटे बाद बाप स्वयं ही वहां आ पहुंचा। स्पष्ट ही वह इतनी जल्दी तार की खबर पाकर नहीं आ सकता था। उसने बताया कि उसने स्वप्न में अपने पुत्र को रोते देखा था। उसे स्वप्न इतना सच प्रतीत हुआ कि वह तुरन्त घर के लिए रवाना हो गया। जब वह घर पहुंचा, तो पुत्र की अन्त्येष्टि हो चुकी थी।"

मैंने कहा : "स्वप्न सच निकलने के दो विचित्र उदाहरण मुझे एक वृद्ध महानुभाव ने बम्बई के रेसकोर्स में सुनाये थे। एक अंग्रेजी कम्पनी के मैनेजर को एक रात सपना आया कि अगले दिन चौथी रेस में आठ नम्बर का घोड़ा जीतेगा। उस अंग्रेज को रेस का कोई शौक नहीं था। अगले दिन जब उसे अपने रात के स्वप्न की याद आई, तो उसने पता किया कि आज रेस है भी या नहीं। उस दिन रेस थी। रेस का शौकीन न होते हुए भी उस दिन वह अंग्रेज एक हजार रुपये लेकर रेसकोर्स पहुंच गया। उसे और किसी रेस में दिलचस्पी नहीं थी; वह तो केवल चौथी रेस की प्रतीक्षा कर रहा था। चौथी रेस का भी समय हुआ। घोड़ों पर टिकट बिकने शुरू हुए। उसने आठ नम्बर के घोड़े पर एक हजार रुपया लगा दिया। पर ऐसा मालूम हुआ कि जैसे आठ नम्बर को केवल उसी ने बढ़िया घोड़ा समझा था। लोग उस घोड़े का टिकट बहुत कम खरीद रहे थे। जब रेस प्रारम्भ हुई, तो उसका घोड़ा साठ के भाव में था--अर्थात यदि उसका घोड़ा जीत जाता, तो उसके प्रत्येक रुपये के बदले साठ रुपये मिल जाते। और कोई भी घोड़ा इतने ऊंचे भाव पर नही था। दो, तीन, पांच, बीस, तीस, तक के भाव पर दूसरे घोड़े दौड़ रहे थे। साठ के भाव वाले घोड़े के जीतने की क्या आशा की जा सकती थी ?

"आखिर रेस प्रारम्भ हुई। उसने देखा कि उसका घोड़ा सबसे पीछे दौड़ता आ रहा था। उसका दिल कच्चा होने लगा--उसके हजार रुपये एक स्वप्न के पीछे बरबाद हुए जा रहे थे। पर ज्योंही घोड़े मोड़ के पास पहुंचे, तो उनका क्रम एकाएक उलट-पुलट हो गया। जो घोड़े आगे थे, वे पिछड़ने लगे और उसका घोड़ा जो सबसे पीछे था, एकाएक लम्बी-लम्बी कुलाचें भरता हुआ तेजी से आगे बढ़ने लगा। सब दर्शक अपने-अपने घोड़ों के नाम और नम्बरों का शोर मचाकर जमीन-आसमान एक किये दे रहे थे। कई घुड़सवारों ने अपने-अपने घोड़ों को चाबुक लगाने शुरू किये। जिस घोड़े को चाबुक लग जाता था, वही चाल तेज करके दौड़ने लगता था। एकाएक आठ नम्बर के घुड़सवार ने घोड़े को चाबुक मारा और खुद झककर घोड़े

की गर्दन से सट गया । फिर क्या था, देखते-देखते आठ नम्बर अन्य घोड़ों से आगे निकल गया--इतना आगे कि उसकी जीत में किसी को शक नहीं रहा । उस अंग्रेज को एक हजार रुपये के बदले बासठ हजार रुपये मिले ।

"इसी तरह एक और आदमी को, जो रेस मे रुपया गंवाते-गंवाते कर्जदार हो गया था, एक रात सपना आया कि कोई उसे बतला रहा है कि इस बार रेस में उस घोड़े पर अपना रुपया लगा दो, जिस पर एक भी टिकट न हो। अगली बार रेस में जाकर उसने देखना शुरू किया कि किस घोड़े पर एक भी टिकट नहीं है । पर ऐसा कोई घोड़ा ही नहीं बचता था, जिस पर एक भी टिकट न हो। आखिर जब छठी रेस शुरू हुई, तो उसने देखा कि एक घोड़े पर सचमुच ही एक भी टिकट नहीं है । उसने दस-दस रुपये के चार टिकट उस घोड़े पर खरीद लिये । और उस सारी रेस में उस घोड़े पर केवल वही चार टिकट थे। रेसकोर्स में जो अद्भुत बात न हो जाय, वही थोड़ी है। उसका वही घोड़ा जीत गया । प्रत्येक दस रुपये के बदले घोड़े ने सत्रह हजार रुपये दिये । अड़सठ हजार रुपये लेकर वह व्यक्ति घर लौटा और फिर कभी रेसकोर्स में पैसा लगाने नहीं गया ।"

२०

शाप, सम्मोहन और ज्योतिष

अदृश्य रहस्यपूर्ण शक्तियों के प्रकरण ने एक विचित्र वातावरण उपस्थित कर दिया था। झूठमूठ की गप्पें लगाने का अवसर यहां नहीं था। केवल अत्यन्त विश्वस्त रूप से मालूम हुई घटना ही इस विचार-विनिमय में उपस्थित की जा सकती थी।

डा० अनन्तानन्द कहने लगे : "कनखल में एक बनिये का किस्सा लगभग सारे शहर को ही मालूम है। सुनकर सहसा विश्वास नहीं होता, पर जब अनेक उत्तरदायी लोगों ने वह कहानी मुझे बिलकुल एक ही रूप में सुनाई, तो मैं सोचने को बाधित हो गया।

कनखल का यह बनिया खूब हट्टा-कट्टा और पैसे वाला प्रौढ़ आयु का था। बचपन में उसने काफी पहलवानी की थी। एक दिन एक साधु उसकी दूकान पर भिक्षा मांगने आया। बनिये ने उसे कुछ अपशब्द कह दिये; साधु भी गरम हो गया। 'तू तू मैं मैं' के बाद हाथापाई हुई। साधु के पास एक छड़ी थी। वह उसने बनिये के मारी, जिससे बनिये की छाती पर कुछ खरोंच-सी आ गई। बनिये ने भी साधु की अच्छी मरम्मत की। थोड़ी ही देर बाद लोगों ने बीच-बचाव करके दोनों को अलग कर दिया। दो-तीन दिन बाद बनिये ने अपनी छाती में कुछ दर्द सा अनुभव किया और देखा कि झगड़े में छड़ी से जो खरोंच उसकी छाती में लग गई थी, वह सूजने लगी है। घाव पकने में दर्द तो होता ही है; फिर भी उसने कोई बड़ी चिन्ता नहीं की। अस्पताल में जाकर दवाई ले आया। परन्तु समय ने यह बताया कि वह चोट दवाइयों से ठीक होने वाली नहीं थी। सप्ताह, महीने और वर्ष बीतने लगे। सब प्रकार के महंगे से महंगे इलाज के बाद भी उसका वह घाव भरा नहीं। उसका हट्टा-कट्टा देह सूखकर कंकाल रह गया। घाव की बदबू के मारे परिचारकों का धैर्य छूट गया। उसके अपने घरवाले भी उससे घृणा करने लगे। इलाज पर धन पानी की तरह बहाया गया। जिस धन और शारीरिक बल के कारण उसने साधु का तिरस्कार किया था, वे अब बहुत पहले कभी देखे गये स्वप्न की वस्तु हो गये। चार वर्ष

बाद उस बनिये ने यह अनुभव किया कि उसका अब समाज में रह सकना असम्भव है। अतः 'गंगा-पार के जंगलों में जाकर मैं बिना अन्न जल के मर जाऊंगा' ऐसा निश्चय करके वह गंगा पार चला गया। यह बात वह लोगों को बताकर गया था; पर लोग उससे इतना ऊब चुके थे कि किसी ने भी उसे इस आत्मघात के प्रयत्न से रोका नहीं। सबने यही सोचा कि जीकर ही वह कौन सा बड़ा सुख पा रहा है? उसके चले जाने पर उसके परिवार के लोगों ने भी मुक्ति की सांस ली।

"इसके लगभग एक मास बाद एक दिन उसके सभी परिचितों को दंग रह जाना पड़ा, जब वह दाढ़ी तथा बाल बढ़ाये फिर वापस शहर में लौट आया। देखकर उसे पहचान पाना कठिन था; उसकी सूरत इतनी बदल गई थी। सबसे बड़े विस्मय की बात यह थी कि उसका वह विकृत घाव पूर्णतया ठीक हो गया था; केवल एक भद्दा डरावना-सा निशान बाकी रह गया था।

"अपने स्वस्थ होने तथा वापस आने का भी उसने अद्भुत विवरण सुनाया। जब वह जंगल में जाकर दो-तीन दिन भूखा-प्यासा पड़ा रहा और मृत्यु बिलकुल पास ही थी, तब उसको संयोगवश वही साधु रास्ते से गुजरता दिखाई पड़ा, जिससे कई वर्ष पहिले उसका झगड़ा हुआ था। उसने आवाज देकर साधु को बुलाया; अपनी बीमारी का सारा हाल सुनाया और विनयपूर्वक क्षमा-प्रार्थना की। सुनकर साधु द्रवित हो गया। उसे उठाकर वह अपनी धूनी पर ले गया और धूनी की थोड़ी सी राख उसके घाव पर छिड़क दी। 'उसके बाद कब कितने दिन बीते, मुझे पता नहीं। जब मैं होश में आया, तो मैंने अपने आपको स्वस्थ और गंगा के इस किनारे पाया।'

"घाव ठीक होने के बाद भी यह बनिया कई वर्ष तक जीवित रहा। पर तब उसका जीवन का दृष्टिकोण बिलकुल बदल चुका था। परिवार का स्नेह व्यक्ति के प्रति कितना उथला होता है, यह देख लेने के बाद वह राग-द्वेष से शून्य हो गया था।"

देवेन्द्र कहने लगा: "और सारी बात यदि सही मान भी ली जाय, तो यह अपने आप गंगा के इस पार आने की बात टेढ़ी मालूम पड़ती है। साधु ने अपनी विचित्र शक्ति से उसे गंगा के पार भेज दिया, इस पर सहसा विश्वास नहीं होता।"

मैंने कहा: "बात टेढ़ी जरूर मालूम होती है, पर असम्भव कुछ नहीं है। यदि यह मान लिया जाय कि यह घटना सचमुच हुई, तो इसका वैज्ञानिक समाधान ढूंढ निकालना मुश्किल नहीं है। हिप्नोटिज्म (सम्मोहन) द्वारा व्यक्ति को अचेत दशा में वहां तक लाया जा सकता है। इस प्रकार

सम्मोहित किये गये व्यक्ति को इस बात का कुछ भी ज्ञान न होगा कि वह कब और कैसे इतनी दूर आ पहुंचा। और हिप्नोटिज्म कुछ ऐसी असम्भव या दुर्लभ सिद्धि नहीं है कि विश्वास से परे की वस्तु हो। पर इस समाधान का मूल्य तभी है, जबकि विश्वस्त रूप से यह पता हो कि यह घटना सचमुच घटी है।"

सुभाष बोला : "और यह हिप्नोटिज्म भी तो जादू की भांति अदृश्य शक्ति है। यदि यह सत्य है, तो जादू, भूत-प्रेत सभी कुछ सत्य हो सकते हैं।"

"हिप्नोटिज्म की सत्यता में क्या सन्देह है?" डा० अनन्तानन्द बोले। "मैंने आपको बताया तो था कि क्लोरोफार्म के आविष्कार से पहले कलकत्ते में प्रतिवर्ष सैकड़ों आपरेशन रोगी को हिप्नोटिज्म द्वारा अचेत करके किये जाते थे। इन अचेत रोगियों को आपरेशन के समय होने वाली पीड़ा की अनुभूति उसी तरह नहीं होती थी, जैसे अब क्लोरोफार्म से अचेत किये हुए रोगियों को नहीं होती है।"

डाक्टर अनन्तानन्द इस बात का जिक्र पहले कर चुके थे। मैंने हिप्नोटिज्म के और भी विचित्र परिणामों के विषय में बहुत कुछ पढ़ा हुआ था। इसके द्वारा किसी व्यक्ति को मनमाना अनुभव कराया जा सकता है। उदाहरण के लिए वह मिट्टी के तेल में से गुलाब के इत्र की सुगन्ध ले सकता है; वह मिट्टी को चीनी समझकर खाता चला जा सकता है। और दूर तक जाने पर हिप्नोटिज्म द्वारा व्यक्ति को पागल किया जा सकता है। यहां तक कि केवल हिप्नोटिज्म के प्रभाव से आदमी को मारा तक जा सकता है। मैंने कहा : "हिप्नोटिज्म करने वाला व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को केवल इतना कहकर कि 'तुम जहां खड़े हो' वहां से हिल नहीं सकते; मैंने तुम्हें जमीन से चिपका दिया है, दूसरे व्यक्ति को सचमुच ही जमीन से चिपका सकता है। मैंने इस तरह लोगों को जमीन से चिपकते हुए स्वयं देखा है। इसलिए मुझे यह असम्भव नहीं लगता कि पुराने समय के ऋषि-मुनि केवल वरदान या शाप देकर दूसरे का भविष्य बना या बिगाड़ सकते हों। खास तौर से तब, जबकि उनके विषय में प्रसिद्ध है, कि वे वर्षों तक तपस्या और साधना में लगे रहते थे।"

डा० अनन्तानन्द कहने लगे : "हिप्नोटिज्म फिर भी मन से सम्बन्ध रखता है। बाह्य भौतिक जगत पर उसका प्रभाव अत्यल्प है। उदाहरण के लिए यदि सम्मोहित व्यक्ति के हाथ पर जलता हुआ कोयला रख दिया जाय, तो यह सम्भव है कि हिप्नोटिज्म के प्रभाव से उसे जलन के कष्ट का अनुभव न हो, पर आग तो अपना काम करेगी ही; हाथ जल जायगा और उसकी चिकित्सा करनी पड़ेगी। मुझे आश्चर्य उन आग पर चलने

वाले लोगों पर होता है, जो धधकते हुए कोयलों पर चलते हैं और उनके पाँवों में जलन का कोई निशान तक नहीं पड़ता। अच्छे से अच्छे वैज्ञानिकों की उपस्थिति में ये प्रदर्शन किये जा चुके हैं। आज तक मैं यह नहीं समझ पाया कि किस अद्भुत शक्ति के प्रभाव से आग इनके लिए अपना जलाने का स्वभाव छोड़ देती है।"

"आग पर चलने वालों के पास क्या अद्भुत शक्ति है, यह मैं भी आज तक नहीं समझ सका; पर कुछ न कुछ शक्ति तो होनी ही चाहिए," पं० हरिवंश कहने लगे: "और जो ये लोग दूसरे के मन का प्रश्न बिना बताये जानकर उसका उत्तर दे देते हैं, यह क्या आपको आश्चर्यजनक नहीं जान पड़ता ?"

दूसरे के मन की बात जान लेना सचमुच ही आश्चर्यजनक है। पर ऐसे आदमियों की कमी नहीं है, जो आपसे बिना कुछ भी पूछे आपके मन का प्रश्न पहचान लेते हैं। मैं स्वयं एक बार देवबन्द में एक ऐसे ज्योतिषी के पास जा चुका हूं। यह ज्योतिषी कोई फीस नहीं लेता था, और शायद इसीलिए उसके यहां प्रश्नकर्त्ताओं की भीड़ लगी रहती थी। फीस न लेने पर भी ज्योतिषी महोदय की दैनिक आय ईर्ष्यायोग्य थी।

यह ज्योतिषी अपने और प्रश्नकर्त्ता के बीच में एक फुलस्केप आकार का कागज इस प्रकार अपने दोनों हाथों में थाम लेता था, जिससे प्रश्नकर्त्ता का मुख उसे दिखाई न पड़े। उसके बाद वह प्रश्नकर्त्ता से कहता था कि अपना प्रश्न मन में सोचो। जितनी देर में कैमरे का बटन दबाकर फोटो लिया जाता है, बस उतनी देर वह कागज को इस तरह थामे रखता था। फिर उस कागज को एक ओर रख देता था। दो, तीन, चार, जितने भी प्रश्न पूछने हों, प्रत्येक प्रश्न के लिए एक नया कागज इस प्रकार थामा जाता था और उसके बाद वह कागज एक ओर रख दिया जाता था। जितनी देर कागज प्रश्नकर्त्ता और ज्योतिषी के बीच में टंगा रहता था, उतनी देर ज्योतिषी कुछ मन्त्र पढ़ता था। जब सब प्रश्न समाप्त हो जाते थे, उसके बाद वह उसी क्रम से, जिससे कि प्रश्न पूछे गये थे, एक-एक कागज उठाता था। उस कागज को सीमेंट के फर्श पर रखकर उस पर बाल्टी से पानी उंडेलता था। इस पानी डालने से कागज पर टेढ़ी-मेढ़ी अनेक रेखाएं उभर आती थीं। ज्योतिषी का कथन था कि ये रेखाएं अर्थहीन नहीं हैं, बल्कि एक संगत लिपि हैं, जिसे केवल वह ज्योतिषी ही पढ़ सकता था। सूखे कागज पर यदि साबुन के टुकड़े से टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खींचकर यदि उस पर पानी डाला जाय, तो उस पर उसी प्रकार की लकीरें उभर आयेंगी, जैसी कि उन कागजों पर उभरती थीं। पर सवाल लकीरों के उभरने का नहीं था; था इस बात

का कि इस तथाकथित लिपि को जब वह पढ़कर सुनाता था, तो मन में सोचे गये प्रश्नों के उत्तर ठीक उसी क्रम से मिलते थे, जिस क्रम से वे सोचे गये थे। प्रश्नों के विषय एक दूसरे से कितने ही भिन्न क्यों न हों, उनके सही माने जाने में कोई अन्तर नहीं पड़ता था।"

"पर क्या उसके दिये गये उत्तर भी सही होते थे?" देवेन्द्र ने शंका की।

"इन उत्तरों के बारे में असन्दिग्ध रूप से कुछ भी नहीं कह सकता। बहुत बार शायद वे सही नहीं भी होते थे। पर अनेक बार वे आश्चर्यजनक रूप से ठीक होते थे।"

पं० हरिवंश बोले : "इसका महत्व नहीं है कि वे गलत क्यों हैं? पर यदि सौ प्रश्नों में से तीस के उत्तर भी सही मिलते हैं, तो यह विस्मय और विचार की वस्तु है। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि इस प्रकार मनोगत प्रश्नों को जानने और उनका सही उत्तर देने की कोई न कोई सही पद्धति, बाकायदा-विज्ञान अवश्य है, और प्रत्येक बार सही उत्तर न मिलने के कारण कभी ज्योतिषी की और कभी-कभी प्रश्नकर्त्ता की भूल भी हो सकती है।"

मैंने कहा : "और लाहौर में मैंने एक ज्योतिषी देखा था, जिसके विषय में यह प्रसिद्ध था कि वह किसी भी व्यक्ति की जेब में पड़े हुए रुपयों, आनों और पैसों की सही-सही संख्या बता सकता था। पर उसकी शर्त यह रहती थी कि उसकी बताई संख्या सही निकलने पर जेब में पड़ा सम्पूर्ण धन ज्योतिषी को दे देना पड़ेगा। एक बार दो छोकरे जेब में कुछ आने और कुछ पैसे डालकर उसकी परीक्षा लेने पहुंचे। पर उनको ज्योतिषी ने केवल यही उत्तर दिया, कि जितने पैसे तुम्हारी जेब में हैं, उतने के लिए मैं अपनी ज्योतिष नहीं लगाता हूं। उसने कहा हुआ था कि एक रुपये से कम उसकी ज्योतिष की फीस नहीं है।"

पृथ्वीराज सेठी कहने लगे : "मैं नहीं कह सकता कि जो घटना मैं सुनाने लगा हूं, वह बिलकुल सही है या नहीं; पर हमें यह हमारे एक अध्यापक ने सच्ची घटना के रूप में ही सुनाई थी। पंजाब के किसी शहर का नाम उन्होंने लिया था, जो मुझे अब ठीक तरह याद नहीं है। वहां एक मशहूर हकीम जी रहते थे, उनकी विशेषता यह थी कि वह केवल रोगी का मूत्र देखकर उसके रोग को पहचान लेते थे, और दवाई लिख देते थे। इसके लिए पद्धति यह थी कि हकीमजी अपने कमरे में बैठे रहते थे और रोगी के अभिभावकों को किसी पात्र में लाया हुआ रोगी का मूत्र दरवाजे के बाहर एक नाली में, जो इसी उद्देश्य के लिए बनायी गयी थी, ऊंचाई से धीरे-धीरे गिराना होता था। उतनी ही देर में हकीम जी रोग की जांच

कर लेते थे। उनके रोगियों को उससे अधिक लाभ होता था, जितना कि दूसरे वैद्यों, हकीमों और डाक्टरों की दवाओं से होता था। परन्तु अविश्वासियों की कमी कहीं भी नहीं है। कुछ समझदार लोगों ने कहा कि यह सब वाहियात धोखा-धड़ी है; ढोंग रचा हुआ है; पेशाब देखकर जो भी मन में आये दवा लिख देता है; आगे रोगी जिये, चाहे मरे। आखिर चुपचाप हकीम जी की परीक्षा का षड्यन्त्र रचा गया। दो समझदार व्यक्ति एक बर्तन में बैल का मूत्र लेकर हकीम जी के पास गये। उन्होंने जाकर हकीम से कहा कि आज चाचा जी की तबीयत एकाएक बहुत खराब हो गई है; कुछ दवाई लिख दीजिये। हकीम जी ने प्रचलित पद्धति से ही उन्हें लाया हुआ मूत्र ऊपर से नाली में गिराने को कहा। जितनी देर में मूत्र नाली में गिराया गया, उतनी देर में हकीम जी ने नुस्खा लिखकर मोड़कर दूसरे व्यक्ति को दे दिया। नुस्खा लेकर दोनों समझदार व्यक्ति मन ही मन खुश होते हुए कमरे से बाहर निकले और बाहर निकलते ही उन्होंने कागज को खोलकर पढ़ा। नुस्खे में लिखा था—'चार सेर भूसा, सेर भर खल, पाव भर नमक और आध सेर गुड़।'

"तभी हकीम जी के कमरे में लोगों के ठहाका मारकर हंसने की आवाज आई। शायद हकीम जी ने सारा रहस्य अन्य उपस्थित रोगियों को बता दिया था।"

"बैल को चाचा जी मुफ्त में बनाया!" कृष्ण ने कहा।

"शायद किसी बछिया के ताऊ रहे हों!" सुभाष ने टिप्पणी की।

"और भी कुछ विचित्र बातें हैं, जिनकी व्याख्या केवल अन्धविश्वासों द्वारा की जा सकती है। विवशता में मानना पड़ता है कि कुछ लोग स्वभावतः अथवा अभ्यास और साधना द्वारा ऐसी लोकोत्तर शक्तियां प्राप्त कर लेते हैं जो साधारणतः लोगों के लिए परम आश्चर्यकारी होती हैं। बहुत बार इन शक्तियों से लोक का कल्याण भी होता है।" डाक्टर अनन्तानन्द कहने लगे।

देवेन्द्र बोला : "आश्चर्यजनक अथवा अदृश्य शक्तियों में विश्वास का नाम अन्धविश्वास नहीं है। अन्धविश्वास तो वह है, जो किसी भी अपरीक्षित वस्तु में बिना तर्क किये विश्वास कर लिया जाता है। यदि पर्याप्त अनुसंधान तथा परीक्षण के पश्चात अदृश्य शक्तियों का अस्तित्व प्रमाणित होता है, तो उन पर विश्वास करना बिलकुल वैज्ञानिक है।"

डाक्टर अनन्तानन्द का मत परिवर्तित नहीं हुआ; कहने लगे : "अन्धविश्वास ही कहना पड़ता है; कारण कि अपर्याप्त अनुसन्धान की कोई निश्चित धारणा नहीं है। और इसी तरह तर्क और कुतर्क में भी भेद कर पाना सरल नहीं है। जिन बातों को आजकल अन्धविश्वास माना

जाता है, केवल उन्हीं के द्वारा कुछ आश्चर्यजनक घटनाओं की व्याख्या हो पाती है। उदाहरण के लिए फलित ज्योतिष को ऋषि दयानन्द के बाद से केवल ठग विद्या समझा जाता रहा है। पर इस फलित ज्योतिष के चमत्कार कई बार अवाक् कर देने वाले होते हैं। जिम कोर्बेट ने अपनी पुस्तक 'माई इण्डिया' में एक बड़ा रोचक वृत्तान्त दिया है।

"उन दिनों जिम कोर्बेट मुकामी घाट पर एक ठेकेदार के रूप में काम कर रहा था। मुकामी घाट में गंगा पर पुल नहीं है। नदी के दोनों किनारों तक रेल आती है। एक ओर का सामान अथवा यात्री नाव या स्टीम द्वारा दूसरे किनारे पहुंचा दिये जाते हैं और वहां उन्हें दूसरी रेलगाड़ी मिल जाती है। एक बार नेपाल के प्रधानमंत्री कलकत्ता जाते हुए मुकामी घाट से गुजरे। कोर्बेट ने बड़े विस्तार से वर्णन किया है, कि किस प्रकार नेपाल के प्रधानमंत्री ने वह रास्ता, जिसे साधारणतः सभी यात्रियों को पैदल पार करना पड़ता है, एक मुस्टंडे पहलवान के कंधे पर बैठकर पार किया। इस पहलवान को अच्छी मोटी तनख्वाह पर केवल इसी कार्य के लिए नियुक्त किया गया था। इस रास्ते को प्रधानमंत्री के परिवार की महिलाओं ने किया तो पैदल ही पार, परन्तु उनके मुखों पर सामान्य पुरुषों की दृष्टि न पड़ सके, इसलिए उनके चारों ओर रेशमी पर्दे की व्यवस्था की गई। बाद में कोर्बेट से वार्तालाप में प्रधानमंत्री ने यह भी व्यक्त किया कि हमारे परिवार की महिलाएं पर्दानशीन नहीं हैं। परन्तु जनसाधारण में उनको खुलेमुह इसलिए नहीं जाने दिया जाता, जिससे उनके प्रति आम लोगों में आदर का भाव बना रहे।

"यह परिवार कुछ दिन कलकत्ते जाकर रहा, और फिर जिस तरह आया था, ठीक उसी तरह एक दिन काठमांडू की ओर वापिस लौट गया। प्रधानमंत्री के सैक्रेटरी से जिम कोर्बेट का अच्छा परिचय हो गया था। साधारणतः सैक्रेटरी पद उन्हीं लोगों को अनुकूल पड़ता है, जो बहुत मिलनसार होते है। इस वापिसी यात्रा के पांच-छह दिन बाद यह सैक्रेटरी एक दिन फिर जिम कोर्बेट के दफ्तर में आ उपस्थित हुआ। पर इन पांच-छह दिनों में ही उसकी सूरत-शकल इतनी बदल गई थी कि पहिचाना नहीं जाता था। उसकी प्रसन्न मुद्रा तथा मिलनसारी का स्थान चिन्ता और घबराहट ने ले लिया था। पूछने पर उसने अपनी इस बदली हुई दशा का कारण बताया। कलकत्ता में प्रधानमंत्री के परिवार की महिलाओं ने लगभग तीन लाख रुपये के मूल्य के आभूषण खरीदे थे। ये आभूषण एक सीलबन्द सन्दूक में रखे गये थे। काठमांडू पहुँचने पर जब उस सन्दूक की खोज की गई, तो वह मिला नहीं। यह सन्दूक सैक्रेटरी को सौंपा गया था, अतः उसके खो जाने का दायित्व उसी पर था। सैक्रेटरी जैसे वेतनभोगी

व्यक्ति के लिए तीन लाख की राशि बहुत बड़ी थी। परन्तु नेपाल का प्रधान-मंत्री, जो उस समय वहां का वास्तविक शासक था, उससे तीन लाख रुपये नहीं मांगेगा। यदि वह उन आभूषणों को ही वापिस न लौटा सका, तो अपने प्राण देकर ही उसे उन आभूषणों का मूल्य चुकाना पड़ेगा। आभूषणों को ढूँढ लाने के लिए प्रधानमंत्री ने कुल पन्द्रह दिन का अवसर दिया था। दुश्चिन्ता ने ही सैक्रेटरी की सूरत इतनी बदल दी थी। सैक्रेटरी को इतना निश्चयपूर्वक स्मरण था कि कलकत्ते से चलते समय उसने वह आभूषणों का सन्दूक स्वयं रेलगाड़ी के डिब्बे में ले जाकर रखा था। पर उसके बाद उस सन्दूक का कुछ पता न चल सका।

"पता चलाने के लिए सैक्रेटरी ने एक विचित्र मार्ग का अवलम्बन किया। एक प्रसिद्ध बूढ़े ज्योतिषी के सामने जाकर उसने अपनी विपत्ति बताई। उस ज्योतिषी के उत्तर प्रायः सदैव सच निकलते थे। उसकी उत्तर देने की पद्धति यह थी कि प्रश्न सुनकर वह प्रश्नकर्त्ता को अगले दिन आने को कहता था। इस बीच में वह अपने चित्त को उस प्रश्न पर एकाग्र करता था जिसका उत्तर उसे अगले दिन देना होता था। ज्योतिषी का कथन था कि रात को स्वप्न में उसे प्रश्नों के सही उत्तर प्रत्यक्ष दिखाई दे जाते हैं। अगले दिन सैक्रेटरी जब ज्योतिषी के पास पहुंचा, तो बिना एक क्षण का भी विलम्ब किये उसने बताया कि घबराने की कोई बात नहीं है। वह आभूषणों की पेटी एक कमरे में बहुत से असबाब के नीचे दबी पड़ी है, और उस कमरे का दरवाजा पूर्व की ओर है।

"पर इससे सैक्रेटरी की घबराहट कम नहीं हुई; कारण कि पूर्व की ओर दरवाजे वाले कमरे अनगिनत हैं, और उनमें से किस कमरे में वह सन्दूक पड़ा होगा, इसका कुछ निश्चय नहीं था। पर क्योंकि और कुछ किया नहीं जा सकता था, अतः वह विवश होकर उसी रास्ते की छानबीन करने वापिस लौटा, जिससे वे कलकत्ते से काठमांडू लौटे थे। जिम कोर्बेट के पास भी वह इसी आशा से आया था कि शायद नदी पार करते समय इस किनारे या उस किनारे वह पेटी इधर-उधर हो गई हो और अब ढूंढने से शायद मिल जाय।

"सब कुछ सुनकर कोर्बेट ने कहा, कि हमारे मुकामी घाट के गोदामों में से तो किसी का भी दरवाजा पूर्व की ओर नहीं है। दो-एक सहकारियों को बुलाकर चर्चा करने पर मालूम हुआ कि यहां से अगले स्टेशन पर एक कमरा अवश्य ऐसा है, जिसका दरवाजा पूर्व की ओर है। खाली गाड़ी वहां भी जाकर खड़ी होती है। यह अगला स्टेशन मुकामी घाट से लगभग आठ मील था। कोर्बेट का सिफारिशी पत्र लेकर सैक्रेटरी महोदय उस स्टेशन पर पहुंचे। जब इस पूर्व की ओर द्वार वाले कमरे को

खोजा गया, तो पता चला कि वह स्टेशन का पार्सल रखने का कमरा था और उस समय अनगिनत पार्सलों से खचाखच भरा हुआ था। जिस पेटी को ढूँढने सैक्रेटरी महोदय आये थे, उसका उल्लेख स्टेशन के रजिस्टरों में कहीं नहीं था, अतः बिना बात उस कमरे के सारे पार्सलों को निकलवाने की बात स्टेशनमास्टर को बेमतलब तंग करने की सी प्रतीत हुई। परन्तु सैक्रेटरी महोदय का तो यह जीवन-मरण का प्रश्न था। कोर्बेट के सिफारिशी पत्र तथा अपने अनुनय-विनय द्वारा उन्होंने स्टेशनमास्टर को लगभग विवश ही कर दिया कि वह सारे कमरे को खाली करवाके उस पेटी की खोज कराये। और बड़े आश्चर्य की बात यह कि सारे पार्सलों में सबसे नीचे पड़ी हुई वह पेटी अन्त में मिल गई। उसकी सील-मुहरें यथापूर्व सुरक्षित थीं। स्टेशनमास्टर के विस्मय और सैक्रेटरी की प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रही। अन्त में जांच-पड़ताल करने पर एक भंगी ने यह रहस्य प्रकट किया कि 'एक दिन रात को मुकामी घाट से एक खाली गाड़ी आई थी। उसके एक डिब्बे में मुझे यह पेटी मिली थी। मैं इस पेटी को यहां लाया कि स्टेशन बाबू के सुपुर्द कर दूं। पर क्योंकि रात बहुत हो चुकी थी, और बाबू जा चुके थे, अतः मैं पेटी को इस कमरे में रख गया और सोचा कि अगले दिन बाबू को लिखवा दूँगा। पर अगले दिन मुझे इसका खयाल ही न रहा।'

"पता नहीं कि उसे खयाल आजाता, तो पेटी का भविष्य क्या होता, पर इस समय तो ज्योतिषी की भविष्यवाणी बिलकुल सच निकल गई थी?"

"फिर उस सैक्रेटरी का क्या हुआ?" कृष्ण ने पूछा।

"ठीक तो पता नहीं, पर आसानी से अनुमान किया जा सकता है, कि उसकी कुछ न कुछ उन्नति ही हुई होगी।" डाक्टर अनन्तानन्द ने कहा।

"अरे यह तो शाम हो चली!" एकाएक चौंककर सुभाष ने कहा।

पता नहीं, अदृश्य शक्तियों, भूत-प्रेत, स्वप्न और ज्योतिष का यह प्रकरण अभी और कितना लम्बा चलता, परन्तु इस निकट आती हुई सन्ध्या ने उसे बलपूर्वक रोककर हमें उठ खड़े होने को बाधित कर दिया। जहां हम बैठे गपशप कर रहे थे, वह स्थान रात बिताने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त था।

सामान संभालने और चलने की तैयारी म पांच-दस मिनट लग गये और फिर हमने खारा की ओर प्रस्थान किया।

२१

भय की गन्ध

चलते-चलते सुभाष ने कहा : "हां डाक्टर जी, आप कल उस चीते के विषय में कुछ सुना रहे थे !"

डाक्टर अनन्तानन्द को याद नहीं आया, कि कब किस चीते के विषय में क्या सुना रहे थे। बोले : "कौनसा चीता ?"

कौनसा चीता, यह तो सुभाष को भी मालूम नहीं था; पर कोई न कोई चीता तो था ही। और यदि नहीं भी था तो बनाते क्या देर लगती है। बोला : "वही किसी गढ़वाल या अल्मोड़े के चीते के विषय में आप कुछ कह रहे थे। तब बात अधूरी रह गई थी।"

गढ़वाल और अल्मोड़े में कितने चीते नरभक्षक हो चुके हैं, उनका सही लेखा डा० अनन्तानन्द के पास भी नहीं है। पर जब सुभाष कह रहा है कि वह किसी चीते के विषय में कुछ सुना रहे थे, तो बिना किसी कठिनाई के उस सूत्र को आगे चलाया जा सकता है। गढ़वाल में तो रुद्रप्रयाग का नरभक्षक चीता ही अपनी धूर्तता के कारण बहुत कुख्यात हो गया था। उसी का उन्हें सबसे पहले खयाल आया। "अच्छा वह !" डाक्टर अनन्तानन्द ने कहा, और सुनाने लगे : "उस चीते ने जितने आदमियों को मारा था, यदि उन सबके मारे जाने का विवरण लिखा जाय, तो एक पूरी पोथी तैयार हो जाय। सोते हुए, राह चलते हुए, खेत में फसल काटते हुए अथवा जंगल में से लकड़ियां काटकर लाते हुए सभी परिस्थितियों में उसने मनुष्यों को अपना शिकार बनाया था। एक बार की बात है कि तीर्थयात्रियों का एक दल बद्रीनाथ की यात्रा पर जाता हुआ, मार्ग में एक पड़ाव पर ठहरा। यह पड़ाव उस नरभक्षक चीते के प्रदेश में पड़ता था। पड़ाव पर पर बनी हुई धर्मशाला के मैनेजर ने उन यात्रियों से आग्रह किया, कि वे जैसे भी हो अगले पड़ाव तक चले जायें, क्योंकि यहां नरभक्षक चीते के आक्रमण का बहुत अधिक खतरा है; रात को प्रायः वह इस स्थान से गुजरता है; और जब भी कहीं उसे कोई असुरक्षित व्यक्ति दिखाई पड़ जाता है, वह उसे अवश्य ही मार डालता है। इस पड़ाव पर मेरी धर्मशाला में इतने आदमियों के ठहरने के लिए जगह नहीं है; और आप

बाहर खुले में सोयें, यह किसी भी तरह ठीक नहीं है।

"परन्तु यात्री लोग बहुत थके हुए थे; अगला पड़ाव वहां से लगभग दो मील दूर था। शाम हो रही थी। आलस्य के कारण यात्री वहीं ठहर जाना चाहते थे। परन्तु धर्मशाला में से किसी यात्री को चीता उठा ले जाय, इससे धर्मशाला की बदनामी होती थी और पहले हो भी चुकी थी। अतः अब मैनेजर उसमें और वृद्धि होने देने को किसी भांति तैयार नहीं था। उसके बारम्बार चीते का कुछ सच्चा और कुछ अतिरंजित भय दिखाने पर यात्री लोग अगले पड़ाव जाने को तैयार हो गये। अभी वे चलने के लिए अपना बोरिया-बँधना समेट ही रहे थे कि उसी रास्ते पर चलता हुआ एक और साधु यात्री पड़ाव पर आ पहुंचा। यह साधु खूब मुस्टंडा था, पर शायद एक ही दिन में लम्बा रास्ता पार करके आ रहा था, अतः थक गया था और उसी पड़ाव पर विश्राम करना चाहता था। जब उसे पता चला कि यात्रियों का इतना बड़ा दल केवल मामूली से चीते के भय से आगे जाने को तैयार हो गया है, तो वह उपहास की हंसी हसते हुए बोला: 'तुम लोग एक मामूली चीते से इतना डर गये! हा, हा, हा, चिन्ता की कोई बात नहीं है। अब हम आ गये हैं, तुम बेफिक्र हो जाओ। अगर आज कहीं वह चीता भूला-भटका इस ओर आ गया, तो हम उसकी टाँगें पकड़कर चीरकर दो कर देंगे।'

"थके हुए यात्रियों को और चाहिए ही क्या था? वे तो पहले से ही आगे जाने को इच्छुक नहीं थे। अब साधु महाराज के परम आश्वासन से तो उन्हें चीते का भय कुत्ते जितना भी न रहा। 'बदरी विशाल की जय' बोलकर उन्होंने अपने समेटे हुए कपड़े और बर्तन फिर नीचे पटक दिये। और स्पष्ट घोषणा कर दी कि परिणाम चाहे जो हो, पर आज की रात वे सब बाहर खुले चबूतरे पर ही बितायेंगे।

"खा-पीकर यात्री लोग और साधु महाराज, सभी निश्चिन्त होकर अपने छोटे-छोटे बिस्तर बिछाकर चबूतरे पर लेट गये। रात में संकट उपस्थित होने पर हर किसी की तुरन्त मदद की जा सके, इस विचित्र गणित से साधु महाराज सबके बीच में बिस्तर बिछाकर सोये। उनकी निकटता से प्राप्त होने वाली तसल्ली सभी को समान रूप में मिलनी चाहिए न!

"दिन भर की कड़ी थकान थी; भोजन पेट भर खाया था; रात की ठंडी हवा के प्रभाव से सब के सब यात्री ऐसी गहरी नींद में सोये कि किसी को दीन दुनियां की कोई खबर न रही। इस प्रकार की गहरी और मीठी नींद बद्रीनारायण की यात्रा का मुखद प्रसाद है।

"रात में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। चीता तो क्या, किसी को चीते का सपना तक नहीं आया। पर सवेरे जब उठे, तो स्वभावतः यात्रियों

उत्सुकता साधु महाराज के विषय में हुई, जिनके आश्वासन के कारण वे लोग इस प्रकार निश्चिन्त भाव से खुले में सो सके थे। पर साधु महाराज का बिछौना ज्यों का त्यों पड़ा था और वे शायद पहले ही उठकर नित्य-कर्मों से निवृत्त होने चले गये थे। जब सब यात्री जाग गये और काफी देर बीतने पर भी साधु महाराज लौटे नहीं, तब लोगों को चिन्ता हुई। सन्देह का अंकुर उत्पन्न होते ही सब ओर शोर मच गया। धर्मशाला का मैनेजर दौड़ा हुआ आया। थोड़ा सा ध्यान से देखने पर दिखाई पड़ा कि पक्के चबूतरे से कुछ दूर खून की कुछ बूंदें पड़ी हैं। खून सूख चुका था, पर उस पर अभी तक धूल मिट्टी का नाम भी नहीं था। खून की इन कुछ बूंदों को देखकर यात्रियों का खून ठंडा हो गया। थोड़ा सा और आगे बढ़कर और खून की बूंदें थीं और उससे आगे तो इन खून की बूंदों की एक पंक्ति ही बन गई थी। अब किसी को कोई सन्देह नहीं रहा। अवश्य ही नरभक्षक चीता रात को यहां आया था और इतने चुपचाप अपने शिकार को पकड़ कर ले गया कि साधु को चिल्लाने तक का मौका न मिला; और न पास में सोने वाले बीसियों यात्रियों में से ही किसी को उसकी उपस्थिति का आभास हो सका।

"खून की बूंदों की इन पंक्तियों का पीछा किया गया। साधु हट्टा-कट्टा था; खून की उसमें कमी नहीं थी; अतः रक्त-बिन्दुओं की यह पंक्ति सारे ही रास्ते स्पष्ट रही। जहां कहीं चीता चलते-चलते दो एक क्षण के लिए रुका था, वहां पर अधिक खून जमा हो गया था। साधु को उठाकर चीता सड़क को पार करके पहाड़ी के नीचे की ओर उतर गया था। लगभग डेढ़ फर्लांग जाकर उसने अपने शिकार को भूमि पर रख दिया था। यहां बहुत काफी खून गिरा हुआ था। साधु को उठाकर चीता फिर एक फर्लांग और गया था। यहां उसने अपने आपको निश्चिन्त अनुभव किया होगा; क्योंकि यहीं बैठकर उसने अपना पेट भरा था। रात जो हट्टा-कट्टा साधु था, इस समय वह बची हुई टांगों, हाथों और खोपड़ी के रूप में पड़ा हुआ था। पेट का, छाती का और कूल्हों का बहुत-सा मांस चीते ने खा डाला था।

"ईश्वर की लीला अपार है, कहते हुए यात्री लोग आगे चल पड़े और मैनेजर उस साधु को मन ही मन कोसता रहा, जिसने बारम्बार समझाने पर भी बाहर चबूतरे पर सोने का हठ किया था, और इस प्रकार उसकी धर्मशाला के नाम को बट्टा लगाया था।"

सुभाष बोला : "यह आश्चर्य की ही बात है, कि साधु को ही चीते ने क्यों खाने के लिए चुना, जब कि वहां अन्य बीसियों यात्री सो रहे थे ?"

पं० हरिवंश कहने लगे : "इसका सही कारण तो बता पाना कठिन

है; पर ऐसा बहुत बार होता है कि संयोग से ही दुर्भाग्य किसी ऐसे व्यक्ति के ऊपर आकर पड़ जाता है, जिससे घटना अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाती है और उसमें कुछ क्रम निहित दिखाई पड़ने लगता है। इसी प्रकार एक और घटना मुझको याद आती है। अल्मोड़ा के इलाके में एक नरभक्षक बाघ का उपद्रव चल रहा था। यह बाघ बहुत अधिक साहसी हो गया था। कई बार तो वह दिन-दहाड़े गांव के पास आकर स्त्रियों और बालकों को पकड़ ले गया था। लोग भय के मारे रात को घर से बाहर नहीं निकलते थे और घरों के दरवाजे खूब मजबूती से बन्द करके सोते थे। एक बार प्रौढ़ आयु का एक व्यक्ति किसी दूसरे गांव में अपने किसी परिचित के यहां गया। यह गांव भी नरभक्षक बाघ के प्रदेश में पड़ता था। जब रात का अंधेरा घना हो उठता है, और सोने का समय होने लगता है, नरभक्षक के प्रदेश में रहने वाले लोग अपने प्राणों की आशंका से चिन्तित होने लगते हैं। इस दूसरे गांव से आये हुए व्यक्ति ने बाघ का भय प्रदर्शित करते हुए ऐसे स्थान पर सोने का आग्रह किया, जहां नरभक्षक का भय कम से कम हो। वैसे तो अपने प्राण सभी को प्यारे होते हैं, फिर भी अतिथि का कुछ लिहाज किया ही जाता है। अतः इस दूसरे गांव से आये हुए व्यक्ति को एक कमरे के अन्दर दरवाजे से अधिकतम दूर कोने में सुलाया गया। बीच में घर के अन्य कई रहने वाले सो रहे थे। वैसे बाघ वहां रोज नहीं आता था, पर उस दिन आया। दरवाजे को उसने कैसे खोला, यह तो वही जाने, पर चुपचाप कमरे में आकर उसने अन्य किसी व्यक्ति को छुआ तक नहीं, और कोने में जाकर सीधा उसी व्यक्ति को पकड़ा, जिसे अपने प्राणों का सबसे अधिक भय था। उस व्यक्ति को उठाकर जब वह बाघ दरवाजे में से निकलने लगा, तब उस व्यक्ति के अर्धमृत शरीर के दरवाजे से टकराने के कारण कुछ शब्द हुआ, जिससे चौंककर अन्य लोगों की भी नींद खुल गई। ऐसे समय नींद खुल जाना कुछ बहुत अभीष्ट वस्तु नहीं है। यदि उनका अपना वश होता, तो वे अपना शिकार पकड़कर ले जाते हुए बाघ को देखकर एक आवाज तक मुख से न निकालते; पर मनुष्य के शरीर की सारी क्रियाएं मनुष्य के अपने वश में नहीं होतीं। परिस्थितियों की विषमता में स्वतःचालित पेशियां अपने आप सक्रिय हो उठती हैं। उस कमरे के अंधेरे में जिन्होंने मनुष्य को मुंह में दबाये बाघ को दरवाजे से उलझते देखा था, उनके मुंह से स्वतः ही चीख निकल गई। चीख को सुनते ही बाघ क्षण भर में कमरे से बाहर हो गया। शिकार को उसने छोड़ा नहीं था, पर कमरे से बाहर होकर उसने जमीन पर रख दिया और इस बुरी तरह गुर्राया कि कमरे के अन्दर सोने वाले लोगों का बुरा हाल हो गया। तब उन्हें अपने चीख पड़ने पर पश्चात्ताप हुआ। पर बाघ को अपना शिकार मिल

चुका था, अतः गुर्राकर धमकाने के अतिरिक्त उसने चीख का कुछ और प्रतिकार करना आवश्यक नहीं समझा। क्षण भर खड़ा रहने के बाद यह देखकर कि चीखने वालों ने उसकी गुर्राहट का कोई धृष्टतापूर्ण उत्तर नहीं दिया है, वह फिर अपने शिकार को लेकर आगे चल पड़ा। जब इस बात का निश्चय हो गया कि बाघ इतनी दूर जा चुका है कि अब वह चिल्लाहट सुनकर भी वापिस नहीं आ सकता, कमरे के अन्य लोगों ने साहस करके शोर मचाया। पर अब शोर मचाने से भी क्या होना था!"

"जो डरा, वह मरा, यह कहावत किसी सीमा तक शायद ठीक है।" सुभाष बोला।

डरने वाले के मरने की वैज्ञानिक व्याख्या भी मैंने कहीं पढ़ी थी। लेखक ने बतलाया था कि डरते हुए प्राणी के शरीर से एक प्रकार की तीव्र गन्ध निकलने लगती है। इस गन्ध को हम मनुष्य अनुभव नहीं कर पाते, क्योंकि हमारी घ्राणेन्द्रियां उतनी सूक्ष्म नहीं हैं, जितनी कि हिंस्र पशुओं की होती हैं। निर्बल और भयभीत प्राणी के शरीर से निकलने वाली यह भय की गन्ध हिंस्र पशुओं को ठीक उसी प्रकार आकृष्ट करती है, जिस प्रकार हम फलों अथवा ताजे पक रहे स्वादिष्ट भोजन की गन्ध से आकृष्ट होते हैं। यह गन्ध हिंस्र पशुओं को अपने शिकार पर टूट पड़ने के लिए प्रेरित करती है।

पं० हरिवंश कहने लगे: "इस बात में कुछ सचाई हो सकती है। क्योंकि ये हिंसक पशु जब अपने शिकार अथवा तुल्य प्रतिद्वन्द्वी के सम्मुख होते हैं, तो उस पर एकाएक आक्रमण नहीं कर देते; बल्कि कुछ समय तक गुर्राकर, दांत निकालकर और अपनी मुद्रा भयंकर बनाकर पहले उसे डराने का प्रयत्न करते हैं और एक बार यह स्पष्ट हो जाने पर कि वह डर गया है आक्रमण में विलम्ब नहीं करते। इसीलिए यह कहा जाता है कि शेर या बाघ को देखकर भाग नहीं पड़ना चाहिए।"

मैंने कहा: "हिंसक पशु को देखकर भाग पड़ना तो भय का बाह्य और प्रकट रूप है। पर होता यह है कि कई कुत्ते ऐसे लोगों पर भी गुर्राकर झपट पड़ते हैं, जो ऊपर से तो यह अभिनय कर रहे होते हैं कि वे डर नहीं रहे, पर वैसे अन्दर मन ही मन डरे होते हैं। वे बिल्कुल निर्भय भाव से आने वालों अथवा निकट से गुजर जाने वालों को कुछ भी नहीं कहते। बन्दरों के सम्बन्ध में भी यह बात पूर्ण रूप से सत्य है। वे डरते हुए और न डरते हुए प्राणी में ऐसा भेद कर सकते हैं, कि उसमें कभी धोखा नहीं हो सकता। स्त्रियों और डरते हुए बच्चों के हाथ से वे निर्भीक भाव से चीज झपट ले जायेंगे। पर उस व्यक्ति के साथ बहुत सोच-समझकर ही छेड़खानी करेंगे, जो उनसे डर नहीं रहा होगा।

इसके विपरीत जो व्यक्ति उनके भय का कारण होगा, जो उनकी घुड़की से डरने के बजाय उन्हें ऐसा पत्थर फेंककर मारेगा, जिसका निशाना चूके नहीं, उसके पास वे भूलकर भी नहीं फटकेंगे। भयग्रस्त पर आक्रमण करने की बात मरखने बैलों तथा अन्य पालतू पशुओं में भी देखी जाती है।

"इस भय की गन्ध की पुष्टि उन मनोरंजक और विचित्र उदाहरणों से भी होती है, जो कभी-कभी हम लोगों के देखने में भी आ जाते हैं। ये उदाहरण वे हैं, जबकि कोई हिंसक पशु अपने शिकार समझे जानेवाले प्राणी पर भी केवल इसलिए आक्रमण नहीं करता, क्योंकि अबोधता के कारण शिकार प्राणी में भय का भाव जाग्रत नहीं हो पाया। बहुत से मानव-शिशु भेड़ियों द्वारा ले जाये जाकर मारे नहीं गये, बल्कि उनके अन्य बच्चों के साथ ही पल गये। जिम कोर्बेट ने भी अपने एक लेख में एक शेरनी का वर्णन किया है, जो कुछ देर तक एक बकरी के बच्चे पर घात लगाती रही, और अन्त में जब वह उसके पास पहुंची, तो बकरी का बच्चा अपनी निरीहता और अबोधता के साथ उसे सूंघने लगा। शेरनी एक मिनट तक उसे देखती रही और अन्त में उसे बिना कुछ भी क्षति पहुंचाये छोड़कर चल दी। इसका कारण यही समझा जा सकता है कि बकरी का बच्चा अपने अज्ञान के कारण शेरनी से भय अनुभव नहीं कर सका और इसीलिए उसके शरीर से भय की गन्ध नहीं निकली, जिससे कि शेरनी आक्रमण की उत्तेजना प्राप्त करती।"

सुभाष बात को कहीं और ले उड़ा। बोला : 'तब तो यह बात ठीक मालूम होती है कि यदि शेर या बाघ के सम्मुख आने पर मनुष्य भयभीत न हो उठे, तो वह किसी सीमा तक उनका मुकाबला भी कर सकता है।"

पं० हरिवंश ने जरा मुस्कराकर कहा : "दुष्यन्त के पुत्र भरत तो बचपन में ही शेर के बच्चों से खेला करते थे और शेरनी का मुंह खोलकर दांत गिना करते थे।"

यह बात मुझे भी कठिन मालूम होती है कि शेरनी, यदि वह रबड़ की ही बनी हुई न हो, अपने सामने अपने बच्चों को किसी अन्य प्राणी के द्वारा जरा भी सताया जाने दे। वह अपने बच्चे से अन्य मातओं की अपेक्षा कुछ अधिक ही स्नेह करती है। दुष्यन्त और भरत के लोकोत्तर शौर्य को महाकवि कालिदास ने इस सुन्दर काव्यमय रूप में प्रस्तुत किया, यह उनकी प्रतिभा का चमत्कार था। पर आर्यसमाजी भजनीकों ने इस कल्पना को अकाट्य सत्य का जैसा स्वरूप दे दिया है, वह सुनकर मुस्कराने योग्य ही है। ये भजनीक उन लोगों में से हैं, जो रामायण में यह पढ़कर कि सीताजी का मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर था, सारा जोर इस बात पर

देते हैं कि उनका मुख बिल्कुल गोल-मटोल रहा होगा, और ठोडी तो होगी ही नहीं, क्योंकि वाल्मीकि ने चन्द्रमा के समान जो लिख दिया है।

भरत सिंह-शिशुओं से खेलते थे या नहीं, मैं इस विषय में विवाद नहीं करना चाहता था; पर आखिर मनुष्यों ने भी इन वन के दैत्यों से लोहा लिया ही है। जिस जंगल में हम चल रहे हैं, इसी जंगल में दो साल पहले एक घास खोदने वाले पर जब एक भालू ने पीछे से हमला किया था, तब उसने जैसे तैसे अपने होश हवास बनाये रखकर अपने खुरपे से ही भालू पर कई गहरे वार किये थे, जिनसे घायल होकर भालू उसे छोड़कर भाग गया था। हालांकि भालू के आघातों के परिणामस्वरूप उस घसियारे की भी मृत्यु हो गई, पर वह मृत्यु अस्पताल में आकर हुई थी। और उसके साथियों को इतना अवसर मिल गया था कि वे उसे उठाकर अस्पताल तक ला सकें। मामूली घसियारा अपने बेढंगे शस्त्र खुरपे से यदि भालू का सामना कर सकता है, तो उपयुक्त शस्त्र लेकर बाघ या शेर का सामना कर पाना असम्भव बात नहीं है। अतः मैंने कहा : "भरत के अतिरिक्त शेर अफगन जैसे भी तो आदमी हुए हैं, जो शेर से लड़कर उसे मार डालने के लिए मशहूर हो गये हैं। और भी कई राजपूत वीरों के विषय में ऐसी प्रसिद्धि है कि वे खाली हाथ ही शेर से भिड़कर उसे मार डालते थे।"

"वे सब वीर उस साधु महाराज की तरह ही होंगे, जिसका हाल अभी डाक्टर जी ने सुनाया था, जो नरभक्षक चीते की टांगें पकड़कर चीर देने का दम भरता था।"

"नहीं हरिवंश जी, शेर से भिड़ना मुझे तो इतनी असम्भव वस्तु मालूम नहीं होती। शेर अफगन का तो नाम पड़ा ही इस कारण से था। शेर अफगन राजदरबार का आदमी था। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि उसने यह नाम स्वयं ही आजकल के कवियों के उपनामों की तरह रख लिया होगा। और शेर अफगन के अतिरिक्त सैंडो ने भी खाली हाथ शेर से लड़ने का प्रदर्शन किया था।"

"सैंडो की बात जाने दीजिए।" पं० हरिवंश ने अधीरतापूर्वक बीच में टोकते हुए कहा : "इन पश्चिमी लोगों की कला है विज्ञापन करना और शोर मचाना। ये कुछ भी काम करके उसका सौगुना ढोल पीटते हैं। शेर अफगन के वीरत्व में कुछ सचाई हो सकती है। पर सैंडो की जो लड़ाई शेर से हुई थी, वह तो केवल खिलवाड़ थी। सैंडो यूरोप का प्रसिद्ध पहलवान था और अपने शारीरिक बल के कारण अनेक प्रदर्शनों द्वारा उसने पर्याप्त धन कमाया था। उन्हीं प्रदर्शनों की कड़ी को आगे बढ़ाने के लिए उसने घोषणा की कि वह खुली कुश्ती में शेर को पछाड़कर दिखायेगा। इसमें सन्देह नहीं कि सैंडो बहुत बलवान व्यक्ति था। पर यह न बतलाना

शेर के प्रति भी अन्याय होगा कि जो शेर उसने कुश्ती के लिए चुना था, वह बहुत समय से एक सरकस के काम आ रहा था। सरकस के ये शेर परिमित खुराक पर रखे जाते हैं और पिंजड़े में बन्द रहने के कारण इनका सिंहत्व नाम मात्र ही शेष रह जाता है। आदमी को ये अपने से अधिक बलवान प्राणी के रूप में जानते हैं। ऐसे ही एक शेर से सैंडो ने कुश्ती की थी। विज्ञापन का फल अभीष्ट ही हुआ था। लोगों ने भारी संख्या में इस कुश्ती को देखने के लिए टिकट खरीदे थे। पर क्योंकि यह खेल खतरनाक समझा गया था, अतः असली प्रदर्शन से पहले इसका रिहर्सल करके देख लेना आवश्यक समझा गया। कहते हैं कि इस रिहर्सल के समय शेर ने सैंडो के बल की अच्छी परीक्षा ली। पर अन्त में सैंडो ने उसे पकड़कर बुरी तरह भींच दिया, जिससे शेर परास्त सा होकर भूमि पर गिर पड़ा। प्रदर्शन अच्छा रहेगा, इस निश्चिन्तता के साथ जब दर्शकों के सामने असली प्रदर्शन प्रारम्भ किया गया, तो मजे की बात यह हुई कि शेर ने लड़ने से इन्कार ही कर दिया। कठघरे में सैंडो के सामने छोड़ा जाने पर वह एक कोने में जाकर बैठ गया, और बार-बार उत्तेजित करने पर भी किसी तरह भी लड़ने को तैयार न हुआ। तब अन्त में सैंडो ने उसे बलपूर्वक घसीटकर कठघरे के बीचोंबीच डाल दिया। दर्शकों को लड़ाई के स्थान पर इतना भर देखकर सन्तोष कर लेना पड़ा। आसानी से अनुमान किया जा सकता है कि वह शेर कैसा रहा होगा ?"

"जंगल का शेर मरने से पहले हतोत्साह होकर गिरने वाला प्राणी नहीं है," डा० अनन्तानन्द ने कहा। "वह तो मरने या मार डालने पर ही समाप्ति समझता है। यह तो मनुष्य द्वारा आविष्कृत बन्दूक की गोली की ही करामात है कि वह सैकड़ों गज दूर से प्रतिद्वन्द्वी को समाप्त कर देता है।"

"गोली भी रखी रह जाती है, और शेर आकर बन्दूकची को खत्म कर जाता है।" पं० हरिवंश बोले।

२२

शिकारी शिकार बन गये

"बन्दूक रखी रह जाने और शिकारी के खत्म हो जाने के वृत्तान्त कम नहीं हैं। हिमालय के वनों की ही भांति मध्य प्रदेश में विंध्याचल के वन भी इन हिंस्र पशुओं के गढ़ हैं और वहां भी बाघ और चीते समय-समय पर नरभक्षक बनते रहते हैं। एक बार वहां हैदराबाद के निकटवर्ती प्रदेश में एक चीता नरभक्षक हो गया था। ये नरभक्षक बन जाने वाले पशु न केवल प्रत्येक नये मानव शिकार को मारने के बाद अधिक बुद्धिमान बन जाते हैं, बल्कि जब इन्हें मारने का कोई प्रयास किया जाता है, और वह किसी कारण से असफल रह जाता है, तब उस अनुभव से लाभ उठाकर नरभक्षक पहले से और भी अधिक सावधान और चौकन्ने होकर रहने लगते हैं। इस नरभक्षक चीते को भी मारने के कई प्रयास किये गये थे। उस प्रदेश के निवासियों के लिए शायद यह अधिक अच्छा होता कि वे प्रयास न किये जाते। क्योंकि कई बार तो शिकारियों की गोलियां चीते को छुई तक नहीं; और जब एक आध बार छुई भी, तो उसके किसी मर्मस्थल पर मामूली-सी चोट भर पहुंचाकर रह गई। शिकारियों के इन असफल प्रयासों ने नरभक्षक को अधिक डरपोक और सावधान और क्रूर बना दिया। पहले यदि वह कभी दिन में भी मनुष्यों पर आक्रमण कर बैठता था, तो अब निश्चित रूप से रात को ही अपना शिकार ढूंढने निकलने लगा। पहले उसके आक्रमण के बाद भी कभी-कभी कोई व्यक्ति घायल होकर बच जाते थे, पर अब उसकी चोट इतनी सधी हुई और निश्चित होती थी कि जिस पर वह आक्रमण करे, वह संभलने या बचने का कोई अवसर पा ही नहीं सकता था। पहले कभी-कभी वह लोगों को जंगल में या शिकार को ले जाता हुआ दिखाई भी पड़ जाता था, पर अब उसको ढूंढ पाना या देख पाना लगभग असम्भव हो गया। पर फिर भी वह कहीं दूर नहीं था। हर दो-चार दिन बाद वह कहीं किसी न किसी स्त्री या बालक को मार ही डालता था। नरभक्षक लाश पर लाश किये डालता है और दिखाई कभी पड़ता नहीं, यह बात लोगों के लिए बहुत डरावनी हो उठी। अखबारों में शोर मचा। आखिर सरकार के भी कानों पर जूं रेंगी। वन

विभाग के अधिकारियों को चीते को मार डालने का आदेश हुआ और चीते को मार डालने वाले व्यक्ति को पांच सौ रुपया पुरस्कार देने की भी घोषणा की गई।

"जंगल में कुल चीतों की संख्या सौ से अधिक होगी। नरभक्षक के कारण उन सब चीतों को मार डालना न संभव था और न उचित ही। और नरभक्षक चीता कौनसा है, यह पहचानने का अवसर नरभक्षक कभी देता नहीं था। पुरस्कार के लोभ से आने वाले शिकारियों के लिए सबसे बड़ी समस्या यह थी कि यह चीता एक दिन एक जगह लाश कर डालने के बाद उस प्रदेश में नहीं ठहरता था और किसी भी दिशा में कई मील दूर जाकर अवसर देखकर अपना अगला शिकार मारता था। एक शिकार को मार लेने के बाद वह किस दिशा में जायेगा, इस बात का कुछ भी अनुमान नहीं किया जा सकता था। अतः ये शिकारी और कई चीतों को तो मार पाने में सफल हो गये, पर जिसे मारना था, वह नरभक्षक चीता नहीं मारा जा सका।

"शिकारी लोग तो किसी के नौकर नहीं थे। वे तो अपनी इच्छा से ही शिकार करने आते थे और जब उन्हें स्पष्ट हो जाता था कि इस नरभक्षक चीते को मार पाना उनके बस का खेल नहीं है, तो वे अपना बिस्तर बोरिया गोल करके चलते बनते थे। पर वन-विभाग के कर्मचारी तो स्थायी नौकर थे; अतः जनता की पुकार और अधिकारियों के आदेश की उपेक्षा कर पाना उनके लिए सम्भव नहीं था। अन्त में चार रेंजरों ने मिलकर चीते को मार डालने का बीड़ा उठाया। इनके नाम, मुराद, अनवर, रामसिंह और बलवन्त थे। इनके साथ एक और शिकारी भी मिल गया। इसका नाम इस्माइल था, और यह पहले भी कई शेरों का शिकार कर चुका था।

"हाल में ही चीते ने एक स्त्री को मारा था और उसे घसीटकर गांव से लगभग मील भर दूर जंगल में ले गया था। चीते के निशानों का पीछा करते हुए ये शिकारी उस स्थान तक पहुंच गये, जहां नरभक्षक ने लाश का थोड़ा सा हिस्सा खाया था और बाकी अंश को एक झाड़ी में छिपा दिया था। आगे जंगल घना और घना होता गया था, जो कई मील तक फैला हुआ था। चीता जिस प्रकार थोड़ा सा लाश को खाकर और छिपाकर गया था, उससे यह अनुमान होता था कि वह फिर वापिस लाश पर आयेगा। पर इस चीते की ख्याति ऐसी हो गई थी कि वह लाश पर लौटकर नहीं आता। पर जब चीते से मुठभेड़ करने का कोई न कोई रास्ता ढूंढना ही है, तो इस लाश के पास घात लगाकर बैठना लगभग आवश्यक ही था, क्योंकि अभी इससे अच्छा और कोई उपाय सूझ नहीं पड़ रहा था। वैसे जंगल जितना घना था, और लाश जितनी बाकी बची

हुई थीं, उसे देखते हुए नरभक्षक के वापस आने की संभावना पचास प्रतिशत से अधिक ही थी।

"जब घात लगाकर बैठने का निश्चय किया गया तो पता चला कि चीते ने लाश को ऐसी जगह पर छोड़ा है, जो चीते के लिए तो सब प्रकार से अनुकूल है, पर घात लगाकर बैठने वाले शिकारियों के लिए बिल्कुल प्रतिकूल। जंगल घना होते हुए भी लाश के आसपास काफी दूर तक इतना बड़ा और मजबूत कोई वृक्ष नहीं था, जिस पर मचान बांधा जा सके। एक बड़ा पेड़ कोई ढाई सौ गज दूर था; पर उस पेड़ पर बैठकर लाश का निशाना नहीं लिया जा सकता था। एक और अपेक्षाकृत छोटा पेड़ लगभग साठ गज दूर था। निशाना लगाने के लिए यह पेड़ बहुत अच्छा था, परन्तु इसकी ऊंचाई बहुत कम थी और इस बात की पूरी संभावना थी कि यदि चीता इस पेड़ पर बैठे हुए आदमी पर आक्रमण करे, तो उसे अपने साथ नीचे घसीट लाये और मार डाले।

"परन्तु रेंजर और शिकारी तो चीते को मारने निकले थे; यदि वे ही उससे इतना डरकर चलें, तो कैसे काम चले? अतः यह तय किया गया कि दो आदमी बड़े पेड़ पर बैठें; इस्माइल ने छोटे पेड़ पर बैठने का निश्चय किया और बाकी दो आदमी झाड़ियों में मजबूत बाड़ा बनाकर बैठे। बड़े पेड़ पर से लाश का निशाना तो नहीं लिया जा सकता था, पर इस दिशा से चीते के आने की अधिक सम्भावना थी। इन तीन स्थानों पर मोर्चे जमा लेने के बाद आशा की जा सकती थी कि यदि चीता लाश पर आया, तो किसी न किसी शिकारी की गोली उसका उपयुक्त स्वागत कर सकेगी। नीचे बैठने वाले शिकारी जानते थे कि सबसे अधिक खतरा उनके लिए है, पर अपनी रक्षा के लिए उन्होंने अपने सामने और पीछे काफी मजबूत मोर्चेबन्दी कर ली थी और इस बात का पूरा प्रयत्न किया था कि उनकी उपस्थिति का चीते को किसी भी प्रकार ज्ञान न हो सके।

"शाम होने से कुछ देर पहले ही पांचों शिकारी अपने मोर्चों पर डट गये। यद्यपि वे अपने लिए इतना खतरा मोल ले रहे थे, फिर भी आशा किसी को भी नहीं थी कि चीता इस ओर आयेगा। यदि आशा रही होती तो वे लोग कुछ और अधिक सावधानी बरतते। कम से कम छोटे पेड़ पर बैठने वाला इस्माइल तो अपनी सुरक्षा का कुछ न कुछ उपाय अवश्य ही करता।

"शाम बीत गई। रात धीरे-धीरे बढ़ने लगी। अंधेरा बढ़ने के साथ-साथ जंगली पशुओं की हलचल का कुछ आभास मिलने लगा। कहीं कोई गीदड़ बोलता, तो किसी ओर से काकड़ या चीतल की आवाज आती। पर यह सब दूर ही दूर था। पास में सब कुछ शान्त था और हवा से हिलते

हुए पेड़ों के अतिरिक्त पूरा सन्नाटा छाया हुआ था। शिकारी अपने शिकार की घात में सावधान और सतर्क बैठे थे। पर जिसकी घात में वे बैठे थे, वह उनसे अधिक सतर्क और सावधान था। आधी रात बीत गई, पर उसका कोई चिन्ह तक दिखाई नहीं पड़ा।

'एकाएक इस्माइल बड़े जोर से चिल्लाया : 'देखना रामसिंह, संभालना; यह शैतान आ पहुंचा है। धत्तेरे की बदमाश! तेरी ऐसी की तैसी!'

"जिस चीते की घात में वे सब बैठे थे, उसके आ जाने पर ऐसा विचित्र व्यवहार करने की उनकी कोई योजना नहीं थी। यह निश्चित था कि चीता गाली से नहीं मरेगा। उसके लिए तो गोली ही चलानी होगी। फिर इस्माइल चिल्ला-चिल्लाकर शिकार को क्यों भगाये दे रहा है? इसी तरह क्या नरभक्षक का शिकार किया जाता है?

"पर इस्माइल शायद इस समय अपनी समझ में सर्वोत्तम उपाय बरत रहा था। चीता न जाने किस प्रकार बिल्कुल चुपचाप उसके पेड़ तक पहुंच गया था और कूदकर इस्माइल पर झपटा था। इस आकस्मिक झपट्टे ने इस्माइल के होश बिगाड़ दिये थे। अंधेरे में बन्दूक की गोली का भरोसा न रखकर उसने चिल्लाने और शोर मचाने को अधिक अच्छा उपाय समझा, क्योंकि नरभक्षक एक कूद में असफल हो जाने भर से छोड़ देने वाला प्राणी नहीं था। इस्माइल की भयभीत आवाज को सुनकर रामसिंह तुरन्त स्थिति को भाँप गया, और चिल्लाया : 'यह मैं आया। देखना, जाने न पाये।'

"अपनी राइफलें उन्होंने पगड़ी में बांधकर नीचे उतार दीं और खुद भी चिल्लाते और शोर मचाते हुए पेड़ से उतर आये। नीचे आते ही राइफलें उन्होंने संभाल लीं और आवाजें देते तथा चारों ओर देखते हुए दोनों इस्माइल के पेड़ के पास पहुंचे। उनके पास पहुंचते ही इस्माइल भी पेड़ से नीचे उतर आया। उसने बताया कि किस तरह वह बदमाश चीता चुपचाप उसके पेड़ तक आ गया था और उस पर किस बुरी तरह झपटा था।

"इतने शोर के बाद चीता वहां बैठा नहीं रहा होगा, यह तो स्पष्ट ही था। उसे छिपकर मारने का अवसर तो हाथ से निकल ही गया था। अतः उचित यही था कि वे मुराद और अनवर को भी साथ लेते और फिर जो भी उचित जँचता करते। इस्माइल ने उन्हें आवाजें दीं, पर उनका कोई उत्तर नहीं आया। उनकी बैठने की जगह यहां से कुछ दूर भी थी। उत्तर न मिलने पर ये तीनों राइफलें संभाल उस ओर बढ़े। चीते के आक्रमण का खतरा अभी भी ज्यों का त्यों बना हुआ था। ज़रा सा भी

असावधान पाकर वह तुरन्त झपट पड़ेगा, यह वे लोग भली भांति जानते थे। आगे बढ़ने पर उन्होंने और एक-दो बार आवाजें दीं और जब उनका कोई भी उत्तर नहीं आया, तो वे सचमुच चिन्तित हो उठे। अपनी चाल तेज करके जब वे वहां पहुंचे, तो यह देखकर उनके अचरज और भय का ठिकाना न रहा कि दोनों रेंजर अनवर और मुराद मरे पड़े थे। उनकी राइफलें उनके पास पड़ी हुई थीं। इस्माइल को तो फिर भी चिल्लाने का मौका मिल गया, पर उन्हें तो चीते ने इतना भी अवसर नहीं दिया था।

"मुराद और अनवर तो भय के पार हो चुके थे, पर जो तीन उन्हें देख रहे थे, उनकी भय के मारे घिग्घी बँध गई। किस तरह उसने इन्हें चुपचाप समाप्त कर दिया। दियासलाई की तीली रगड़कर उसकी रोशनी में देखा, कि दोनों की गर्दन में चीते के कीले गड़ने के निशान मौजूद थे और इन गहरे घावों से अब भी खून रिस रहा था। लाशें अभी तक गरम थीं, पर जीवन का और कोई चिन्ह उनमें बाकी नहीं था। इतने घने और असुरक्षित जंगल में नरभक्षक की निकटता में खड़े रहना उचित नहीं था। अतः उन दोनों शिकारियों की राइफलें लेकर तीनों जंगल से बाहर निकलने के लिए बढ़े।

"लगभग एक मील लम्बा रास्ता घने जंगल में से पार करके ही वे उस गांव के पास पहुंच सकते थे, जो जंगल के एकदम किनारे पर बसा हुआ था। पर इस घने जंगल में से नरभक्षक उन्हें सकुशल गुजर जाने देगा, इस बात की संभावना कम ही थी। फिर भी सिवाय अपने मन के भय के और कोई कारण ऐसा नहीं था, जिससे वे यह मान सकते कि चीता उनका पीछा कर रहा है। किसी प्रकार की चीते की गुर्राहट या खड़कने अथवा झाड़ियों के हिलने की आवाज, जो किसी जानवर के चलने से होती, बिलकुल सुनाई नहीं पड़ी। फिर भी केवल मन में भय होने के कारण वे तीनों बहुत संभलकर और सतर्क होकर चल रहे थे। वे बार बार मुड़कर देखते थे और अंधेरे में बहुत गौर से देखने के कारण उनकी आंखें थकावट अनुभव कर रही थीं। एक बार बाईं ओर के जंगल में से कुछ ऐसी आवाज भी आई, जैसे कोई चीज ऊंचाई से नीचे की ओर फिसली हो। वे चौकन्ने होकर खड़े हो गये और आगे सुनने का प्रयत्न करने लगे। पर उसके बाद कुछ सुनाई नहीं पड़ा।

"राम राम करके वे जैसे-तैसे गांव तक पहुंच गये। गांव के लोग सोये हुए थे। गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। गांव के अन्दर पहुंचने पर उन्हें देखकर एक दो कुत्ते जाग गये और भौंकने लगे। कुत्तों की विशेष परवाह न करके शिकारी आगे बढ़े। कोई आधा मिनट बाद ही कुत्तों का भौंकना एक डरे हुए आर्त चीत्कार के रूप में बदल गया। शिकारी सिहर उठे।

निस्सन्देह कुत्ते चीते को देखकर, जो उनका पीछा करता हुआ गांव तक आ पहुंचा था, भय से चीख उठे थे। शिकारियों ने मुड़कर चीते को देखना चाहा। वे वापस लौटे, क्योंकि गांव में आ पहुंचने के कारण अब उनका साहस फिर कुछ बढ़ गया था। पर उस अंधेरे में उन्हें कुछ दिखाई न दिया। कुत्ते जिस प्रकार भौंक रहे थे, उसे सुनते हुए वे चीते की गतिविधि के बारे में कुछ अनुमान कर सकते थे। इन अनुमानों के अनुसार चीता कुछ समय तक तो पीछे हटकर मौका ताकता रहा और तब तक कुत्ते पागलों की तरह भौंकते रहे; पर कुछ देर ठहरकर लगता है कि वह वापस लौट गया और उसके बाद कुत्तों के भौंकने का आवेग कुछ कम हो गया। शिकारी चीते का कुछ ठौर ठिकाना न पा सके।"

"फिर यह चीता मरा कैसे ?" सुभाष ने पूछा।

"कोई नहीं जानता कि यह मरा कैसे ? क्योंकि उस चीते को मारने के लिए घोषित ५०० रुपये के पुरस्कार का दावा किसी ने नहीं किया। यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह मरा कब ? जब मनुष्यों का मारा जाना बन्द हो गया, तब स्वयं ही यह अनुमान कर लिया गया कि अब नरभक्षक मर ही गया होगा। बहुत संभव है कि वह वृद्धावस्था के कारण ही मृत्यु का शिकार हुआ हो।"

चीता बार-बार मनुष्यों को मारता रहा और मनुष्य अपने सारे विज्ञान और शस्त्रों की सहायता से भी उसे मार पाने में असमर्थ रहे, यह कुछ ऐसी जानकारी थी कि सुनकर मन अस्वस्थ-सा हो उठा।

२३

वनराज के राज में

इन वनों में जिस आनन्द के लिए हम आते हैं, वह इस समय अपने पूरे विकसित रूप में सामने था। पं० हरिवंश बोले : "आइये इस जगह बैठकर दस मिनट आराम कर लें।"

बहुत थकान आ गई है, इसलिए विश्राम करना पड़े, ऐसी कुछ बात नहीं थी। आस-पास का दृश्य पं० हरिवंश को पसन्द आ गया था, इसलिए विश्राम के बहाने कुछ देर बैठकर इस दृश्य को देखने का उनका मन हो आया था। ऐतराज किसी को भी न था। सब ने अपने मनमाने बैठने के स्थान चुन लिये और विश्राम करने लगे।

चलते-चलते भी जंगल का सौन्दर्य दिखाई पड़ता है; परन्तु इस प्रकार शान्त होकर जब उस पर दृष्टिपात किया, तो उसका कुछ और ही रूप दिखाई पड़ा। सामने सघन और हरी वनस्पतियों से लदा हुआ तिकोना पहाड़ सीधा ऊंचा उठता चला गया था, जिसके पीछे नीला स्वच्छ आकाश दिखाई पड़ रहा था। यह निर्मल आकाश हरे पहाड़ की पृष्ठ-भूमि के रूप में बहुत ही रमणीय मालूम हो रहा था। जहां-तहां कुछ चीलें उड़ रही थीं, जो अपने पंखों को बिना हिलाए हवा में इस तरह तैर रही थीं, जिस तरह मछली पानी में बिना प्रयास तैरती है। कोई भी कार्य जब बिना प्रयास किया जा रहा होता है, तो उसमें एक सहज सौन्दर्य आ जाता है। शायद इसीलिए हिरन की दौड़ सुन्दर लगती है और वैसा सौन्दर्य भैंसे व हाथी की दौड़ में दिखाई नहीं पड़ता।

पहाड़ के ऊपर चढ़कर नीचे दूर-दूर तक फैली हुई उपत्यका और उससे परे दूर-दूर तक फैले हुए मैदान को देखने में एक प्रकार का आनन्द आता है। उस समय मन एक तरह के गर्व से भर उठता है। परन्तु इस गर्व के आनन्द के सदृश ही एक और भिन्न प्रकार का आनन्द तब प्राप्त होता है, जब हम किसी विशाल पर्वत की जड़ के निकट खड़े होकर उसकी विशालता का अनुभव करते हैं। शायद इसे विनय का आनन्द कहा जा सके। ऐसे समय अपनी तुच्छता का अनुभव करके भी मन में ग्लानि

नहीं होती; विस्मय और आनन्द ही होता है। इस समय सामने खड़ा हुआ ऊंचा पहाड़, जिस पर कहीं घने पेड़ थे--जिनका रंग अपेक्षाकृत कहीं गहरा था--और कहीं केवल हरी भावड़ थी--जो कुछ ही समय बाद सूखकर पीली पड़ने लगेगी--हमारे मन में इसी विनय के आनन्द का भाव भरने लगा। इस पहाड़ की चोटी के निकट का भाग, लगता है, वर्षा में टूट गया था। इस अंश में घास अथवा पौधे, किसी भी प्रकार की वनस्पति नहीं थी। यह अंश पहाड़ के शरीर पर घाव ठीक हो जाने के बाद भी बचे रह गये दाग की भांति प्रतीत होता था। आंधी और वर्षा से आत्मरक्षा करने के लिए इन पहाड़ों को भी कम प्रयत्न नहीं करना पड़ता। अपने सर्वांग पर इन्हें घास-फूस, पेड़-पौधे उगाये रखने पड़ते हैं, और इसमें जहां चूक होती है, वहीं से पहाड़ का कलेवर घिसना प्रारम्भ हो जाता है।

सौन्दर्य क्या है, इसे समझने का मैंने बहुत प्रयत्न किया है, पर अभी तक भी इस पहेली को पूरी तरह बूझ नहीं पाया। इस समय यहां बैठकर देखते हुए यह वन और पर्वत इतना सुन्दर दिखाई पड़ रहा है, इसमें क्या पूर्णतया हमारे अपने मन की स्थिति-विशेष ही कारण है, अथवा इस दृश्य में ही कुछ सुन्दरता भर उठी है? यह सत्य है कि जंगल खूब घना और हरा है। अक्टूबर में इस अपराह्न में छाया में बैठने से शीतल वायु का स्पर्श भला मालूम हो रहा है। यह भी सही है कि ढलते हुए सूर्य की किरणें तिरछी होकर पेड़ों के चिकने पत्तों पर प्रतिफलित हो रही हैं। वायु से काँपते हुए असंख्य वृक्षों के असंख्य पत्तों की सम्मिलित मर्मर ध्वनि भी कानों पर कुछ लोरी का-सा प्रमादक प्रभाव डाल रही है और इसी प्रकार का प्रभाव डालने में पंखों को बिना हिलाये उड़ती हुई चीलों का भी योग है। पर क्या यह वन-पर्वतगत सौन्दर्य ही हमें इस प्रकार मुग्ध बना डालने के लिए पर्याप्त है? क्या इससे मिलता-जुलता दृश्य हम सवेरे से नहीं देखते आ रहे हैं? क्या यह हर किसी देखने वाले को इतना ही आकर्षक और मनोमुग्धकारी प्रतीत होगा?

कोई भी वस्तु हर किसी को एक जैसी सुन्दर और आकर्षक नहीं प्रतीत होती, यह मैं भली भांति जानता हूं। इतना ही नहीं, एक ही वस्तु एक व्यक्ति को एक समय सुन्दर मालूम होती है, और दूसरे समय वही सुन्दर नहीं लगती। उठते यौवन के आवेगपूर्ण क्षणों में न जाने कितनी आकृतियां सुन्दर लगने लगती हैं। और कुछ ही समय बाद जब उन्माद का ज्वार उतर जाता है, व्यक्ति चकित होकर देखने लगता है, कि क्या ये ही वे आकृतियां थीं, जिनके सौन्दर्य ने उसे पागल बनाया हुआ था? इसलिए बहुत सम्भव है कि इस समय दिखाई पड़ने वाले वन और पर्वत के सौन्दर्य

में हमारी अपनी मनोदशा ही बड़ा कारण रही हो।

कृष्ण बोला : "क्यों भाई जी, इस जंगल म भेड़िये भी तो रहते होंगे ?"

प्रश्न किया गया था पं० हरिवंश से, उत्तर दिया सुभाष ने : "इसमें पूछने की क्या बात है ? भेड़िये तो रहते ही हैं।" ऐसा लगा, जैसे कि सिंह, बाघ और चीतों के बीच में भेड़ियों का प्रश्न सुभाष को कुछ रुचा नहीं। पर उसका उत्तर देने का ढंग कुछ अभद्र हो गया था। इस अभद्रता पर आवरण डालते हुए पं० हरिवंश ने कहा : "भेड़िये को जितना छोटा सुभाष समझता है, उतना वह वस्तुतः है नहीं। भले ही भेड़िये का आकार छोटा हो, पर उसकी हिंसावृत्ति बड़ी प्रबल है। पुराने साहित्य में यहां तक कि वेद में भी मनुष्य सिंह, व्याघ्र तथा ऋक्ष से डरते दिखाई नहीं पड़ते, परन्तु वृक का भय उन्हें बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ता है। भेड़िये न केवल उसके पालतू पशुओं को मारकर उसे भारी हानि पहुंचाते हैं, बल्कि यदि वे भूखे हों तो अवसर पाकर मनुष्य को समाप्त कर देने में भी नहीं चूकते। इन बड़े पशुओं से वस्तुतः मनुष्य का उतना वास्ता नहीं पड़ता, जितना कि भेड़िये से पड़ता है।"

मुझे खयाल आया कि सन् १९४९ और ५० की सर्दियों में लकड़-बग्घों और भेड़ियों ने उत्तर प्रदेश के लखनऊ, इलाहाबाद और कानपुर जैसे बड़े शहरों में ऐसा भयंकर उत्पात मचाया था कि सरकार को सेना की सहायता लेनी पड़ी थी। इन पशुओं की संख्या काफी बड़ी थी और इनको नर-मांस का स्वाद लग चुका था। परिणाम यह हुआ कि शहरों के कोलाहल तथा चहल-पहल से ज़रा भी बिना डरे सांझ का झटपुटा होते ही ये पशु शहर के अन्दर घुस आते थे और किसी छोटे बच्चे या बालक को उठाकर भाग खड़े होते थे। यह हाल तो तब था, जब कि ये भेड़िये एक-एक रहकर आक्रमण करते थे; अर्थात् समूह बनाकर शिकार नहीं करते थे। वैसे इस विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है कि भेड़िये समूह में शिकार करते हैं, और यह कल्पना करना कठिन है कि जब ये हिंस्र पशु दस-पन्द्रह या बीस-पच्चीस के झुण्ड में शिकार के लिए निकलते होंगे, तो ये क्या कुछ न कर डालते होंगे !

डा० अनन्तानन्द कहने लगे : "यूरोप के भेड़िये इस ओर के भेड़ियों से अधिक खूंखार होते हैं।"

डाक्टर की बात को बीच में ही काटकर मैंने कहा : "यूरोप के तो आदमी भी खूंखार होते हैं। यहां तक कि उनके धर्म-प्रचारक भी कम हिंसक नहीं होते।"

सुनकर सभी हँस पड़े। डाक्टर कहने लगे : "सो तो ठीक है। पर वहां के भेड़ियों के अधिक खूंखार होने का कुछ प्राकृतिक कारण भी है

सर्दियों के दिनों में वहां बर्फ जम जाती है। उन दिनों सभी प्रकार के पशुओं के लिए आहार की भारी कमी हो जाती है। बेचारे घासहारी पशु तो आहार के अभाव में तथा अन्य भूखे पशुओं या मनुष्यों का आहार बनकर प्राण त्याग देते हैं, पर मांसभोजी पशु इतनी सरलता से मरने को तैयार ही नहीं होते। मरने की अपेक्षा मारना उन्हें अधिक सरल जान पड़ता है। तब वे बड़ी संख्या में मनुष्य की बस्तियों की ओर बढ़ते हैं। जो कुछ उन्हें दिखाई पड़ता जाता है, उसी का वे शिकार करते हैं और उसे खा-पीकर नये आहार की खोज में आगे बढ़ते हैं। ठंडी बर्फीली रातें इन भेड़ियों की गुर्राहट से सिहर उठती हैं।"

मैं कुछ कहने ही लगा था कि पं० हरिवंश बोले : "चलिये, विश्राम काफी हो गया, अब चलें।"

पं० हरिवंश के आग्रह पर हम बैठे थे और अब उन्हीं के कहने पर उठकर चल पड़े। यह अवसर प्रसंग बदलने के लिए अच्छा था। सुभाष को नरभक्षकों का विवरण भेड़ियों की अपेक्षा अधिक रोचक लग रहा था, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि उसने छूटते ही फिर वही बात छेड़ी : "क्यों भाई जी, चीता बाघ से अधिक भयंकर होता है ?"

चीते और बाघ कोई मशीनें तो हैं नहीं कि सब एक जैसी हों। अमुक कम्पनी की अमुक मशीन अमुक मशीन से अच्छी होती है, यह तो कहा जा सकता है, परन्तु इनके विषय में ऐसा वक्तव्य दे पाना सम्भव नहीं है। एक चीता ऐसा भी हो सकता है जो अपनी भयंकरता में कई बाघों की अपेक्षा अधिक हो।

पं० हरिवंश बोले : "बाघ आकार में बड़ा होता है, और बल में अधिक होता है, पर वह पेड़ पर नहीं चढ़ सकता, जबकि चीता बहुत फुर्तीला होता है, और पेड़ पर चढ़ सकता है।"

मैंने कहा : "सुना है कि बाघ भी कभी-कभी पेड़ पर चढ़ जाता है।"

"अगर कभी चढ़ भी जाता हो, तो वह अपवाद स्वरूप ही चढ़ता होगा. परन्तु बाघ में साहस जंगल के अन्य किसी भी प्राणी की अपेक्षा अधिक होता है। तुलना में चीता भीरु प्राणी है। जरा सी भी उत्तेजना मिलने पर बाघ हाथी पर भी आक्रमण कर सकता है, जब कि चीता नरभक्षक बन जाने पर भी दिन के उजाले में आदमी पर आक्रमण करने की हिम्मत नहीं करता।"

डा० अनन्तानन्द बोले : "पर साहसी प्राणी से आपको उतना संकट कभी नहीं है, जितना कि डरपोक से। साहसी प्राणी अपनी निर्भयता के

कारण कभी न कभी आपके काबू में आ ही जायगा। पर डरपोक चीते को काबू करना बहुत कठिन है। वह सदा रात में ही आक्रमण करेगा, जब कि वह निश्चिन्तता अनुभव कर रहा होगा; और उस समय सारी परिस्थितियां उसके पक्ष में होंगी।"

मैंने कहा : "क्यों हरिवंश जी आज सोयेंगे, किस जगह ?"

यद्यपि अभी सोने का कोई समय नहीं था, परन्तु ऐसे बीहड़ वन में सोने की चिन्ता बहुत पहले ही करनी पड़ती है। समय आ जाने पर तो सोचने का अवसर ही नहीं रहता। पं० हरिवंश बोले : "कहिये तो आज धर्मकुण्ड की ओर डेरा डाला जाये। उस ओर अभी तक कभी सोये भी नहीं हैं।"

कभी न सोने की युक्ति निस्सन्देह बड़ी थी। डा० अनन्तानन्द बोले : "पर उस ओर सोने लायक कोई जगह है भी ?"

यही बात मेरे मन में भी थी। क्योंकि धर्मकुण्ड के जंगल का जो एक सम्पूर्ण चित्र मेरे मन में बना हुआ है, वह एक घने डरावने ऊबड़-खाबड़ बियाबान जंगल का है। यत्न करने पर भी मैं न सोच पाया कि उस ओर सोने लायक जगह कहां निकल सकती है, जहाँ जरा सी भी निश्चिन्तता प्राप्त हो सके।

"मन बना लीजिये, तो जगह भी कहीं न कहीं निकल ही आयेगी" पं० हरिवंश ने कहा।

कोई उपाय नहीं है। जब पं० हरिवंश चाहते हैं, तो मन भी बनाना ही पड़ेगा। पर इस धर्मकुण्ड के जंगल के पुराने संस्मरण बहुत अच्छे नहीं हैं, अतः मन बनाते हुए कुछ बहुत प्रसन्नता नहीं होगी। वैसे धर्मकुण्ड के जंगल में पहले भी दो-तीन बार जा चुका हूं, पर एक बार भी ऐसी याद नहीं आती, जब कि जंगल में जाने पर भय अनुभव न हुआ हो। दिन में जाकर दिन में ही लौट आने में भी यह अनुभव होता रहा कि जिस रास्ते पर आज भ्रमण किया, उस पर निश्चित रूप से प्राणों का संकट था। वह परिणत नहीं हुआ, यह संयोग या भाग्य की बात है; परन्तु किसी बार ऐसा भी हो सकता है कि भाग्य साथ न भी दे। एक बार मैं और पं० हरिवंश केवल यों ही भ्रमण के लिए उस ओर निकल गये थे। रास्ते-रास्ते चलते, तो जंगल शायद उतना डरावना न भी लगता; पर केवल हम दो ही तो हैं, यह सोचकर पं० हरिवंश ने रास्ता छोड़ दिया और और कभी पहाड़ियों की चोटियों पर चढ़ते और कभी नालों के साथ-साथ उतरते हम धर्मकुण्ड पहुंचे थे। यह मैं अच्छी तरह समझता हूं, और तब भी समझता था कि भालू के सिवाय जंगल का और कोई भी पशु हम पर अपनी ओर से आकर आक्रमण नहीं करेगा। पर जितने घने वन में से हम गुजर रहे थे, वह इतने एकान्त में था कि हम आसानी से कल्पना कर सकते थे कि हिंस्र पशुओं ने दिन में विश्राम

करने, सोने तथा अपने छोटे-छोटे बच्चों को रखने के लिए यहीं कहीं अपनी मांदें बनाई होंगी। और यदि जान-बूझकर या अनजाने ही हम किसी ऐसी ही मांद के पास जा निकलें, तो मांद का मालिक हमसे कुछ प्रश्नोत्तर नहीं करेगा; केवल गुर्राकर, या शायद बिना गुर्राये ही सीधा हम पर झपट ही पड़ेगा। और अगर कहीं सचमुच ही कोई हिंस्र पशु हम पर झपट पड़े तो ·····। इस प्रश्न को मैं अपने मन से दूर ही रखना चाहता था। क्योंकि इसका जो भी उत्तर सोचा जाय, वही बहुत बेडौल था। अगर झपटे, तो किस पर झपटेगा ? मुझ पर या पं० हरिवंश पर ? झपटकर मार ही डालेगा या केवल घायल करके छोड़ देगा ? चाहे मुझ पर झपटे, चाहे उन पर; और चाहे मार डाले, चाहे घायल करके ही छोड़ दे; एक भी विकल्प ऐसा नहीं था, जिससे मन किसी भी तरह निश्चिन्त हो सकता। किसी की मृत्यु का संवाद लेकर अकेले लौटना या उसे घायल दशा में उठाकर दस-बारह मील पहाड़ों की उतराई-चढ़ाई का रास्ता पार करना, चाहे मेरे लिए और चाहे पं० हरिवंश के लिए, होता दोनों के लिए मुश्किल ही। उस दिन मैंने निश्चय किया कि इन जंगलों में अगर आना ही पड़े, तो कम से कम तीन साथियों के साथ आना है। केवल एक साथी के साथ आने की अपेक्षा तो अकेले आना कहीं अधिक भला है।

और अब पं० हरिवंश फिर उसी जंगल में न केवल चलने की, बल्कि रात बिताने की बात कर रहे हैं ! वैसे इतने साथियों में रात चाहे जहां बिताई जाय, प्राणों का वैसा कोई संकट नहीं है, जैसा कि केवल दो में था; पर सोने के लायक उपयुक्त स्थान तो होना चाहिए।

पं० हरिवंश ने रास्ता धर्मकुण्ड की ओर का ही पकड़ा था। धर्मकुण्ड अनुमान से यहां से आठ-नौ मील था और इस समय चार बज रहे थे। हम समय रहते धर्मकुण्ड नहीं पहुंच सकेंगे, यह लगभग निश्चित ही था; फिर भी मुसीबत तो कोई है नहीं। बीच में ही जहां कहीं ढंग की जगह दिखाई पड़ जायगी, वहीं डेरा लगा देंगे, यह सोचकर हम पं० हरिवंश के पीछे-पीछे चल पड़े।

२४

वनराज के दर्शन

आज की रात भी हमने खुली जमीन पर ही बिताने का निश्चय किया। खुली जमीन पर इतने घने जंगल में सोना बहुत निश्चिन्त कार्य नहीं था। परन्तु मचान बनाने में समय और परिश्रम बहुत लगता। इस समय दोनों की ही गुंजाइश नहीं थी। अतः सुरक्षा के लिए अग्नि का सहारा लेने का निश्चय किया गया।

जंगल इतना घना था कि किसी भी पशु से मुठभेड़ की संभावना की जा सकती थी। जिस नाले में हमने डेरा लगाया था, वह कई पहाड़ियों को पार करके आता था और इस कारण इन पहाड़ियों के दूसरी ओर आने-जाने का वही एक सुगम मार्ग था। पशु भी यथाशक्ति सरल रास्ते को ही पसन्द करते हैं।

इन सब बातों को ध्यान में रखकर हमने बहुत सी सूखी घास एकत्र कर ली, जिसम आवश्यकता पड़ने पर तुरन्त आग लगाई जा सके। यदि पहले से ही निरन्तर आग जल रही हो, तो जंगली पशु शायद उसकी उपेक्षा भी कर दें। परन्तु रात के अंधेरे में एकाएक भड़क उठने वाली आग की उपेक्षा कर पाना किसी भी पशु के लिए, यहां तक कि नरभक्षक के के लिए भी, संभव नहीं है।

दो साल पहले हम इस ओर आये थे। उस समय मिट्टी के तेल की एक भरी हुई बोतल एक बड़ की खोखल में छिपा गये थे। इस समय ढूंढने से वह हमें प्राप्त हो गई। डाट अच्छी तरह बन्द रहने के कारण तेल उसमें ज्यों का त्यों विद्यमान था।

सूखी घास का ढेर और एक बोतल मिट्टी का तेल यदि शेर, चीतों और हाथियों से आत्मरक्षा करने का पर्याप्त साधन समझा जा सकता हो, तो हम पूर्णतः सुरक्षित होकर खाने-पीने की चिन्ता में जुट गये और जब खा-पीकर निश्चिन्त हुए, तब आकाश में तारे चमकने लगे थे।

शाम का सारा समय भूत-प्रेत, ज्योतिष और नरभक्षकों की रोंगटे खड़े कर देने वाली चर्चाएं करते बीता था। इस समय रात के अंधेरे में चुप

होकर लेटते समय वे ही बातें रह-रहकर मन में आने लगीं, और यह इच्छा होने लगी कि काश, अंधेरा इतना घना न होता।

साधना के लिए योगी और साधक एकान्त ढूढते हैं। शायद उन्हें एकान्त में लाभ भी होता है। परन्तु साधनाहीन व्यक्ति के लिए एकान्त अप्रिय और दुर्बल बना देने वाली वस्तु है। एकान्त में वृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है। और यह अन्तर्मुखी वृत्ति यदि किसी महत्कार्य में न लगा दी जाय तो निरर्थक दुश्चिन्ताओं को जन्म देकर व्यक्ति के आनन्द को समाप्त कर देती है। जिस तरह एकान्त में वृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है, ठीक उसी प्रकार अन्तर्मुखी वृत्ति वाला व्यक्ति एकान्त चाहने लगता है। यह बात चिन्ता-ग्रस्त उदास लोगों में स्पष्ट देखी जा सकती है। इस समय रात है और अंधकार है; स्वेच्छा से अंगीकृत मौन के कारण हम अकेले न होते हुए भी एकान्त में पड़ गये हैं। मन कुछ खिन्न-सा हो गया।

मृत्यु की पहेली को उमर खय्याम की तरह (कर्म का चक्र मनुज की मृत्यु, रही अनबूझ पहेली एक) मैं भी कभी सुलझा नहीं पाया। पर ऐसा प्रतीत होता है कि उमर ने इस विषय में गहराई से चिन्तन किया होगा, जबकि मुझे मृत्यु का चिन्तन करते हुए भी भय मालूम होता है। यह सही है कि अनेक एकान्त के क्षणों में मृत्यु की समस्या और उसकी बिभीषिका मेरे मन पर छा जाती है। एक दिन अवश्य मर जाना होगा; हमारा सारा जीवन मिथ्या हो सकता है, किन्तु मृत्यु की सत्यता के विषय में कोई सन्देह नहीं हो सकता; इस प्रकार के विकल कर देने वाले विचार मन में बहुत बार आते हैं; परन्तु मैं तो बलपूर्वक उन्हें भूल जाना ही पसन्द करता हूं और इन बेचैन करने वाले प्रश्नों को भूलने का एक ही उपाय है, कि व्यक्ति एकान्त को त्यागकर आमोद-प्रमोद और विनोद परिहास वाले समाज में पहुंच जाये। परन्तु इस समय ? इस समय तो इस एकान्त को त्यागने का भी कुछ उपाय नहीं है।

रह-रहकर नरभक्षक शेर-चीतों का ध्यान आने लगा। इनके लिए मनुष्य की मृत्यु का कोई मूल्य नहीं है। इनके लिए तो मनुष्य केवल पेट की आग बुझाने का साधन भर है, जबकि दूसरी ओर मरने वाला व्यक्ति किसी मां का इकलौता बेटा, सद्यः विवाहित युवक अथवा किसी बड़े परिवार की जीविका उपार्जन करने वाला एकमात्र व्यक्ति भी हो सकता है, जिसकी मृत्यु उस परिवार को भयंकर कठिनाइयों में डाल सकती है। परन्तु नर-भक्षक के लिए अपनी भूख सबसे बड़ी कठिनाई है।

यहां वनराज के राज में आकर मनुष्य का मूल्य केवल मांस का मूल्य रह जाता है। बड़े-बड़े पद और उपाधियां, विद्वत्ता और कला-कौशल ये सब मूल्य मनुष्य के अपने बनाये हुए हैं। हिंसक पशुओं के लिए केवल

इस बात का महत्व है कि उनके शिकार में मांस कितना है--वह मांस नरम और स्वादिष्ट है या नहीं ?

और यदि नरभक्षकों की दृष्टि से देखा जाये तो उनकी स्थिति भी बड़ी दयनीय है --यह बात दूसरी है कि उनके शिकार बनने वाले हम मनुष्य उन पर दया के साथ विचार करने की स्थिति में नहीं होते । बुढ़ापे अथवा अन्य किसी भयंकर आघात से अपंग और असमर्थ होकर, हिरन आदि तीव्रगामी और बलिष्ठ पशुओं को न पकड़ सकने के कारण ही तो इन बेचारे पशुओं को विवशता में मनुष्य को अपना आहार बनाना पड़ता है । इन पशुओं की सारी धूर्तता, कुशलता और शक्ति इनके जीवन की चरम आवश्यकताएं हैं । उनके अभाव में इनका जीवन चल पाना ही असंभव है ।

मैं कभी भी मनुष्य के आचरण की पशुओं से तुलना नहीं किया करता; क्योंकि मुझे पशुओं का आचरण मनुष्यों की अपेक्षा हजार गुना अधिक पवित्र और सरल प्रतीत होता है । संचय की इच्छा ने मनुष्य की सभी प्रवृत्तियों को पतित और घृणित बना दिया है । यदि कहीं शेर, बाघ और चीते भी अपने आहार का मनुष्यों की ही भांति संग्रह करने लगते या अब करने लगें, तो मनुष्य को अपने विकराल रूप का कुछ प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ सकता है । धन धान्य और अन्य ऐश्वर्य के सीमाविहीन संग्रह की इच्छा और उसके लिए सब प्रकार का प्रयत्न ही तो हमारी मानव सभ्यता की उन्नति है । मनुष्यों के अच्छे से अच्छे कानून पशु जगत की दृष्टि से भयंकर पापाचार मालूम होते हैं । पशु अपना आहार प्राप्त करके अपना पेट भरता है और पेट भर जाने के बाद अवशिष्ट भाग को छोड़कर चल देता है । आवश्यकता पूरी हो जाने के बाद उसमें उसकी कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती । इसके विपरीत मनुष्य अपनी आवश्यकता की अपेक्षा दूसरों की आवश्यकता का अधिक ध्यान रखा है । किसी वस्तु की दूसरे को आवश्यकता पड़ेगी, यह विचार आते ही वह उस वस्तु को अपने गोदामों में भर लेता है ।

और इसके बाद मनुष्य की कुटिलता ? उसकी अपने पड़ोसी को दुख देने और उसे दुखी देखकर प्रसन्न होने की प्रवृत्ति वह मनुष्य की बिलकुल अपनी निजी वस्तु है । क्रूरता को हम मनुष्यों ने 'पाशविकता' का नाम दिया हुआ है, जबकि वस्तुतः पशु केवल सताने और कष्ट देने के लिए दूसरों पर आक्रमण नहीं करते । क्रूरता को तो, यदि कहना ही हो तो, 'मनुष्यता' कहा जा सकता है ।

इसी तरह की अनेक ऊल-जलूल बातें सोचते हुए कब नींद आ गई, कुछ पता ही न चला । मेरी पहरा देने की बारी दो से तीन बजे तक निश्चित

होकर लेटते समय वे ही बातें रह-रहकर मन में आने लगीं, और यह इच्छा होने लगी कि काश, अंधेरा इतना घना न होता।

साधना के लिए योगी और साधक एकान्त ढूंढते हैं। शायद उन्हें एकान्त में लाभ भी होता है। परन्तु साधनाहीन व्यक्ति के लिए एकान्त अप्रिय और दुर्बल बना देने वाली वस्तु है। एकान्त में वृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है। और यह अन्तर्मुखी वृत्ति यदि किसी महत्कार्य में न लगा दी जाय तो निरर्थक दुश्चिन्ताओं को जन्म देकर व्यक्ति के आनन्द को समाप्त कर देती है। जिस तरह एकान्त में वृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है, ठीक उसी प्रकार अन्तर्मुखी वृत्ति वाला व्यक्ति एकान्त चाहने लगता है। यह बात चिन्ता-ग्रस्त उदास लोगों में स्पष्ट देखी जा सकती है। इस समय रात है और अंधकार है; स्वेच्छा से अंगीकृत मौन के कारण हम अकेले न होते हुए भी एकान्त में पड़ गये हैं। मन कुछ खिन्न-सा हो गया।

मृत्यु की पहेली को उमर खय्याम की तरह (कर्म का चक्र मनुज की मृत्यु, रही अनबूझ पहेली एक) मैं भी कभी सुलझा नहीं पाया। पर ऐसा प्रतीत होता है कि उमर ने इस विषय में गहराई से चिन्तन किया होगा, जबकि मुझे मृत्यु का चिन्तन करते हुए भी भय मालूम होता है। यह सही है कि अनेक एकान्त के क्षणों में मृत्यु की समस्या और उसकी विभीषिका मेरे मन पर छा जाती है। एक दिन अवश्य मर जाना होगा; हमारा सारा जीवन मिथ्या हो सकता है, किन्तु मृत्यु की सत्यता के विषय में कोई सन्देह नहीं हो सकता; इस प्रकार के विकल कर देने वाले विचार मन में बहुत बार आते हैं; परन्तु मैं तो बलपूर्वक उन्हें भूल जाना ही पसन्द करता हूं और इन बेचैन करने वाले प्रश्नों को भूलने का एक ही उपाय है, कि व्यक्ति एकान्त को त्यागकर आमोद-प्रमोद और विनोद परिहास वाले समाज में पहुंच जाये। परन्तु इस समय ? इस समय तो इस एकान्त को त्यागने का भी कुछ उपाय नहीं है।

रह-रहकर नरभक्षक शेर-चीतों का ध्यान आने लगा। इनके लिए मनुष्य की मृत्यु का कोई मूल्य नहीं है। इनके लिए तो मनुष्य केवल पेट की आग बुझाने का साधन भर है, जबकि दूसरी ओर मरने वाला व्यक्ति किसी मां का इकलौता बेटा, सद्यः विवाहित युवक अथवा किसी बड़े परिवार की जीविका उपार्जन करने वाला एकमात्र व्यक्ति भी हो सकता है, जिसकी मृत्यु उस परिवार को भयंकर कठिनाइयों में डाल सकती है। परन्तु नर-भक्षक के लिए अपनी भूख सबसे बड़ी कठिनाई है।

यहां वनराज के राज में आकर मनुष्य का मूल्य केवल मांस का मूल्य रह जाता है। बड़े-बड़े पद और उपाधियां, विद्वत्ता और कला-कौशल ये सब मूल्य मनुष्य के अपने बनाये हुए हैं। हिंसक पशुओं के लिए केवल

इस बात का महत्व है कि उनके शिकार में मांस कितना है--वह मांस नरम और स्वादिष्ट है या नहीं ?

और यदि नरभक्षकों की दृष्टि से देखा जाये तो उनकी स्थिति भी बड़ी दयनीय है --यह बात दूसरी है कि उनके शिकार बनने वाले हम मनुष्य उन पर दया के साथ विचार करने की स्थिति में नहीं होते । बुढ़ापे अथवा अन्य किसी भयंकर आघात से अपंग और असमर्थ होकर, हिरन आदि तीव्रगामी और बलिष्ठ पशुओं को न पकड़ सकने के कारण ही तो इन बेचारे पशुओं को विवशता में मनुष्य को अपना आहार बनाना पड़ता है । इन पशुओं की सारी धूर्तता, कुशलता और शक्ति इनके जीवन की चरम आवश्यकताएं हैं । उनके अभाव में इनका जीवन चल पाना ही असंभव है ।

मैं कभी भी मनुष्य के आचरण की पशुओं से तुलना नहीं किया करता; क्योंकि मुझे पशुओं का आचरण मनुष्यों की अपेक्षा हजार गुना अधिक पवित्र और सरल प्रतीत होता है । संचय की इच्छा ने मनुष्य की सभी प्रवृत्तियों को पतित और घृणित बना दिया है । यदि कहीं शेर, बाघ और चीते भी अपने आहार का मनुष्यों की ही भांति संग्रह करने लगते, या अब करने लगें, तो मनुष्य को अपने विकराल रूप का कुछ प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ सकता है । धन धान्य और अन्य ऐश्वर्य के सीमाविहीन संग्रह की इच्छा और उसके लिए सब प्रकार का प्रयत्न ही तो हमारी मानव सभ्यता की उन्नति है । मनुष्यों के अच्छे से अच्छे कानून पशु जगत की दृष्टि से भयंकर पापाचार मालूम होते हैं । पशु अपना आहार प्राप्त करके अपना पेट भरता है और पेट भर जाने के बाद अवशिष्ट भाग को छोड़कर चल देता है । आवश्यकता पूरी हो जाने के बाद उसमें उसकी कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती । इसके विपरीत मनुष्य अपनी आवश्यकता की अपेक्षा दूसरों की आवश्यकता का अधिक ध्यान रखा है । किसी वस्तु की दूसरे को आवश्यकता पड़ेगी, यह विचार आते ही वह उस वस्तु को अपने गोदामों में भर लेता है ।

और इसके बाद मनुष्य की कुटिलता ? उसकी अपने पड़ोसी को दुख देने और उसे दुखी देखकर प्रसन्न होने की प्रवृत्ति वह मनुष्य की बिलकुल अपनी निजी वस्तु है । क्रूरता को हम मनुष्यों ने 'पाशविकता' का नाम दिया हुआ है, जबकि वस्तुतः पशु केवल सताने और कष्ट देने के लिए दूसरों पर आक्रमण नहीं करते । क्रूरता को तो, यदि कहना ही हो तो, 'मनुष्यता' कहा जा सकता है ।

इसी तरह की अनेक ऊल-जलूल बातें सोचते हुए कब नींद आ गई, कुछ पता ही न चला । मेरी पहरा देने की बारी दो से तीन बजे तक निश्चित

हुई थी, अतः मैं जागने के लिए प्रयत्नशील भी न था।

× × ×

एकाएक भड़भड़ाकर हम उठ बैठे। नींद में ही हम सबको बाघ की दहाड़ सुनाई पड़ी थी। पहरे पर बैठे साथियों को किसी को भी जगाने के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ा। जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों के कारण बाघ की यह भयावनी दहाड़ हम मनुष्यों को ही नहीं, वन के सभी पशुओं को सतर्क और सचेत कर देती है।

चन्द्रमा का धुंधला प्रकाश सब ओर फैल रहा था। घड़ी में देखा; एक बजन में कुछ मिनटों की देर थी। अंधेरे में हमें जंगल भयावह मालूम हुआ था; कृष्ण पक्ष की अष्टमी के चन्द्रमा की इस मटमैली चाँदनी म वह और भी अधिक डरावना प्रतीत होने लगा। दिन म पर्याप्त प्रकाश होने के कारण भय प्रतीत नहीं होता और घने अंधेरे में भी कुछ न दीख पड़ने के कारण भय कम मालूम होता है। पर इस अपूर्ण अस्पष्ट प्रकाश में वह भय कई गुना हो उठा; क्योंकि इस समय चीजें दिखाई तो पड़ रही थीं, परन्तु वे क्या हैं, यह पता नहीं चलता था।

वह दहाड़ बाघ की ही थी, इस विषय में हमें कोई सन्देह नहीं था। इस दहाड़ के बाद सब ओर सूचीभेद्य सन्नाटा छा गया। बाघ जिस तरह दहाड़ा था, उससे दो बातें स्पष्ट थीं; एक तो यह कि वह हम से कम से कम; आधा मील दूर था और दूसरे उसका पेट भरा हुआ था। खाली पेट होने पर वह इस तरह दहाड़कर अपने शिकार को सचेत होने का अवसर न देता। बाघ की इस प्रकार दहाड़ सुनकर वन के सभी जन्तु उसकी उपस्थिति को जान जाते हैं और उससे बचने के लिए स्वयं जहां कहीं भी होते हैं, वहीं दुबककर निर्जीव की तरह चुपचाप पड़ जाते हैं। वे अपनी सहजबुद्धि से भली भांति जानते हैं, कि ऐसे समय भागने-दौड़ने का अर्थ मृत्यु के मुख में जाना है। इन सब वन पशुओं के इस तरह स्तब्ध हो जाने के कारण ही बाघ की दहाड़ के पश्चात् इतना गहरा सन्नाटा मालूम होने लगता है।

मिनट के बाद मिनट बीतने लगे, किन्तु बाघ का कोई और चिह्न प्रकट न हुआ। अभी हम यह सोच ही रहे थे, कि सम्भवतः वह किसी अन्य दिशा में निकल गया है कि तभी उसकी पहले से भी अधिक जोर की एक और दहाड़ सुनाई पड़ी। यह दहाड़ पिछली की अपेक्षा अधिक निकट से आई थी। अनुमान हुआ कि शेर नाले के साथ-साथ इसी ओर आ रहा है।

पहली दहाड़ को सुनकर हमारे शरीर में सनसनी दौड़ गई थी, और भय की उत्तेजना के कारण रोंगटे खड़े हो गये थे। परन्तु वह भय हमें इतने स्पष्ट रूप में अनुभव नहीं हुआ था। किन्तु यह दूसरी दहाड़! स्पष्ट था कि बाघ हमारी ही दिशा में आ रहा था। हम शायद इस स्थिति

के लिए तैयार नहीं थे।

दिन के समय हमने वन के पशुओं के स्वागत में कभी हिचक नहीं दिखाई। कितनी ही बार हाथियों, भेड़ियों और चीतों को छेड़ा भी है। परन्तु रात के समय जमीन पर खड़े होकर बाघ तो दूर, हाथी से भी मुठभेड़ करने का अपना हौसला नहीं है। यह बात सही है, कि इस समय बिलकुल काला घुप्प अंधेरा नहीं है। अगर होता तो क्या होता, यह कुछ कह सकना कठिन है। परन्तु इस मटमैली धुधली-सी चांदनी से हमारा भय जरा भी कम न हुआ।

बाघ दो बार दहाड़ चुका है। तीसरी बार वह अभी तक नहीं दहाड़ा। परन्तु इस सन्नाटे में भी वह चुपचाप धीमे-धीमे हमारी ओर बढ़ रहा है, यह बात हम निश्चयपूर्वक जानते थे। जब वह तीसरी बार दहाड़ेगा, तभी हम जान पायेंगे कि वह कहां तक आ पहुंचा है। इसलिए हम बड़ी अधीरता के साथ उसकी अगली दहाड़ सुनने की प्रतीक्षा करने लगे। इस अगली दहाड़ को सुन लेने से हमारा कुछ भी उपकार नही होगा; विपत्ति जरा भी दूर नहीं होगी, बल्कि कुछ और निकट आई हुई मालूम होगी; फिर भी वह दहाड़ जितनी जल्दी सुनाई पड़ जाय, उतना ही अच्छा है। अनिवार्य विपत्ति के प्रति मनुष्य की यह विचित्र मनोवृत्ति हो जाती है।

बाघ कुछ हमारी इच्छा-अनिच्छा का विचार करके नहीं दहाड़ रहा था; फिर भी वह तीसरी बार दहाड़ा। ये दहाड़ उसकी भोजनोपरान्त की तृप्ति और सन्तोषसूचक दहाड़ थीं, परन्तु क्योंकि ये निरन्तर हमारे निकट और निकटतर आती जा रही थीं——तीसरी दहाड़ लगभग दो फर्लांग की दूरी से आई थी——अतः हमारी चिन्ता बहुत बढ़ गई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपनी इस विपत्ति के लिए हम स्वयं ही पूर्णतः उत्तरदायी थे। अपने घर से बीसियों मील चलकर हम वनराज के इस निजी प्रदेश में आ पहुंचे थे। और बाघ से खुले जंगल में साक्षात्कार करने का हमें कितना चाव था! परन्तु इस समय, जबकि वह स्वयं ही कृपा करके दर्शन देने आ पहुंचा था, हमारी बड़ी तीव्र इच्छा यह हो रही थी, कि इस समय अगर रात न होकर दिन होता, तो अच्छा होता। इस समय खुली भूमि पर इस प्रकार सोने की योजना अतिसाहस मालूम हो रही थी। यह भी अब अनुभव हुआ कि गत शाम के समय की गई नरभक्षकों की चर्चाओं ने हमें दुर्बल बना दिया है। वे चर्चाएं न की जातीं, तो शायद हम इस परिस्थिति का सामना कुछ अच्छी तरह कर सकते। मन से यह बात किसी तरह नहीं निकल पा रही थी कि यह बाघ भी नरभक्षक हो सकता है। यदि हम विचार कर पाने की स्थिति में होते, तो यह नरभक्षक का भय हमें सता न

पाता, क्योंकि हम निश्चयपूर्वक जानते थे कि इस इलाके में इन दिनों कोई नरभक्षक नहीं है। परन्तु बाघ की दहाड़ की यह बड़ी विशेषता है कि यह प्रतिद्वन्द्वी के होश-हवास हर लेती है। विचार कर पाने की स्थिति ही नहीं रह पाती।

फिर भी कुछ तो करना ही होगा। बाघ हम में से किसी को लड्डू की तरह गपक ले, यह स्थिति हम किसी तरह नहीं आने दे सकते। सूखी घास का ढेर हमारे पास पड़ा था। उस पर ध्यान दिया, तो पता चला कि रात की ओस से वह सील गया है। फिर भी फूस है, जलेगा ही। मिट्टी के तेल की बोतल भी टटोल ली और ज्यों ही बाघ चौथी बार दहाड़ा, मैंने बड़ी उत्तेजित दशा में फुसफुसाते हुए कहा : "हरिवंश जी, आग लगा दें ?"

बाघ की यह दहाड़ बहुत ही पास से सुनाई पड़ी थी। जो कुछ भी किया जाना है, वह अभी किया जाना चाहिए; और विलम्ब करने से कर पाने का अवसर ही हाथ से जाता रहेगा।

"हां, लगा दीजिये", सुभाष ने कहा।

पर मैंने सुभाष की अनुमति नहीं मांगी थी, मांगी थी पं० हारवंश की। वह नहीं मिली। पं० हरिवंश बोले : "अभी रुकिए।"

हमारी विपत्तियों का मूल इसी बात में है। इस समय, जबकि बाघ अभी कुछ दूर है, एकाएक आग जलाकर और शोर मचाकर उसे भगाया जा सकता है. तब पं० हरिवंश यह प्रतीक्षा कर रहे हैं कि बाघ कुछ और पास आ जाये। बहुत सम्भव है कि निकट के रास्ते पर से गुजरते हुए इस धुंधली रोशनी में भी उसका कुछ थोड़ा-बहुत आकार-प्रकार दिखाई पड़ जाये; हालांकि बाघ के इतना निकट आ जाने पर शोर मचाने और आग जलाने का भी मौका नहीं रहेगा। क्योंकि आग और शोर से इस प्रकार एकाएक चौंककर बाघ भाग भी जा सकता है या फिर उलटकर आक्रमण भी कर सकता है। पं० हरिवंश को खतरे की ठीक जड़ तक गये बिना चैन नहीं न ! जानता हूं कि किसी दिन यह खतरे को ढूंढने-फिरने की प्रवृत्ति मंहगी पड़कर रहेगी। शेर-हाथी या चीते के पदचिह्नों को देखकर उनका पीछा करने का हमें भी शौक है, पर जब ये पदचिह्न घनी झाड़ियों और ऊबड़-खाबड़ भूमि में पहुंच जायें, आस-पास सड़ रहे मांस की बदबू आती हो, उस समय हर गुफा और हर झाड़ियों के झुरमुट में झांकते हुए हिंस्र पशु को ढूंढते फिरना हम लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक साहसी व्यक्ति का मनोरंजन है। और हाथ में बन्दूक, राइफल या आत्म-रक्षा का कोई पर्याप्त साधन हो, तब भी बात दूसरी है। बाघ या चीते से मुकाबला करने के लिए रास्ते के किनारे से तोड़ ली गई बांस की छड़ी को मैं उपयुक्त शस्त्र नहीं मानता। शायद पं० हरिवंश भी नहीं मानते, पर इससे बड़ा

शस्त्र वह कभी लेकर चलते नहीं ।

वही पं० हरिवंश हमें आग जलाने से रोककर दहाड़ते हुए बाघ की निकट आने की प्रतीक्षा करने लगे । भय एवं उत्तेजना के कारण हमारी स्थिति विचित्र हो गई थी । इससे पहले कभी बाघ ने हम पर आक्रमण नहीं किया था और न हमने किसी दूसरे व्यक्ति पर आक्रमण होते देखा ही था; फिर भी हम बाघ की भयंकरता को पूरी गहराई से अनुभव कर रहे थे । बहुत सम्भवतः यह जन्म-जन्मान्तर के संस्कार का परिणाम है । वैसे हम यह भली भांति जानते थे कि जिस पर भी बाघ आक्रमण करता है, वह अपना हाल सुनाने के लिए जीवित नहीं रहता । इस समय हमें पं० हरिवंश का आग न जलाने देना बड़ी ज्यादती मालूम हो रही थी ।

परन्तु आज सोचता हूं कि पं० हरिवंश का कुछ भी दोष नहीं था । स्वयं ही तो हमने पं० हरिवंश से आग्रह किया था कि हमें खुले जंगल में बाघ के दर्शन करा लाइए; और जब गलत या सही, बाघ के दर्शन करने का मन बना ही लिया हो, तो इस इच्छा को पूरा करने का वही उपाय था, जो पं० हरिवंश कर रहे थे । यदि बाघ को बिना देखे दूर से ही भगा देना अभीष्ट हो, तो उसके लिए इतना सब कष्ट सहने की क्या आवश्यकता थी ?

पर इतनी विवेक बुद्धि उस समय रह कहां गई थी ? जरा देर बाद फिर और आग्रह के स्वर में पूछा : "अब लगा दूँ ?"

पं० हरिवंश के सिवाय और सभी की मौन स्वीकृति मुझे मिल चुकी थी । पं० हरिवंश भी हम सबके मनोभाव को समझ रहे थे; बोले : "जरा सा और ठहरिये ।"

"यह 'जरा-सा और' ही मारेगा" मैंने मन ही मन कहा । दिया-सलाई मेरे हाथ में थी, पर मैं पं० हरिवंश की बात की उपेक्षा करके आग न लगा सका । तभी आस-पास के जंगल को कंपाती हुई सी बाघ की एक और दहाड़ बिलकुल पास ही सुनाई पड़ी । हम अनुमान कर सकते थे कि बाघ लगभग सौ गज दूर बाईं ओर दहाड़ा है । उसकी यह गर्जना संभवतः पिछली गर्जनाओं से कुछ हलकी थी, पर बहुत निकट होने के कारण यह बहुत ही डरावनी मालूम हुई । कुछ न कुछ करने के लिए हम छटपटाने से लगे । भाग जायें, पेड़ पर चढ़ जायें, शोर मचाने लगें, कुछ भी करें; पर कुछ न कुछ करें तो । पर जंगल का नियम कुछ भी करने को मना करता है । दीख तो रहा है कि इस दहाड़ के गौरव का सम्मान करने के लिए वन के समस्त चराचर निर्जीव की भांति स्तब्ध खड़े रह गये हैं । बचे रहने का यही उपाय है । पर जंगल में नित्य के निवासी न होने के कारण हम कुछ न करने को विकल हो उठे ।

फिर पूछा : "अब तो जलाऊं ?" सुभाष ने फिर कहा : "हां, हां ।"

पं० हरिवंश बोले : "जरा सा और रुक जाइये।"

यह बातचीत हमने इतनी फुसफुसाहट में की थी कि आवाज हमारे होठों से शायद ही बाहर निकली हो। इस बात को हम जानते थे कि हमारी हलकी सी आवाज भी शेर के कान में पकड़ाई दे सकती है।

हम सब जिस दिशा में बाघ था, उस ओर आतुरतापूर्वक सतर्क दृष्टि लगाये हुए थे। मेरा हृदय इतनी जोर से धड़क रहा था कि मैं उसकी आवाज स्वयं सुन सकता था। इस आग लगाने की बेकली और आंखों पर जोर डाल-डालकर जंगल को देखते हुए प्रतीक्षा में थोड़ा सा समय और बीत गया। बाघ कहां तक आ गया होगा, इसका भी कुछ अनुमान हम कर पा रहे थे। और हमारे अनुमान से अब उसे हमारी गर्दन के पास तक पहुंच जाना चाहिए था। ज्यों-ज्यों क्षण बीतने लगे, हमारी उत्तेजना और घबराहट दुगनी और चौगुनी हो उठी।

मैं पं० हरिवंश से एक बार फिर आग जलाने के लिए पूछने वाला ही था कि अवाक् रह गया। बाईं ओर कोई तीस कदम पर बाघ का धुंधला सा आकार दिखाई पड़ा। मैंने पं० हरिवंश के हाथ पर हाथ रखा। उन्होंने मुझ से पहले ही इस निश्चिन्त भाव से, शान के साथ चलते हुए आकार को देख लिया था। इस प्रकार हमने एक दूसरे को स्पर्श तथा संकेत के द्वारा बाघ की उपस्थिति की सूचना दे दी। बाघ पर दृष्टि पड़ते ही कृष्ण से न रहा गया। धीरे से, परन्तु विस्मित स्वर में बोला : 'बाघ!"

और अगले ही क्षण वनराज का वह शान से चलता हुआ आकार रुक गया। इतनी धृष्टता यहां सहन नहीं की जाती।

प्रकाश धुंधला था; पृष्ठभूमि में घनी झाड़ियों का जंगल था; हमारी उपस्थिति का आभास पाकर चलता-चलता बाघ एकाएक रुक गया और हमारी ओर देखने लगा। मेरी नाड़ियों में तो खून जमकर बर्फ की तरह ठंडा हो गया।

बाघ को हम सबने देख लिया था और उसने भी हम देख लिया होगा; या शायद न भी देखा हो। केवल क्षण भर रुककर वह फिर आगे चल दिया और पांच-सात कदम चलने के बाद ही उसका मार्ग झाड़ियों की ओट में हो गया। पं० हरिवंश धीमे से बोले : "अब आग लगा दीजिये।"

यही तो मैं चाहता था। दियासलाई की तीली डिबिया पर रगड़ी; पर हाथ कांप रहे थे। तीली जली नहीं, टूट गई। डिबिया खोलकर दूसरी तीली निकालने लगा, तो हड़बड़ाहट में सब तीलियां निकलकर बिखर गईं। इतने में सुभाष ने मिट्टी के तेल की बोतल घास के ढेर के ऊपर उलट दी। पर तीली दूसरी भी नहीं जली, वह भी टूट गई।

तभी बाघ की एक और हलकी-सी दहाड़ सुनाई पड़ी। जिससे स्पष्ट

हो गया कि वह अपने रास्ते पर बिना रुके जा रहा था और अब हम से काफी दूर था।

पं० हरिवंश ने व्यंग्य सा करते हुए कहा : "अब आग जलाकर क्या करेंगे, रहने दीजिये।"

पर बाघ की दूर जाती हुई दहाड़ ने मेरे दूर गये हुए साहस को फिर वापिस लौटा दिया था और अबकी बार जो मैंने तीसरी तीली दिया-सलाई पर रगड़ी, तो पलक झपकते ही घास का ढेर ऊंची ऊंची लपटों में भभक उठा, जिसका प्रकाश आस-पास के पेड़ों और झाड़ियों पर भी पड़ने लगा।

उसके बाद हमने बाघ की दहाड़ सुनने के लिए काफी प्रतीक्षा की, परन्तु कोई आवाज फिर सुनाई नहीं पड़ी।

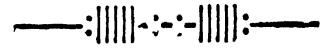

परिशिष्ट---१

सौंग के किनारे छुट्टी का एक दिन

सौंग नदी हमारे यहां से बारह मील दूर थी। इसका पानी स्फटिक की भांति स्वच्छ था। गंगा तुलना में बहुत पास पड़ती थी। यही कोई दो-ढाई मील। पर गंगा का पानी सर्दियों के अतिरिक्त अन्य महीनों में कभी इतना स्वच्छ नहीं रहता था, जितना कि सौंग और सुस्वा का। इसके अतिरिक्त एक और बात भी थी। वह यह कि गंगा का पानी बारहों महीने बहुत शीतल रहता था। गर्मियों में तो जैसे-तैसे इसमें एकाध घण्टे स्नान किया भी जा सकता है, पर सर्दियों में इसमें नहाना वनभोजन का अंग नहीं बनाया जा सकता। इसके विपरीत सौंग का पानी आनन्ददायक रूप से शीतल था। इसका तापमान शरीर के तापमान से कुछ ही कम था। अतः हम वहां जाते और घण्टों पानी में तैरते रहते या केवल पानी में पड़े रहते और गप्पें लगाते रहते। सर्दियों में इसका पानी और भी अधिक सुस्वद था। यह पानी इन दिनों कुएं के ताजे पानी के समान गुनगुना सा रहता था। जब तक हम पानी में रहते थे, ठंड बिलकुल नहीं लगती थी। हां, पानी से बाहर आने पर ठंडी हवा लगने से सर्दी अवश्य अनुभव होती थी। इसलिए जब केवल आनन्दपूर्ण आलस्य में छुट्टी बिताने का मन होता था, तो हम सौंग के किनारे चले जाया करते थे।

परन्तु बारह मील यदि पैदल ही आना और जाना पड़े, तो सारा दिन चलने में ही बीत जाय; आलस्यपूर्ण आनन्द की प्राप्ति न हो सके। इसलिए ऐसे दिनों पर हमें रेलगाड़ी की शरण लेनी पड़ती थी। जितनी रेल-यात्राएं हमने इस प्रकार की थीं, यदि वे सब उचित रूप से टिकट खरीदकर की गई होतीं, तो रेल विभाग को संभवतः कुछ सौ रुपयों की आय और हो गई होती। परन्तु वैसा कर पाना न संभव होता था और न अच्छा ही लगता था। इसका कारण संभवतः यह है कि बिना टिकट यात्रा करने में एक प्रकार की सतर्कता और आवेशपूर्ण उत्तेजना मन में बनी रहती थी, जो अपने आप में एक विचित्र आनन्द देती थी।

उस दिन भी हमने सवेरे साढ़े सात बजे की रेल पकड़ी। एक एक आने के टिकट अगले स्टेशन के लिये; क्योंकि यह स्टेशन बड़ा

था, और यहां मौके बेमौके टिकट चैकरों का एक बड़ा जत्था पुलिस की गारद तथा मजिस्ट्रेट के साथ पड़ा रहता था। ये लोग जिस किसी को भी पकड़ पाते थे, उस पर इतना बड़ा जुर्माना करते थे कि जैसे उसने सारे रेलवे डिवीजन की सैर अभी-अभी पूरी कर डाली हो। यह जुर्माना बहुत सख्ती से वसूल किया जाता था और जुर्माना न चुका पाने की हालत में अभियुक्त को जेल भेजते इन्हें जरा संकोच न होता था।

हमारा टिकट चाहे एक ही आने का था, पर वह अमोघ रक्षाकवच था। उसके होते हुए उस बड़े स्टेशन पर हमें टोका नहीं जा सकता था। और वहां परिस्थिति को अनुकूल या प्रतिकूल देखकर हम आगे के लिए यथोचित उपाय सोच सकते थे।

स्टेशन पर पहुंचकर पता चला कि आज वह जत्था वहां नहीं है। कुछ बेफिक्री हुई। गाड़ी ने काफी देर खड़े रहना था, अतः हम लोग उतरकर इधर-उधर प्लेटफार्म पर टहलने लगे। ह्वीलर के स्टाल पर पड़ी करीब-करीब सारी पत्र-पत्रिकाएं उलट-पलटकर पढ़ डालीं। स्टाल वाले को मन ही मन हमारे इस व्यवहार पर घोर आपत्ति थी, क्योंकि वह भांप गया था कि हम लोग केवल उन्हें देखने वाले हैं, खरीदने वाले नहीं। परन्तु, पता नहीं, अपना क्या हित सोचकर वह चुप ही रहा; उसने हमें पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने से रोका-टोका नहीं। आखिर इंजन ने सीटी दी और हम भाग कर एक डिब्बे में जा चढ़े। इससे अगले स्टेशन पर ही हमें उतर जाना था। पर उस स्टेशन का किराया यहां से पांच आने था। हम लोग गिनती में आठ या नौ थे। अगर चैकर हमें बीच में पकड़ पाता, तो उस दिन वह बहुत खुश-खुश घर लौट सकता।

गाड़ी पहाड़ियों के पास से होती हुई, सूखे हुए नदी-नालों को पार करती हुई घने जंगल में प्रविष्ट हो गई। हालांकि जहां हम लोग रहते हैं, उसे भी पूरा शहर या गांव तक का वातावरण नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वहां भीड़-भाड़ बिलकुल नहीं है और मकान भी बहुत दूर-दूर बने हुए हैं; पर इस जंगल में प्रवेश करते ही मन एक विचित्र ही भाव से भर उठता है। पता नहीं, क्यों ऐसा लगने लगता है कि जैसे हमारा रहने का असली स्थान यही है और नगर एक प्रकार से परदेस हैं, जहां हम विवश होकर रह रहे हैं। अन्त में विश्राम करने के लिए हमें यहीं आना है।

जंगल खूब घना था। सरदियां बीत रही थीं, इसलिए पत्ते पीले पड़ रहे थे और रह-रहकर हवा के झोंकों से उड़ते हुए भूमि की ओर गिरने लगते थे। एक ओर रेल की पटरी के साथ साथ ही पहाड़ी लगी चल रही थी और दूसरी ओर कहीं-कहीं, जहां जंगल कुछ हलका हो जाता था, दूर तक मैदान जैसा दखाई पड़ता था, और उस मैदान के पार काफी दूर पर

पहाड़ियों की लम्बी शृंखला दिखाई पड़ती थी।

यह यात्रा थोड़ी-सी देर की ही तो थी; सिगनल दिखाई पड़ा और गाड़ी प्लेटफार्म पर पहुंचकर रुक गई। जंगल में बना हुआ छोटा सा स्टेशन था। अधिकांश यात्री यहां बिना टिकट ही उतरते थे। स्टेशन के अधिकारी भी इस विषय में इतने ही जागरूक थे कि जो उन्हें टिकट दे जाये, उससे टिकट ले लें। ऐसा मूर्ख या अड़ियल कोई यात्री न था, जो टिकट न होते हुए भी स्टेशन के फाटक में ही बाहर निकलने की चेष्टा करे, जबकि वह किसी भी ओर मुंह उठाकर कदम बढ़ाता हुआ निष्कंटक स्टेशन से बाहर पहुंच सकता था। हम भी गाड़ी से उस तरफ उतरे, जिस तरफ प्लेटफार्म बना हुआ नहीं था। कोई सौ कदम आगे चलने पर स्टेशन की रेलिंग ही खत्म हो गई। हम किसी से झगड़ा करें, ऐसा अवसर ही उपस्थित नहीं हुआ।

स्टेशन के बाहर एक पुरानी दूकान थी। इस दूकान का लाला हमको पहचानता था। यह दूकान अपने पेड़ों के कारण मशहूर थी। जंगल के बीच में होने से यहां गूजर दूध सस्ता दे जाते हैं, और उससे मावा बनाने के लिए लकड़ी करीब करीब मुफ्त ही मिल जाती है। इसलिए केवल मन में जरा सी ईमानदारी होने के कारण यह अच्छे पेड़े बनाकर बेच सकता था। यहां दूध और दही भी प्रायः सदा ही मिल जाता था और वह अच्छा होता था। अपने दिन के भोजन के लिए हमने रसद यहीं से खरीदी। चार सेर दूध लिया। चावल, आटा, आलू, नमक, मसाले, दियासलाई आदि आवश्यक सामग्री खरीदी। चाकू मेरी जेब में पहले से पड़ा था। घी देसी लिया जाय या विलायती, इस पर काफी देर तक बहस रही। अन्त में विलायती ही लिया गया; हालांकि इससे प्रसन्नता किसी को भी न हुई।

लाला से एक कड़ाही, एक पतीला और एक पौनी ले ली। रोटी पकाना झंझट का काम था। पूरियां बनाना अपेक्षाकृत सरल था। सब सामान उठाकर हम आगे चल पड़े। यहां से पैदल डेढ़ मील चलकर हम सौंग पहुंच जायेंगे। सड़क पक्की बनी हुई है। बीच-बीच में कोई लारी या कार हमारे पास से गुजर जाने लगी। कुछ तीर्थ यात्री भी अपनी रंग-बिरंगी पोटलियां संभाले सड़क पर जा रहे थे। हमारी चाल उनसे तेज थी, इसलिए वे पीछे छूट जाने लगे।

पहले हम सुस्वा पर पहुंचे। इसका पानी सौंग की अपक्षा अधिक साफ है। पर इसमें स्नान के लिए काफी पानी नहीं है। हम कोई बीस फीट ऊंचे पुल के ऊपर खड़े हुए थे, फिर भी नीचे पानी में तैरती हुई मछलियां साफ दिखाई पड़ रही थीं।

कुछ देर बाद हम सौंग पर पहुंच गये। इसका दूसरा नाम घोड़ा-पछाड़ भी है। यों घोड़ापछाड़ एक तेज दौड़ने वाले सांप का नाम भी होता है। दोनों की तेज चाल ही इनके इस नामकरण का मूल है। इसका पानी बहुत तेज है और बरसात में यह लगभग हर वर्ष ही अनेक मनुष्यों और पशुओं को बहा ले जाती है।

इस समय नौ बजे थे। सोचा, पहले भोजन बनाने का काम एक किनारे लगा दिया जाये, फिर बेफिक्र नहाते रहेंगे। इसलिए पत्थरों से दो चूल्हे बनाकर एक पर पतीली में खीर चढ़ा दी और दूसरे पर कड़ाही में आलू उबलने रख दिये। पूरियां तो जहां तक हो सके, गरम ही खाई जायें तो अच्छा है।

इस सब काम में जरा सी देर लगी। इसके खत्म होते ही हम लोग नहाने के लिए तैयार हो गये। इन दिनों इस नदी में बहुत पानी नहीं रहता। साधारणतया इसमें कमर कमर भर पानी था, पर अनेक जगह बड़े-बड़े गड्ढे थे, जिनमें इतना पानी था कि हाथी भी डूब जाय। पर पानी का बहाव बहुत तेज होने से इतने कम पानी में भी पैर जमाकर खड़ा होना कठिन मालूम होता था। और जहां कहीं धारा एकदम नीचे ढलान पर बहने लगती थी, वहां दांता-सा बन जाता था। ऐसे स्थानों पर पानी की गहराई केवल घुटने घुटने रह जाती थी। पर ऐसे स्थानों पर पानी की चाल और भी तेज हो जाती थी। इनमें न तो तैरा ही जा सकता था और न तैरते-तैरते रुककर खड़ा ही हुआ जा सकता था।

जहां हम खड़े थे, वहां किनारे पर कंकरीट की बड़ी-बड़ी चट्टानें थीं। बरसात में इस नदी के उपद्रव से सड़क और नदी पर बने पुल की रक्षा के लिए ये बनाई गई थीं। धारा एक मोड़ खाती हुई इन तक आती थी और इनसे टक्कर मारती थी, जिससे इनके पास भी पानी काफी गहरा हो गया था। पहली छलांगें हमने इसी पानी में लगाईं।

दस-पन्द्रह हाथ मारे होंगे कि हम नदी के पार हो गये। नदी का पाट बस इतना ही चौड़ा था। पार बढ़िया बालू का कोमल फर्श दूर तक बिछा हुआ था। हवा की तरंगों ने इस बालू की समतल सतह पर भी लहरें सी बना दी थीं। धारा में से निकले और इस बालू पर लेट गये। असल में यह हमारी गंगा की आदत पड़ी हुई थी, जहां कि गरमियों में स्नान करते हुए कुछ देर तक पानी में रहने के बाद कुछ देर गरम बालू पर पड़े रहना बहुत अच्छा लगता था, क्योंकि वहां पानी की ठंड तेज लाल मिर्च के स्वाद की तरह होती थी, जिसे सेवन करने से 'सी सी' भी करना पड़ता है, पर जिसका आनन्द लिये बिना भी रहा नहीं जाता। यहां पानी भले ही उतना ठंडा न था, पर इन दिनों में यह बालू भी वैसी गरम न थी। कुछ देर

इसी बालू पर पड़े रहे और तरह-तरह की गपशप करते रहे।

फिर उठे, तो विचार बना कि बहाव के साथ कुछ दूर ऊपर चला जाय, वहां से छूटकर बहते हुए आयेंगे। गंगा में जब कभी इस तरह का प्रोग्राम बनता था, तो एक-दो मील ऊपर से छूटकर आना मामूली बात थी। पर यहां इतनी दूर से बहते आने की गुंजाइश इसलिए नहीं थी, क्योंकि पानी सब जगह काफी गहरा न था, जबकि गंगा में कहीं भी पानी की कम गहराई की शिकायत नहीं रहती। फिर भी हम कोई तीन एक फर्लांग निकल गये। एक-दो साथी, जिन्हें ऊपर जाने का विशेष उत्साह नहीं था, वहीं रह गये, जिससे हमें यह निश्चिन्तता रही कि कोई हमारे कपड़े उठाकर नहीं भाग जायेगा।

जब हम ऊपर की ओर जा रहे थे, तभी हम यह अनुभव होने लगा था कि बहते हुए लौटकर आना बहुत आसान काम न होगा, क्योंकि कई जगह पानी तैरने के लिहाज से बहुत खराब था। गहराई बहुत कम थी और बहाव बहुत तेज था। दो एक बुद्धिमान साथी कुछ पहले ही रुक गये; बोले : "आप लोग ऊपर से आइये, हम लोग यहां से आपके साथ हो लेंगे।" जिनमें उत्साह अधिक था, वे लोग ऊपर तक चले गये।

जब हम पानी में कूद पड़े और तैरने लगे, तो ऐसा अनुभव हुआ कि हम खूब तेज साइकिल पर सवार होकर भागे जा रहे हैं। सुभाष आगे-आगे जा रहा था। एकाएक वह जोर से चिल्लाया : "ओफ !" उसके पीछे रणजीत था। क्षणभर बाद उसकी चीख सुनाई दी। अभी उनसे कुछ पूछता कि मेरे पांव जोर से नीचे के पत्थरों पर लगे। ठीक ऐसा अनुभव हुआ, जैसे किसी ने पत्थर उठाकर मारा हो। हम सबने यथाशक्ति साव-धानी से हाथ-पैरों को ऊपर ही ऊपर रखकर बहना शुरू किया। एक दो ने तो पीठ नीचे की ओर करके उलटा तैरना शुरू किया। पर शीघ्र ही जहां-तहां बड़े-बड़े पत्थर दिखाई देने लगे। इसमें सन्देह न था कि यदि इनमें से किसी से भी इस तेज चाल से जाते हुए स्पर्श हो गया, तो वह काफी समय तक याद रखना पड़ेगा। रवीन्द्र ने हड़बड़ाकर पांव टेककर खड़ा हो जाने की चेष्टा की, क्योंकि उसे लगा कि वह उन पत्थरों से बचता हुआ न तैर सकेगा। पर उसका यह प्रयत्न मूर्खतापूर्ण सिद्ध हुआ। पानी ने उसे जोर से धक्का देकर फिर पानी में गिरा दिया और जिन पत्थरों से वह बचना चाहता था, उन्हीं की ठोकर उसे खानी पड़ी। फिर किसी ने खड़े होने का यत्न नही किया।

बहुत जल्दी ही अनुभव और बुद्धि से हमने सहायता ली। अब तक हम बहाव की ओर मुंह करके सीधे तैर रहे थे, पर अब हमने मुंह मोड़ लिये और इस प्रकार तैरना शुरू किया, मानों हम पानी को चीरते

हुए बहाव के विरुद्ध तैर रहे हैं। इसमें हम यह भी कोशिश करते कि यदि हाथ नीचे कहीं पत्थर पर लग सके, तो लगा दें, जिससे हमारे बहने की चाल कम हो जाय। इस प्रकार बहते हुए जब हमारे हाथ नीचे पत्थर को छूते थे, तो वह चोट नहीं करता था।

यह उथला पानी कुछ ही देर रहा। शीघ्र ही हम गहरे पानी में आ गये। यहां बहाव भी हल्का था। मैंने पांव जमीन पर लगा दिये और खड़ा हो गया। पानी छाती तक था। पैरों के नीचे पत्थर चिकने थे, इसलिए खड़े रहना कठिन हो गया। कुछ दूर आगे चलकर राजीव ने खड़े होने की कोशिश की, तो वहां पानी इतना गहरा हो गया था कि पैर जमीन पर लगे ही नही। इस जगह हम मजे से डुबकियां लगाते और किल-कारियां मारते बहने लगे। मैं शरीर को ढीला छोड़कर मुर्दा तैरी तैरता हुआ बह रहा था कि अचानक किसी ने मेरा पैर पकड़ा और नीचे को खींचा। मगरमच्छ का भय तो मुझे क्षण भर को भी नहीं हुआ, परन्तु असावधान रहने से डुबकी मैं खा ही गया। मैंने डुबकी खिलाने वाले को तुरन्त पकड़ने की चेष्टा की, पर वह सावधान था और एकदम पकड़ से बाहर हो गया। मैंने और सुभाष ने करीब-करीब साथ ही सिर पानी से बाहर निकाला। वह हंस रहा था। बोला : "विराज जी, संभलकर तैरिये। पानी में मगर-मच्छ मालूम पड़ते हैं।" मैंने कहा : "हां, अभी एक मगर ने मेरा पांव पकड़ा था। अब की किसी और का न पकड़ ले।"

सुभाष मेरी ओर देखता हुआ अभी हंस ही रहा था कि अचानक वह भी डुबकी खा गया। उसके डुबकी खाते ही मैं भी तेजी से हाथ मारता हुआ उसके सिर पर जा पहुंचा। उसे यह डुबकी रणजीत ने दी थी, क्योंकि वही पानी की सतह पर दिखाई नहीं पड़ रहा था। ज्योंही कुछ देर जल में समाधि लगाने के बाद सुभाष ने सिर पानी से बाहर निकाला, त्योंही एक बार मैंने उसका सिर फिर पानी में नीचे दबा दिया। कुछ देर तक हम दोनों ही पानी में संघर्ष करते रहे। वह छूटना चाह रहा था, क्योंकि वह पहले ही एक डुबकी खा चुका था और मैं उसे कुछ देर और नीचे ही डुबकी खिलाये रखना चाहता था। जल्दी ही यह झड़प समाप्त हो गई। सुभाष तो छूटकर ऊपर निकल गया, पर अब किसी ने मेरा सिर ऊपर से नीचे को दबाया हुआ था। साफ पानी में मैंने नीचे की ओर देखा, तो पत्थर बहुत पास ही दिखाई पड़ने लगे थे। मैंने पैर जमीन पर टिका दिये और सीधा खड़ा हो गया। सिर दबाने वाला वीरेन्द्र था। उसने भाग जाने की कोशिश की, पर उसका पैर मेरे हाथ में आ गया। इसके कारण उसे कुछ देर कष्ट भुगतना पड़ा।

अब पानी फिर उथला होता जा रहा था। लगता था कि फिर

पिछली जगह जैसा दांता पास आता जा रहा है। रणजीत ने इस दूसरी अग्नि-परीक्षा में भाग लेने से इनकार कर दिया। उसके घुटने में पहले ही एक करारी चोट आ गई थी। वह दांता आने से पहले ही तैरकर किनारे पर हो गया और दांते वाली जगह उसने पैदल पार की। पर बाकी लोग तब तक फिर दांता पार करने को तैयार थे, जब तक कि उन्हें कम से कम रणजीत जितनी ही चोट न आ जाय।

इस बार हम पहले से सावधान हो गये थे और नीचे के पत्थरों की मार से बचने के लिए जो कुछ उपाय हो सकता था, बरत रहे थे। परन्तु एक जगह यह दांता पिछले दांते से अधिक खराब था। यहां धारा का पाट कुछ चौड़ा हो गया था और गहराई बहुत ही कम रह गई थी। पानी की धार लगभग १३० अंश का कोण बनाती हुई नीचे की ओर बहती थी। यहां चोट खाने से कोई न बच सका। जब हम खड़े होने की चेष्टा करते, तो लगता कि खड़ा होना अधिक कठिन है; और जब तैरना चाहते, तो लगता कि तैरने की अपेक्षा खड़ा होना अधिक आसान रहेगा। हमने दोनों ही यत्न किये और दोनों में ही चोटें खाईं। धारा ने इच्छानुसार हमें पत्थरों पर पटका। पत्थर चिकने थे, और उन पर काई जमी हुई थी, इसलिए यह कुशल थी कि उनसे चोट लगने पर भी खरौंच नहीं आती थी और खून नहीं निकलता था। पर चोट का बाकी मजा पूरा मिल जाता था। हमें आश्चर्य हो रहा था कि किस प्रकार इतना कम गहरा पानी हमें इस प्रकार असमर्थ बनाकर जबरदस्ती बहाये ले जा रहा है।

यह दांता भी पार हो गया और अब हम वहीं आ पहुंचे थे, जहां किनारे पर हमारी खीर चूल्हे पर चढ़ी हुई थी और आलू उबल रहे थे। प्रेमदेव और यशवन्त वहीं नहा रहे थे। अभी आगे धारा का बहाव दूर तक अच्छा था, अतः हमने पानी में से निकलने का यत्न नहीं किया और आगे बहते चले गये। इस ओर पानी की गहराई काफी थी। अतः इस ओर तैरने की अधिक सुविधा थी। हम बहते गये। कुछ दूर आगे चलकर दीखा कि इसी नदी की एक और शाखा दूसरी ओर से बहती हुई आकर इसी शाखा में मिल रही है। इन दोनों का संगम बिल्कुल छोटा-सा संगम था। हम निशंक तैरते हुए वहां जा पहुंचे। वीरेन्द्र सबसे आगे था। एकाएक उसने डुबकी लगाई। हमने विशेष ध्यान न दिया। जब रणजीत तैरता हुआ उसी स्थान पर पहुंचा तो चिल्लाया : "भंवर!" और वह पानी में डुबकी खा गया। हम संभल गये। पांच-सात सैकण्ड में ही दोनों फिर ऊपर आ गये। हमारे आश्चर्य की सीमा न रही। इतना थोड़ा सा पानी और वह भी इतना कम गहरा (क्योंकि यहां पानी की गहराई मुश्किल से सात फीट रही होगी), इतने मजे से भंवर में डुबकी दे सकता है। सोच-सोच कर हमें हँसी ही

अधिक आई।

यहां हम पानी में से निकल आये और किनारे-किनारे ऊपर की ओर लौटने लगे, जहां हमारा सामान रखा था, और भोजन बन रहा था। पास पहुंचे तो देखा कि बन्दरों का एक दल कुछ ताक-झांक कर रहा है। वैसे जंगली बन्दर बहुत डरपोक होते हैं; गंगा पार जंगलों में जब कभी हमने बन्दरों के झुण्ड देखे हैं, तो वे जरा सा शोर मचाते ही दूर भाग जाते हैं; पर इस ओर के बन्दर हरिद्वार आदि तीर्थों में आने वाले यात्रियों की श्रद्धा से लाभ उठाकर बहुत साहसी और धृष्ट हो गये हैं। कई बार ये बन्दर स्त्रियों और बच्चों पर आक्रमण करते हैं और उनसे सामान छीनकर भाग जाते हैं। जहां तक हमारा सम्बन्ध है, बन्दरों के लिए यह विकास बुरा हुआ। गंगापार के बन्दर इतने डरपोक होते हैं कि हम उन्हें कभी पत्थर मार पाने में सफल नहीं हुए, पर इस पार के मोटे-मोटे धृष्ट बन्दरों ने हमारे पत्थरों की मार खूब खाई है।

बन्दरों को देखते ही हमने बिलकुल चुपचाप, बिना झुके, पैर के पंजों से पत्थर उठा-उठा कर हाथों में ले लिये। क्योंकि यह निश्चित था कि यदि हम झुककर पत्थर उठाते, तो बन्दर हमें पत्थर उठाते देख लेते और छूमन्तर हो जाते। बन्दरों को पत्थर मारने का विज्ञान भी हमें स्वयं ही आविष्कृत करना पड़ा है। जिस तरह यूरोप में प्रारम्भिक वैज्ञानिकों को अन्धविश्वासियों के हाथों बहुत कष्ट सहने पड़े थे, वैसे ही हमें भी इस विज्ञान को विकसित करने में अनेक पुराण-पन्थी हनुमान जी के भक्तों से मुठभेड़ करनी पड़ी है। एक दिन भीमगोडा के पास एक बन्दर एक बच्चे के हाथ से एक पोटली छीन भागा। बच्चा बेचारा घबराकर और डरकर रोने लगा। हमें बन्दर पर गुस्सा आया। उसे दो पत्थर हम लोगों ने जड़ दिये। इस पर एक कोई प्रभावशाली से दिखाई पड़ने वाले सज्जन एक इट उठाकर हमें धमकाने लगे : "अगर मैं यह ईंट तुम लोगों को मारूं तो कैसा हो?" गुस्सा तो हम लोगों को चढ़ा ही हुआ था, बोले : "यह तो जब तक आप मार न दें, तब तक पता नहीं चल सकता।" उन सज्जन ने ईंट मारने का इरादा त्याग दिया और उसके बजाय जली-कटी सुनाने लगे। जब उसमें ईंट मारने का ही दम न रहा, तो बेचारा जबान चलाने में क्या जीतता। हमने कहा : "यह बन्दर तुम्हारा बाप मालूम होता है। तभी तुम्हारी शक्ल उससे इतनी अधिक मिलती है।"

खैर; कहने का मतलब यह कि बन्दर को पत्थर मारने का विज्ञान हमने उतना ही विकसित कर लिया है, जितना कि ऋतु सूचना विज्ञान विकसित हो चुका है। जितनी बार इन लोगों की ऋतु सम्बन्धी भविष्यवाणियां सही निकलती हैं, उससे अधिक बार हमारे पत्थर के

निशाने सही लगते हैं। पत्थर हाथों में उठाकर हम फैल गये। एक ही बन्दर को हम सब ने निशाना बनाया था। जब हम उसके कुछ पास पहुंच गये, तो एक दो तीन बोलकर हम सबने एक साथ उस पर पत्थर फेंके। पांच में से दो पत्थर जाकर उसे लगे। एकाएक उछला। फिर मुड़कर उसने एक घुड़की दी। इतने में एक और पत्थर उसके कान के पास से सन्नाता हुआ निकल गया, जिससे वह बाल बाल बचा। उसके बाद उसने घुड़कना छोड़ वह दौड़ लगाई कि उसने आसपास के पेड़ों तक को न देखा। पच्चीस तीस कदम दूर जाकर वह रुका और झपटकर एक पेड़ पर चढ़ता चला गया। ऊपर, डालियों में पहुंचकर ही उसने फिर घुड़कने की हिम्मत की। उस बन्दर के भागते ही और सब बन्दर भी हुर्र हो लिये थे। फिर किसी को निशाना कहां लगना था।

नहाने का यह पहला दौर खत्म करके अब हमें यह फिक्र पड़ी कि भोजन निर्माण की प्रगति कुछ तीव्र की जाये। आलू उबल चुके थे। उन्हें छीलने में तीन साथी जुट गये। बाकी पूरियां बनाने की तैयारी में लगे।

पूरियां बनने में कोई एक घण्टा लग गया होगा, क्योंकि कड़ाही छोटी थी। पूरियां बन चुकने के बाद बचे हुए घी में पहले प्याज छौंक दिये और उसके बाद छिले हुए आलू कुचलकर उसमें डाल दिये गये। इसे हलकी आंच पर छोड़ दिया गया। खीर अब तक बनकर तैयार हो चुकी थी। उसे उतारकर पानी में शीतल होने के लिए रख दिया गया।

अब स्नान का दूसरा दौर शुरू हुआ। इस समय तक धूप काफी तेज हो गई थी। पानी का स्पर्श इस समय और अधिक अच्छा अनुभव हो रहा था। इस बार हमने बहुत दूर से छूटकर आने की कोशिश नहीं की। केवल उतने ही हिस्से में नहाते रहे, जितने में पानी खूब गहरा था। हम नहा रहे थे, हँस रहे थे और बातें कर रहे थे, कि तभी एक जोरदार धड़ाके की आवाज सुनाई पड़ी। वस्तुतः आवाज बहुत जोर की नहीं थी, क्योंकि वह बहुत दूर से आई मालूम होती थी। पर धड़ाका जोरदार रहा होगा, जिसकी इतनी दूर की आवाज भी हमें यहां सुनाई पड़ी। इस जंगल में शिकार खेलने वाले लोग काफी आते रहते हैं, इसलिए आवाज कुछ विशेष चौंकाने वाली नहीं थी। बल्कि यदि हम लोगों के कान जंगलों में जाकर छोटी से छोटी आवाज को भी पकड़ने के अभ्यस्त न हो गये होते, तो शायद हमारा ध्यान इस आवाज की ओर जाता भी नहीं।

वैसे तो भोजन का समय भी हो गया था, और कुछ नहाने और तैरने का भी प्रभाव था कि हमें भूख खूब जोर की लग आई। वीरेन्द्र ने प्रस्ताव किया कि अब स्नान समाप्त करके भोजन किया जाये। सुभाष ने और मैंने तुरन्त इसका समर्थन किया।

जंगल में पत्तों की कमी नहीं थी; पास ही लगी एक बेल से बड़े-बड़े पत्ते तोड़ लिये और उन्हें पत्तलों और दोनों के रूप में प्रयुक्त कर लिया। खीर खूब गाढ़ी बनी थी। आग पर देर तक पड़े रहने से उसका रंग कढ़कर लाल भूरा सा हो गया था। जब हमने आलू की सब्जी को तैयार करके आग पर छोड़ दिया था, तब ख्याल था कि यह रसेदार बनी है। पर वह भी अब तक काफी गाढ़ी हो गई थी और आलू रसेदार न रहकर लिपटवां बन गये थे। प्याज की खुशबू अग्रदूत की तरह आकर खाने का आमन्त्रण-सा दे रही थी। सुभाष और रणजीत ने भोजन सबको परोस दिया। अन्त में खीर के पतीले की समस्या उलझी रह गई। उसमें काफी खुरचन लगी रह गई थी। इस खुरचन का स्वाद खीर से भी अधिक अच्छा होता है। इस विषय में स्थायी सिद्धान्त पर अमल किया गया। जो पतीले में से खुरचन खाये, वही उसे मांजकर साफ करे। इस शर्त के बाद मामला बहुत कुछ संतुलित हो जाता था। वीरेन्द्र ने रुचि दिखाई, इसलिए पतीला उसे दे दिया गया।

पेड़े भी थे। हर एक के हिस्से में तीन तीन पेड़े आते थे। वे सबको बांट दिये गये। पूरियां यथेष्ट थीं। लगता था कि उनका बहुत बड़ा भाग बच जायेगा, जो हमें पोटली में बाँधकर वापिस ले जाना पड़ेगा। उनका ढेर बीच में रख दिया गया, जिससे हर कोई उठाता जाय और खाता जाय।

पानी के लिए कोई खास बर्तन नहीं था। धार एक दम पास बह रही थी। जिसे भी इच्छा हो, वहां जाकर पानी पी सकता था। भोजन जिस ढंग का था, उसके साथ बीच-बीच में पानी की आवश्यकता अनुभव होने लगी। पहले प्रेमदेव पानी पीने गया। उसके बाद मैं गया। पानी पीकर जो वापिस आकर बैठा, तो देखता हूं कि मेरी पत्तल पर से तीनों पेड़े गायब हैं। सबकी शक्लों पर निगाह डालने पर भी कुछ अन्दाज न कर सका कि करतूत किसकी है, क्योंकि सभी हँस रहे थे। मेरे पास ही यशवन्त बैठा हुआ था। वह बेचारा बहुत ही सीधा लड़का था। निश्चित ही यह उसकी करतूत नहीं थी। सुभाष ने उससे कुछ बात कहनी चाही, जिसके लिए उसे मुंह घुमाकर कान उसके पास करके सुनना पड़ा। मैंने देखा कि उसकी पत्तल पर उसके तीनों पेड़े पड़े थे। मैंने सब लोगों के देखते देखते निर्विकार भाव से उन तीनों पेड़ों को उठा लिया। सब मिलकर शोर मचाने लगे: "यशवन्त, तेरे पेड़े!" यशवन्त मुड़ा, तब तक पत्तल खाली थी। रणजीत बोला: "यशवन्त, विराज जी ने उठाये हैं।"

मैंने कहा: "मेरे पास तो अपने ही तीन पेड़े हैं।" कहकर मैंने उसे सावधानी के साथ, कि कहीं वह झपट्टा न मार ले, उसे तीनों पेड़े दिखा दिये। अब सब सावधान हो गये थे, और किसी के भी पेड़ों को साफ कर देना

सम्भव नहीं था। आखिर सुभाष को तीन पेड़े यशवन्त को लौटाने पड़े।

भोजन से हमारा पेट तो यद्यपि भर गया था, पर वह बीच में रखा पूरियों का पहाड़ एकदम समाप्त हो गया था। दो-चार पूरियां बची थीं, जिन्हें कि समाप्त करने में उत्साही लोग जुटे हुए थे। जब रणजीत पेट पर हाथ फेरता हुआ पानी पीने गया, तो एकाएक बोला: "विराज जी, देखिये, मछली मरी पड़ी है।" मछली मरी पड़ी होना अचरज की बात नहीं थी। पर इतनी देर से यह हमें दिखाई क्यों नहीं पड़ी थी। मैंने पास जाकर देखा, तो वह ताजी मरी हुई मालूम हुई। उसे उठाकर मैंने किनारे पर डाला। इधर-उधर जो और दृष्टि दौड़ाई, तो एक और मछली परले किनारे पर दिखाई पड़ी। वह भी इसी तरह पड़ी थी। मेरे मन में एकाएक उस धड़ाके का ध्यान हो आया, जो हमने थोड़ी देर पहले सुना था। ये नदियां, सुस्वा और सौंग, मछली पकड़ने के लिए ठेके पर उठी हुई हैं। यहां वही लोग आकर मछली मार सकते हैं, जिनके पास इसके लिए विशेष अनुमति हो। एक बार जब पहले हम यहां आये थे, तब एक और टोली यहां मछली मारने के लिए आई थी। वे लोग उथले पानी में दूर-दूर फैलकर खड़े हो गये थे। उसके बाद उन्होंने पानी में एक डाइनामाइट का बम छोड़ा था, जिससे जोर का धड़ाका हुआ था। उसके बाद तुरन्त वह पानी में देखने लगे थे और बड़ी फुर्ती के साथ मछलियों को पकड़कर पानी से बाहर फेंकने लगे थे। बम की चोट से मछलियां मर जाती हैं या बेहोश हो जाती हैं। उसके बाद वे उसी तरह बहने लगती हैं, जैसे निर्जीव लकड़ी का टुकड़ा और उन्हें पकड़कर पानी से बाहर फेंकना कठिन नहीं होता। उस समय उन लोगों ने कोई दस ही मिनट में दो-तीन मन मछलियां मारकर पानी से बाहर फेंक दी थीं। मुझे ध्यान आया कि आज जो धमाका हमने सुना था, वह भी इसी प्रकार के किसी डाइनामाइट के बम का था। साथ ही मुझे यह भी लगा कि इस प्रकार मारी गई सब मछलियों को बम फेंकने वाले लोग नहीं पकड़ पाये होंगे। अवश्य ही उनका बहुत सा भाग इस तेज प्रवाह वाली नदी में बहता हुआ इस ओर आया होगा। थोड़ी सी खोज के बाद ही मेरे इस विचार की पुष्टि भी हो गई। किनारे-किनारे देखने से हमें थोड़ी दूर पर पड़ी हुई कई मछलियां मिलीं।

मेरे मन में एक विचार उपस्थित हुआ। यह ठीक है कि हम लोग मछली को फल नहीं मानते और उसका सेवन नहीं करते। यह भी ठीक है कि मछली मारना हमारा पेशा भी नहीं और न हमें मछलियां पकड़ने में ही कोई आनन्द आता है। पर साथ ही यह भी सही है कि बाजार में बढ़िया मछली डेढ़ रुपया सेर बिकती है और सौंग की ये मछलियां अपने

रहीं, तो सड़ जायेंगी या पक्षी इन्हें खा जायेंगे। मैंने प्रस्ताव किया कि यत्न करके ढूढा जाय, और जितनी भी मछलियां मिल जायें, उनको इकट्ठा कर लिया जाय। आज एक परीक्षण ही करके देखें। प्रस्ताव पर किसी ने आपत्ति नहीं की। सब मछलियां ढूढने में जुट गये। इस परिश्रम का फल बुरा नहीं रहा। इन मछलियों से वे सब थैले भर गये, जो हमारे पास थे। फिर भी कुछ मछलियां बच रहीं। इन्हें हमने एक बड़े से तौलिये में बांध लिया। मेरा अनुमान था कि ये मछलियां बीस सेर से कम न होंगी। मछलियां एकत्र करने के बाद हम आराम करने के लिए लेट गये। इस समय शरीर में हल्की-सी थकान मालूम हो रही थी। पेट अच्छी तरह भरा हुआ था। पेड़ों की छाया में लेटना बहुत ही अच्छा मालूम हुआ। एक तरह की खुमारी-सी छाने लगी। मुझे तो दिन में नींद नहीं आती, पर कई साथी तो घोड़े बेचकर सोये। हम लोग, जो जाग रहे थे, तरह तरह की गपशप करते रहे। तीन बजे के करीब यह विश्राम का दौर समाप्त हुआ। हमें उसी स्टेशन पर जाकर साढ़े चार बजे वाली गाड़ी पकड़नी थी। रणजीत ने सबको जगा दिया। विचार बना कि चलते समय एक बार और नहाकर तब चला जाय। जल्दी-जल्दी तैयार हुए और पानी में कूद पड़े। पर इस समय हमें समय का ध्यान था। दो-चार बार कूदकर बाहर निकल आये। कपड़े बदले। कड़ाही और पतीला तथा अन्य बर्तन साफ किये। सामान उठाया और स्टेशन की ओर चल दिये। आम तौर से लौटते हुए हम सदा ही खाली हाथ हुआ करते थे, पर आज मछलियों का भारी बोझ हमारे साथ था। यह कुछ अखर रहा था, क्योंकि हम इस तरह बोझ उठाने के अभ्यस्त नहीं थे। दो-दो साथियों ने एक-एक थैला पकड़ा हुआ था। और थोड़ी-थोड़ी दूर चलकर हाथ बदल लेते थे।

स्टेशन के पास कई होटल थे, जहां मांस-मछली पकती थी। हमने सोचा कि यदि इस बोझ से यहीं मुक्ति हो जाय तो भला है। जो भी पैसे मिल जायें, वे लेकर छुट्टी पाई जाय। पर होटल वालों ने जो हमारी शक्लें देखीं, तो समझ गये कि इन लोगों का यह धन्धा नहीं है। यों ही कहीं से हथिया लाये हैं। शायद उन्होंने यह भी सोचा हो कि हमारी यह हरकत गैरकानूनी है और इसलिए हमें दबाया जा सकता है; बोले: "आठ आने सेर लेंगे।"

हमने उन्हें जवाब नहीं दिया और आगे चल पड़े। वे लोग अपनी प्रस्तुतियां (आफर) बढ़ाते गये। यहां तक कि रुपये सेर भी लेने को तैयार हो गये। पर हमने उनकी बातों पर कान नहीं दिया। हमने सोचा कि जब हमने जाना ही है, तो ज्वालापुर में ही चलकर बेचेंगे।

स्टेशन पर पहुंचे, तो देखा कि गाड़ी तैयार खड़ी है और एक काले

कोट वाला टिकट चैकर बहुत ही निरीह भाव से इधर-उधर फिर रहा है। इन चैकरों का थोड़ा-बहुत अनुभव हमें हो गया था। हम उससे भी अधिक निरीह भाव से प्लेटफार्म पर जाकर खड़े हो गये। न वह किसी डिब्बे में चढ़ा और न हम ही किसी डिब्बे में चढ़े। उसकी निगाह हम पर थी। पर वह हमें निश्चित रूप से फंसा लेना चाहता था। इसलिए वह बहुत ही भोला बनकर गाड़ी के अन्त में लगे गार्ड के डिब्बे के पास खड़ा गार्ड से गपशप करता रहा। एक गाड़ी सामने की ओर हरिद्वार से आई। वह स्टेशन की इमारत और इस पहले से खड़ी हुई गाड़ी के बीच में आकर खड़ी हो गई।

गाड़ी छूटने का समय हो गया। सिगनल नीचे झुक गया। चैकर पीछे खड़ा है, यह सोचकर हम आगे के डिब्बे में सवार हो गये। यदि चैकर इंजन के पास खड़ा होता, तो हमें सोचना पड़ता; क्योंकि गाड़ी छूटने पर वह धीरे-धीरे सरकती हुई गाड़ी के किसी भी डिब्बे में सवार हो जा सकता था। पर क्योंकि टिकट पास नहीं था, इसलिए डिब्बे में सवार होने पर भी बेचैनी बनी रही। दो साथी खिड़कियों में से मुंह निकाले गाड़ी के दोनों ओर देखते रहे, जिससे चैकर की गतिविधि पर दृष्टि रहे। ज्योंही इंजन ने सीटी दी, त्योंही चैकर गार्ड को छोड़कर तेजी से आगे की ओर दौड़ा। उसकी निगाह सारे समय हमारे ऊपर थी। चैकर दौड़ा आ रहा है, यह खबर हमने चटपट सब साथियों को दे दी। गाड़ी चल चुकी थी और उसकी चाल तेज होने लगी थी। देखते-देखते हम में से सब गाड़ी से प्लेट फार्म के दूसरी ओर उतरते गये। खूब तेजी से दौड़ता हुआ चैकर जब सब से अगले डिब्बे में आकर चढ़ा, तब तक अन्तिम साथी रणजीत भी डिब्बे में से उतर चुका था, जो इस बीच सारे समय चैकर को देखता रहा था। चैकर की तेज दौड़ सबसे अच्छी तरह उसी ने देखी थी। यदि हम चाहते तो अब भी पीछे के डिब्बों में चढ़ सकते थे, और चैकर फिर उतरकर हमारे पास तक न आ सकता था। पर ख्याल आया कि यह गाड़ी सिर्फ हरिद्वार पहुंचकर रुक जायेगी। वहां चैकर से मुठभेड़ में बचना कठिन होगा। अभी आधे घण्टे बाद एक और गाड़ी आने वाली थी, जो हमें सीधे ज्वालापुर तक पहुंचा देगी। हम शान्त और निस्पृह भाव से उसी की प्रतीक्षा करने लगे।

इस गाड़ी में सब परिस्थितियां हमारे अनुकूल थीं। पहले तो इसमें कोई चैकर नहीं था। दूसरे, यहां यह गाड़ी बहुत कुछ खाली थी, पर हरिद्वार में इसमें इतनी भीड़ भरनी थी कि कोई चैकर उस समय आकर टिकट देखने का यत्न न करेगा। ज्वालापुर स्टेशन छोटा होने के कारण वहां से भले आदमी की तरह टहलते हुए चले जाना भी कठिन न होगा।

जब हम ज्वालापुर पहुंचे, तो शाम हो चुकी थी। खोजते हुए हम

उस स्थान पर पहुंचे, जहां हमारी मछलियां बिक सकती थीं। दूसरे की विवशता का लाभ प्रायः सभी जगह उठाया जाता है। ये लोग भी समझ गये कि हमें मछलियां बेचनी ही हैं। इसलिए इन लोगों ने बड़े नखरे किये। अन्त में तोलने पर मछलियां २४ सेर निकलीं। बड़ी सौदेबाजी के बाद उनके हमें बत्तीस रुपये प्राप्त हो सके। भोजन इत्यादि पर हम आठों व्यक्तियों का कुल व्यय दस रुपये आया था।

सौंग नदी के किनारे पर बिताया हुआ वह छुट्टी का दिन बहुत ही आनन्द में बीता और अन्त में अनायास आर्थिक लाभ की प्रसन्नता में समाप्त हुआ।

परिशिष्ट---२

झरबेरियों के जंगल में

झरबेरियों के बेर हम लोग बचपन से ही खाते रहे हैं। आयुर्वेद वालों ने 'अपथ्यं बदरी फलं' लिखकर इस फल को अभक्ष्य बतलाया है। और भी अपने न जाने कितनी बार हमें, अभिभावकों और संरक्षकों से इस फल को न खाने का आग्रह सुनना पड़ा है। इसे खाने से खांसी होने का भय हमें सैकड़ों बार दिखाया गया। परन्तु देखता हूं कि उसका कभी कुछ भी असर नहीं हुआ। ज्योंही सर्दियां आतीं और छोटी छोटी झाड़ियों पर लगे हुए ये बेर क्रमशः हरे, पीले और लाल पड़ने लगते, त्योंही एक दुर्निवार आकर्षण हमें इन झरबेरियों की ओर खींचने लगता। बचपन में जिन-जिन स्थानों पर भी हमें रहने का संयोग हुआ, उन सभी स्थानों पर ये झरबेरियां पर्याप्त मात्रा में थीं, इसलिए ये बेर कभी भी दुर्लभ नहीं हुए।

इन बेरों को खाकर कभी खांसी हुई हो, ऐसा भी याद नहीं पड़ता। खांसी हो, या न हो, पर इन बेरों में खाने को रखा क्या है? यदि कोई मुझसे यह पूछने लगे, तो शायद मैं कुछ भी सन्तोषजनक उत्तर न दे सकूं। ऊपर छिलका और लगभग साथ ही लगी हुई एक बड़ी सी गुठली; बीच में नाम मात्र को जरा सा गूदा, जिसका स्वाद प्रायः खट्टा कभी कसैला और बहुत हल्की सी मिठास लिये हुए होता है। शायद सेर भर खा जाने पर भी पेट के अन्दर एक छटांक गूदा भी न पहुंच पाये! फिर भी इन बेरों का आकर्षण बड़ा प्रचण्ड है। बचपन में इनका स्वाद जो जीभ पर लग गया, वह बहुत गहरा चिह्न छोड़ गया है। वह मिटाये नहीं मिटता। किसी मनोवैज्ञानिक ने लिखा है कि बचपन की तुच्छ से तुच्छ वस्तु भी हमारी स्मृति में बड़ा प्रिय और स्थायी स्थान बना लेती है। जिस गन्दे से घर में भी व्यक्ति ने अपना बचपन बिताया है, वह अनायास ही सुन्दर प्रतीत होने लगता है। फिर इन खट्टे-मीठे बेरों का तो कहना ही क्या?

यह सब इसलिए लिखना पड़ा, कि जिससे पाठकों को यह ऐतराज न हो कि अन्य अनेकानेक साधन विद्यमान होते हुए भी इस बड़ी आयु में बच्चों की भांति झरबेरियों के जंगल में भटकने की क्या आवश्यकता आ पड़ी

थी। वैसे ये बेर बाजार में दो आने सेर भी मिल जाते हैं; और पाव भर बेर परिमाण में इतने काफी होते हैं, कि उन्हें खाकर भले ही पेट न भरे, परन्तु दांत इतने खट्टे हो जाते हैं कि और अधिक खा सकने की हिम्मत शेष नहीं रहती। परन्तु प्यालों की भांति बेरों का भी जंगल में जाकर खाने का ही अपना आनन्द है। जो अन्तर जीवित शरीर और शव में होता है, वही अन्तर जंगल में झाड़ी पर लगे हुए बेरों में और बाजार में बिकने वाले बेरों में होता है।

जनवरी का महीना शुरू हो चुका था। सर्दी खूब कड़ाके की पड़ती थी। हिमालय की चोटियों पर पड़ी हुई बरफ दूर से ही दिखाई पड़ा करती थी। गर्मी के दिनों में इन चोटियों पर सफेदी इतनी नहीं रहती, क्योंकि बर्फ पिघल जाने से चोटी का काला या मटमैला भाग दिखाई पड़ने लगता है। परन्तु जब सर्दियों मे एक बार वर्षा हो चुकती है, तब पश्चिमी क्षितिज से लेकर पूर्वी क्षितिज तक सारी पर्वत-शृंखला ऐसी धवलता से आच्छादित हो उठती है कि देखकर ऐसा अनुभव होने लगता है, मानों महादेव ठठाकर अट्टहास कर रहे हों। सर्दी के उन दिनों में शिवालिक की पर्वत-मालाओं से निकलकर ऐसी शीतल और तीव्र वायु प्रभात काल में बहा करती है कि उससे लोगों की उंगलियां सुन्न हो जाती हैं और दांत आपस मे बजने लगते हैं।

ऐसे ही दिनों में रविवार को हम बेर खाने के लिए निकले। बेर खाने से पेट नहीं भरता, बल्कि भूख और तेज हो जाती है, इसलिए अपना दिन भर का भोजन हम साथ ही लेकर चले। इन दिनों गंगा की धाराओं में पानी कम होता है और इन छोटी-छोटी धाराओं को नौकाओं द्वारा पार करना होता है। जब हम कनखल में गंगा के किनारे पहुंचे, तो उस समय सूर्य की धूप अच्छी निकल आयी थी। गंगा के पार जाने वाले लोग नौका के घाट पर आकर एकत्र हो गये थे। इनमें से कुछ लोग तो ऐसे थे, जो गंगा के पार गांवों में रहने वाले थे। कुछ लोग बहुत ही गरीब वर्ग के थे, जो गंगा के पार जाकर दिन भर ईंधन की लकड़ियां बटोरते थे और उन्हें शाम को लाकर कनखल में बेच देते थे। एक बार में लकड़ी का जितना भी बोझ उठाकर आदमी ला सके, उसका इन्हें एक आना मूल्य ठेकेदार को देना होता था। इसके अलावा कुछ बहेलिये भी नौका में थे। उनके साथ उनके शिकारी कुत्ते थे। जाल और भाले उन्होंने अपने कन्धों पर रखे हुए थे। ये लोग जंगल में जाकर अनेक विधियों से पशुओं का शिकार करते हैं और उनके मांस, खाल और सींग सभी का समुचित उपयोग कर डालते हैं। इन लोगों की आकृतियां देखने में ही क्रूर होती हैं। व्यक्ति जिस प्रकार की परिस्थितियों और मनोभावों में निरन्तर रहता है, उसका प्रभाव सुनिश्चित रूप से उसकी

आकृति पर भी पड़ जाता है। शायद यही कारण है कि चाण्डालों, पेशेवर हत्यारों तथा और अन्य क्रूर कर्म करने वालों की आकृतियां सौम्य नहीं होतीं; जबकि इसके विपरीत सदा आमोद-प्रमोद में मग्न रहने वाले लोगों अथवा परोपकार के व्रती साधु-सन्तों की आकृतियां बहुत ही सौम्य होती हैं।

नाविकों के आने में शायद कुछ देर थी। हम लोग इन बहेलियों से बातचीत करने लगे। बातचीत में ये लोग अनुदार नहीं थे। इन्होंने हमें बतलाया कि किस तरह ये किसी जगह अपना जाल पेड़ों के बीच में बांध देते हैं, और शिकार को घेरकर पीछा करते हुए उसे दौड़ाकर जाल के पास ले आते हैं; यहां तक कि वह दौड़ते-दौड़ते जाल में आकर फंस जाता है; और तब ये उसे भालों से मार डालते हैं। इनके कुत्ते शिकार पर स्वयं आक्रमण नहीं करते, बल्कि एक तो वे शिकार को खोजने में सहायता देते हैं; और दूसरे भौंककर शिकार को चौंका देते हैं। जब वह भागने लगता है, तो उसका पीछा करके उसकी चाल को और तेज करते जाते हैं, जिससे वह बदहवास होकर जाल में फंस जाता है।

इन लोगों ने हमें बताया कि ये आम तौर से सूअर, खरगोश, हिरन और सेही का शिकार करते हैं। मनुष्य में यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि यदि उसे अवसर मिले, तो वह अपने मामूली से मामूली काम में भी अतिशयोक्ति करके अपना बड़प्पन दिखाना चाहता है। कृष्ण ने एक बहेलिये से पूछा : "क्यों भाई, तुम कभी शेर का भी शिकार करते हो ?"

शेर का शिकार ये लोग नहीं करते। परन्तु इस बात को स्वीकार करने से शायद इन्हें अपने गौरव पर आंच आती प्रतीत हुई। वह बोला : "शेर तो हमें जंगल में आये दिन मिलते रहते हैं।"

"वे तुम्हें कुछ कहते नहीं ?" सुभाष ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा।

"कहेंगे क्या ?" बहेलिया बोला : 'यदि वे चुपचाप दुम दबाकर भाग न जायें, तो हम उन्हें भालों से छेद ही न डालें।"

"भाले से क्या तुम बाघ से लड़ सकते हो ?" मैंने उससे पूछा। इस पर एक और बहेलिया बोला : "यह बात आपने खूब कही। जंगल में ऐसा कौनसा जानवर है, जिसे हम अपने कुत्तों और भालों की मदद से मार न डालें ?"

इन मामलों में बेदी जी बहुत कुशल हैं। वे इस प्रकार आश्चर्य प्रकट करते हुए, जिससे उन बहेलियों को अपने बल पर अभिमान होने लगे, बोले : "क्यों जी, बाघ तो बहुत ताकतवर होता है। सिर्फ भालों के जोर से आप उससे लड़ें, तो क्या वह किसी को चोट नहीं पहुंचा सकता ?"

बेदी जी ने जिस आशा से यह प्रश्न पूछा था, परिणाम उसके अनुकूल ही हुआ। बहेलिये की छाती फूलकर दुगनी हो गई। बोला : "चोट वह

हमें क्या पहुंचा सकता है ! और अगर कभी एक आध वार कर ही बैठे, तो उससे हम डरते थोड़े ही हैं। यह तो हमारा पेशा है। इस तरह डरने लगें, तो काम कैसे चले ?"

निधि जी ने उसे और बढ़ावा दिया ; बोले : "भाला तो दूर की बात मौका पड़ने पर तो ये लोग खाली हाथ भी शेर से लड़ लेते हैं ।"

बहेलिया बेचारा इस बात के रहस्य को क्या समझता ? कहने लगा : "अपने आप तो मैं कभी खाली हाथ बाघ से नहीं लड़ा परन्तु हमारे एक चाचा थे। उन्होंने जंगल में दो बार बाघ से खाली हाथ लड़ाई लड़ी थी और दोनों बार बाघों को मार डाला था। एक बार तो उन्होंने ऐसा मजा किया कि अपने ऊपर खरोंच तक न आने दी और बाघ का काम तमाम कर दिया। ज्योंही बाघ उन पर झपटा, त्योंही उन्होंने लपककर उसका गला पकड़ लिया और खूब जोर से दबाकर गला घोंटकर उसे मार दिया।

कृष्ण का धैर्य, लगता है, समाप्त हो गया था। इसलिए धीरे से सुभाष के कान के पास मुंह ले जा कर बोला : "वाह रे गप्पी !"

यह क्रम न जाने कब तक और चलता, पर तभी नाविक लोग आ गये, और हम सब नौका पर चढ़ने लगे। बहेलिये भी अपने कुत्तों को साथ लेकर नौका पर चढ़ गये और देखते-देखते नौका किनारे को छोड़कर धारा के बीच की ओर चल पड़ी।

सर्दियों में गंगा का पानी बहुत ही निर्मल और अत्यन्त शीतल होता है। बरसात का तो कोई प्रश्न ही नहीं, परन्तु गर्मियों में भी इस पानी की निर्मलता और शीतलता इतनी कभी नहीं होती, जितनी इन दिनों होती है। धारा के नीचे तली में छह सात फीट की गहराई तक भी रेत और पत्थर ऐसे साफ दिखाई पड़ते हैं, जैसे शीशे के पार दीख रहे हों। बीच में आकर पानी बहुत गहरा हो गया था। यहां पर धारा का रंग कुछ नीला और हरा सा हो गया। धारा बहुत चौड़ी नहीं थी और कुछ ही देर में हम दूसरे किनारे पहुंच गये। परन्तु इस पथरीले तट पर यह लकड़ी की भारी-भरकम नौका हमें सूखे किनारे तक नहीं ले जा सकती थी। हमें घुटने-घुटने पानी में उतरकर फिर किनारे तक पहुंचना था। किनारे से किश्ती छूने से पहले ही नाविकों ने चिल्लाकर हम सबको सावधान कर दिया कि सम्हलकर बैठना ; किनारे को छूते ही नौका को जोर का धक्का लगेगा ; कोई गिर न पड़े। उस ठंड के समय में गंगा के बर्फ जैसे ठंडे पानी में उतर कर चलना बहुत भला नहीं लगा। पानी के नीचे तली में पत्थर थे, जिन पर काई जम गई थी और जो बहुत ही फिसलन-युक्त हो गये थे। कृष्ण उतरते समय इन पर फिसलकर पानी में गिरते-गिरते बचा। यदि उसका हाथ नौका पर सहारे के लिए न जा पड़ता, तो उसका अच्छा खासा

गंगा-स्नान ही हो जाता।

आगे काफी दूर तक रास्ता गंगा की बालू और सरकण्डों के जंगल से भरा हुआ था। कोई तीन फर्लांग दूर अभी नौका द्वारा हमें एक और धारा पार करनी होगी। वहां पर वह नौका इस नौका से उतरे हुए यात्रियों की राह देख रही होगी और इन सबके पहुंच जाने पर चल पड़ेगी। इसलिए हम सब भी अन्य यात्रियों के साथ ही साथ नौका तक पहुंच जाना चाहते थे। उस धारा को पार कर लेने के बाद फिर हम कहीं भी भटकते रहने को स्वतन्त्र होंगे।

जब हमने दूसरी धारा भी पार कर ली, तो उस सर्दी के समय भी हमने खूब डटकर गंगा का पानी पिया; क्योंकि आगे रास्ते में कहां पानी मिलेगा, इसका कुछ ठीक निश्चय नहीं था। वैसे तो इन सर्दियों के दिनों में जंगल में पानी की खास कमी नहीं होती। फिर भी अपनी ओर से पहले से ही निश्चिन्त हो जाना उचित होता है।

इस धारा को पार करते ही यह स्पष्ट हो गया कि अब हम मनुष्यों की बस्ती के वातावरण से दूर निकल आये हैं। वन देवताओं का साम्राज्य प्रारम्भ हो गया है। सब ओर घनी हरियाली दिखाई पड़ने लगी थी। पेड़ स्वयं काफी घने थे। उनके ऊपर और बेलें छा गई थीं; जिससे झुरमुट ऐसे घने हो गये थे कि पृथ्वी तक सूर्य की किरणों का पहुंचना असम्भव हो गया था। बेलों पर कहीं लाल और कहीं सफेद फूल खिले हुए थे। इतने विशाल परिमाण में फूल यहां जंगल में ही देखे जा सकते हैं। इस सारे प्रदेश में इस ऋतु में रात को बहुत ओस पड़ती है। इसलिए भूमि ऐसी गीली हो गई थी, जैसे रात में वर्षा हुई हो। कहीं-कहीं घास पर और झाड़ियों की पत्तियों पर ओस की बूंदें मोतियों की भांति रखी हुई थीं। सील और शीतलता वायु में भरी हुई थी, जो इस सर्दी की ऋतु में भी भली लग रही थी। वैसे हम जहां रहते हैं, वहां भी वायु खूब स्वच्छ और खुली है, परन्तु इस वन में आते ही जैसी प्राणदायक और आनन्दवर्द्धक वायु मिलती है, वैसी खुले मैदानों में नहीं मिलती। शायद वैज्ञानिक लोग इसका कारण यह बतायें कि यहां की वायु में सैकड़ों, हजारों वृक्षों द्वारा प्रदान की गई ओषजन गैस भरी रहती है, इसीलिए इस वायु में इतनी अधिक जीवनदायिनी शक्ति है।

बेरों की झाड़ियां शुरू हो गई। कुछ झाड़ियां तो बहुत छोटी-छोटी थीं, जो आकाश की ओर न उठकर पृथ्वी पर ही फैलने का अधिक प्रयत्न कर रही थीं; और कुछ झाड़ियां न होकर झाड़ थे। इन्हें पेड़ भी कहा जा सकता है; क्योंकि जंगल के अन्य वृक्षों की भांति ये भी खूब बड़े-बड़े और ऊंचे, मोटे तने वाले वृक्ष थे। झरबेरियों का यह जंगल मीलों दूर तक फैला चला गया था। इसका कोई मालिक नहीं, ठेकेदार नहीं। इन बेरों को

खाने, चुनने, बटोरने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। किसी प्रकार की मितव्ययिता नहीं ! एक बेर खाने के लिए हजार बेर यों ही झाड़े और फेंके जा सकते हैं। अपव्यय का ऐसा आनन्द आज के युग में अन्यत्र मिल पाना कठिन है। उन्मुक्तता के आनन्द से हमारा मन उल्लसित हो उटा।

जो लोग बेरों को फल मानते हैं, और उनका मूल्यांकन भोज्य पदार्थ के रूप में करते हैं, उनकी दृष्टि में इसका महत्व बहुत ही कम है। परन्तु अगर इन गोल-गोल, लाल और पीले फलों को फूलों की भांति सौन्दर्य की सामग्री मान लिया जाय, तो हजारों-लाखों रंग-विरंगे बेरों से लदी हुई ये झाड़ियां अच्छे से अच्छे पुष्पोद्यान से होड़ कर सकती हैं। जहां तक दृष्टि जाती है, वहीं तक इनका अपार वैभव फैला पड़ा है। खाने से कहीं अधिक आनन्द इनके देखने में है। रास्ते के आस पास की छोटी-छोटी झाड़ियों पर जो बेर लगे थे, उन्हीं में से दो-दो चार-चार तोड़ लिये और खाने लगे। ये बेर स्वाद में बहुत अच्छे नहीं थे, इसलिए आगे बढ़े।

बेर केवल मनुष्यों का ही भोजन नहीं है; जंगल के और भी कई प्राणी इसे खाकर अपना पेट भरते हैं। शायद बहुत लोगों को मालूम न हो कि गीदड़ बेरों को बड़े चाव से खाते है। परन्तु ये बेचारे पेड़ के ऊपर नहीं चढ़ सकते। इसलिए जो बेर पककर पेड़ से गिर पड़ते हैं, उन्हीं को खाकर ये तृप्ति मानते हैं। परन्तु इस मीलों तक फैले हुए जंगल में हजारों की संख्या में रहने वाले गीदड़ों को भी कभी बेरों की कमी नहीं पड़ती। क्योंकि जिस प्रकार खाने वालों की संख्या विशाल है, उसी प्रकार बेरों की मात्रा भी प्रभूत है।

बेर बन्दर भी खाता है, परन्तु बहुत कम। बन्दर को अपने दांत खट्टे होने का भय अधिक रहता है। इसलिए वह खट्टे फलों का सेवन कम ही करता है। फिर भी इन पेड़ों पर रहने वाले बन्दरों के बड़े-बड़े समूह इन फलों का कुछ न कुछ उपयोग करते ही हैं। बन्दर स्वयं बेर न भी खाये, तो भी बेरी पर चढ़कर उस पर उछल-कूद करके वह अन्य पशुओं की इतनी सेवा तो अवश्य कर ही देता है कि बेर झरकर नीचे गिर पड़ते हैं। शायद गीदड़ भी इस बात को भली भांति जानते हैं और बहुत बार वे घेर घार कर बन्दरों को पेड़ पर चढ़ा देते हैं, जिससे बन्दर पेड़ पर उछल-कूद करते रहें और गीदड़ नीचे मजे से बेर खाते रहें।

बेरों का एक और बड़ा प्रेमी भालू है। गर्मी के दिनों में भालू ऊंची पहाड़ियों पर चले जाते हैं, जहां मौसम ठंडा रहता है। सर्दियां आने पर भालू फिर नीचे मैदानों पर आ जाते हैं। इन मैदानों में उनका प्रिय भोजन बेर रहता है। भालू मांसाहारी भी है और शाकाहारी भी। वह मूंगफली भी उतने ही चाव से खाता है, जितने चाव से बकरे का मांस। इसलिए उसके

भूखा मरने का प्रश्न नहीं उठता। सम्भव है कि वह शक्ति तो मांस द्वारा प्राप्त करता हो और बेर केवल विटामिन प्राप्त करने के लिए ही खाता हो।

एकाएक पं० हरिवंश बोले : "वह देखो सुभाष, उस बेरी पर बेर खूब पके हुए मालूम होते हैं।" उन्होंने एक बेरी की ओर इशारा किया, जो खूब लाल बेरों से लदी हुई दिखाई पड़ रही थी। सुभाष और दो-एक साथी उस ओर बढ़े। रास्ते में सरकण्डे और झाड़ियां काफी थीं, और बेरी भी कोई तीस-पैंतीस कदम दूर थी। इसलिए वहां तक पहुंचने में कुछ देर लगनी थी। आश्चर्य की बात यह है कि इतने बढ़िया बेरों का पता औरों को देकर भी पं० हरिवंश उनकी ओर स्वयं नहीं गये। हम लोग भी यों ही उनके साथ ही रह गये और रास्ते के किनारे लगी हुई झाड़ियों से एक-एक दो-दो बेर तोड़ने लगे। कुछ ही देर बाद सुभाष और उसके साथ-गये हुए दोनों-तीनों साथी लौट आये और हँसते हुए अभी कुछ कहने को ही थे कि पं० हरिवंश चिल्लाकर बोले : "क्यों बेर खा आये? मीठे नहीं थे क्या?"

सुभाष अपनी झेंप मिटाता हुआ कहने लगा : "बेर थे ही कहां? वे तो बेरी पर फैली हुई एक और बेल के लाल-लाल फूल थे।" सुनकर हम लोग भी हँसने लगे।"

'तुम्हें देखकर फूल बन गये होंगे?" पं० हरिवंश बोले।

'अब तो यही लोग फ़ूल बन गये हैं।" मैंने 'फ' का उच्चारण 'फ़' करते हुए कहा।

हम फिर आगे चल पड़े। आगे जंगल घना और घना होता जाता है। गर्मियों में यह जंगल ऐसा घना नहीं होता। घास सख जाती है, पेड़ों के पत्ते झड़ जाते हैं और बेलों की हरियाली कम हो जाती है। भयानकता उन दिनों भी इसमें कम नहीं होती, क्योंकि उन दिनों दूर-दूर तक सनसान-सा दिखाई पड़ता है। परन्तु आजकल यह हाल है कि चार कदम परे की वस्तु दिखाई नहीं पड़ती। जहां कहीं भी खड़े हों और जिस ओर को भी मुह करें, उसी ओर आठ-दस कदम आगे घनी हरियाली का ऐसा पर्दा सामने आकर अड़ जाता है, कि उसके पीछे हाथी खड़ा है, या शेर छिपा बैठा है, कुछ भी पता चल पाना असम्भव ही है। बायीं ओर एक पहाड़ी का उठाव प्रारम्भ हो गया। हमारा रास्ता पर्वत-श्रृंखला की अन्दर की ओर को मुड़ रहा था; बेरों का मुख्य जंगल दायीं ओर को रह जायेगा। उसे लौटते समय देखेंगे; पहले पहाड़ियों के अन्दर की ओर के बेरों का स्वाद चख आयें, यह सोचकर हम दायीं ओर न मुड़कर बायीं ओर ही मुड़ते गये।

आज से हजारों साल पहले जब मनष्य बन्दरों की तरह पेड पर ही

रहा करता था, और दिन-रात हाथी, बाघ, भालू और सांपों के साथ मुठभेड़ करता हुआ जीवन बिताया करता था, शायद उसे विश्राम और निश्चिन्तता की आवश्यकता अनुभव होती होगी। उस समय वह चाहा करता होगा कि कोई दिन तो ऐसा बीते, जिस दिन संकट सामने न आये; जिस दिन जीवित रहने के लिए जी जान से परिश्रम न करना पड़े। परन्तु अब दशा उलट गई है। वन पशुओं के तथा अन्य प्राकृतिक उत्पातों के संकटों से दूर रहते-रहते मन सीधी-सादी निरुपद्रव दिनचर्या से ऊब उठता है। कोई भी सनसनी उत्पन्न करने वाली घटना होने में ही नहीं आती। इसीलिए उस मानसिक आवेग तथा सनसनी की खोज में हम लोगों को इधर उधर भटकना पड़ता है; मौका मिलते ही घने जंगलों में भाग जाने की अधीरता रहती है। फिर जंगल जितना घना हो, उतना ही अधिक भला। दिन की अपेक्षा रात और भी अधिक अच्छी। उसमें भी शुक्ल पक्ष की रातों की अपेक्षा कृष्ण की रातें अधिक सनसनी पैदा करने वाली होती हैं। पहले मचान पर रात बिताकर आनन्द अनुभव होता था। पर यह तो शास्त्रकार कह गये हैं, कि इस प्रकार की इच्छाएं उन्हें पूर्ण करने से तृप्त नहीं होतीं, बल्कि जैसे घी में आग डालने से आग और भड़क उठती है, उसी प्रकार इस प्रकार की इच्छाओं को तृप्त करने से ये और भी अधिक भड़क उठती हैं। इसी बात को लागू करते हुए शरच्चन्द्र ने कहा कि ज्ञान की लालसा भी ज्ञान की प्राप्ति के साथ साथ बढ़ती जाती है। यही हाल सनसनी की इच्छा का भी है। जब मचान पर रात बिताने का कार्यक्रम पूरा हो गया, तो खुले में जमीन पर रात बिताने का उत्साह उत्पन्न हुआ। और यह क्रम किसी भी दिन समाप्त होने वाला नहीं है। इसीलिए जंगल की यह सघनता हमें भली ही प्रतीत हुई।

ऐसी चीजों पर न जाने कैसे पं० हरिवंश की दृष्टि सबसे पहले जाकर पड़ती है। यहां रास्ता कुछ चौड़ा हो गया था और रास्ते के बिलकुल किनारे पर एक सांप झाड़ियों में छिपा बैठा था। केवल उसका मुंह ही दिखाई पड़ रहा था।

"ठहरिये, ठहरिये, देखिये वह सांप बैठा है।" उन्होंने कहा।

सांप को मार डालने का उत्साह हमारे मन में बिलकुल नहीं था। क्योंकि एक तो यह सांप, पता नहीं कि, निर्विष हो या न हो; और दूसरे, यदि सविष भी हो, तो भी इससे मनुष्यों का कोई अहित होने की सम्भावना नहीं थी।

सांप का नाम सुनते ही बेदी जी बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें सांपों को पकड़ने और उनसे खिलवाड़ करने का बड़ा चाव था। वे उसकी ओर बढ़े। परन्तु सांप असावधान नहीं था। वैसे सांप की छिप जाने की शक्ति आश्चर्यजनक

होती है। स्वयं मैंने एक बार सांपों को देखते-देखते, जरा आड़ पाकर छिप जाते देखा है; परन्तु इस समय इतने लोगों की निगाह से बचकर यह बेचारा भाग न सका। फिर भी अपनी फुर्ती और विचित्र सूझ के कारण एक पेड़ पर चढ़ गया। सांप इतनी तेजी से पेड़ पर चढ़ सकता है, इसका उस समय तक हम में से शायद किसी को ध्यान भी न था। इसीलिए वह देखते-देखते हमारी पहुंच से बाहर हो गया। यदि वह भूमि पर ही रहता और सीधे-सादे तौर पर हमारे हाथ आ जाता, तो शायद उसका कुछ भी अहित न होता। अधिक से अधिक यही होता कि वेदी जी उसे पकड़ लेते और कुछ देर तक उससे छेड़ छाड़ करके छोड़ देते। परन्तु उसके इस प्रकार पेड़ पर चढ़ जाने से हमें कुछ खीझ-सी हो आई। पं० हरिवंश ने कुछ पत्थर उठा लिये और सांप पर निशाने लगाने का यत्न करने लगे। सांप बहुत धूर्त था। वह जल्दी-जल्दी चलता-चलता पतली-पतली शाखाओं पर पहुंच गया, जहां उसे निशान लगाना और भी कठिन हो गया। पर पं० हरिवंश का निशाना अच्छा था, इसलिए देर में या जल्दी उसे पत्थर लगना तो था ही। और भी कई साथियों ने पत्थर उठा लिये और सांप की ओर फेंकने लगे। सांप को पत्थर न लगने पर भी, जब पत्थर लगने से वह डाली हिलने लगती थी, तो सांप घबराकर अपनी जगह बदलने लगता था। कुछ देर तक यही खेल चला। सांप ने बचने की बहुत कोशिश की। परन्तु अन्त में पं० हरिवंश का फेंका हुआ एक नुकीला पत्थर जाकर उसकी पीठ में लगा और उससे विकल होकर डाली के चारों ओर लिपटी उसकी वे गुंजलकें, जिनके सहारे वह डाली पर चल पा रहा था, ढीली पड़ गईं और वह नीचे आ पड़ा। कृष्ण बड़े तन्मय भाव से खड़ा उसे देख रहा था। और जब सांप गिरा, तो उसे इतना तक ध्यान न रहा कि वह उसके ही ऊपर गिर रहा है। सांप ठीक उसके सिर पर तो नहीं गिरा, परन्तु पैरों के पास आकर पड़ा; और अनायास ही एक चीख मारकर कृष्ण कूदकर दूर जा खड़ा हुआ। उसकी यह चीख और घबराहट में मारी गई छलांग अन्य साथियों के लिए विनोद का विषय बन गई। हालांकि घायल सांप के इस प्रकार एकाएक पैरों के पास आ पड़ने पर इस तरह कूदकर हट जाना न तो अस्वाभाविक ही था और न अनुचित ही। कृष्ण के अतिरिक्त यदि अन्य किसी के पैरों के पास आकर इस प्रकार सांप गिरता, तो शायद उसे भी इसी प्रकार कूदकर हटना पड़ता। परन्तु तब जो भी इस प्रकार हटता, उसे उसी तरह हँसी का पात्र बनना पड़ता। यह दुर्घटना ठीक ऐसी ही थी, जैसे कोई सफेद कपड़े पहने हुए व्यक्ति कीचड़ में फिसल जाय। यद्यपि फिसलने न फिसलने पर उस बेचारे का अपना कोई वश नहीं होता; फिर भी जो फिसलता है, लोग उसकी हँसी उड़ाते ही हैं।

रहा। एकदम मरा नहीं। उसकी यह दशा देखकर उसे देर तक तड़पाना उचित न समझकर हमने एक लकड़ी से तुरन्त ही उसकी यन्त्रणा समाप्त कर दी। हमें खेद इस बात का रहा कि यह सांप बेचारा निर्विष था।

सांप को वहीं छोड़कर हम आगे चले। अब पहाड़ियां हमारे दोनों ओर पास आ गई थीं और उन पर भी उसी प्रकार हरे जंगल ऊपर की ओर उठते चले गये थे, जैसे हमारे चारों ओर फैले हुए थे। पहाड़ियों में कुछ विलक्षण गौरव होता है। यह गौरव, मुझे तो ऐसा अनुभव होता है, जैसे हमारे सामान्य मन के क्षेत्र को विस्तृत कर देता है। जब हम पहाड़ी की तली में खड़े होते हैं, तो हमें पहाड़ी का दूर-दूर तक का ऊंचा भाग दिखाई पड़ रहा होता है और जब हम पहाड़ी के ऊपर पहुंच जाते हैं, तो हमारा दृष्टि का क्षेत्र दूर दूर तक विस्तृत हो जाता है। न हम केवल शारीरिक दृष्टि से ऊंचे उठ जाते हैं, बल्कि हमें अपने मन में भी यह अनुभव होता है कि हम ऊंचे उठ आये हैं। बहुत बार गंगा के दोनों किनारों पर उठी हुई शिवालिक की पहाड़ियों पर चढ़कर और दूर-दूर तक फैली हुई गंगा की धाराओं को देखकर मन में ऐसा अनुभव हुआ है कि ऊंचाई पर रहने में अधिक आनन्द है। परन्तु इस समय हम पहाड़ियों के ऊपर नहीं चढ़े। बरसाती नाले ने हजारों लाखों सालों से बह बह कर पहाड़ी को काट दिया है। उस नाले में से होकर हम पहाड़ी के आन्तरिक भाग की ओर चल पड़े। कुछ दूर चलने के उपरान्त हमारे आगे पीछे सब ओर पहाड़ियां ही दिखाई देने लगी। किसी भी ओर दृष्टि उठाते ही पर्वतमाला का हरियाली से भरा हुआ कलेवर ऊंचाई तक उठकर सनील आकाश के साथ मिलकर एक टेढ़ी मेढ़ी रेखा सी बनाता हुआ दिखाई पड़ता था। आकाश बिलकुल स्वच्छ था, जैसे किसी ने उसे मांज-मांज कर भली भांति चमका दिया हो।

इस प्रदेश में भी झरबेरियां खूब थीं और इनके बेर उन झरबेरियों की अपेक्षा अधिक मीठे थे, जो हमें इन पहाड़ियों के बाहर मिली थी। यहां पर हमने आगे बढ़ना बन्द कर दिया और इधर उधर तक दूर दूर तक फैल कर झाड़ियों पर से बेर तोड़ने लगे। इस प्रकार कोई बीसेक मिनट बीते होंगे कि एकाएक कृष्ण चिल्लाता हुआ भागा। लगता है, सारी दुर्घटनाएं उसी के भाग्य में लिखी थीं। उसकी चिल्लाहट को सुनकर हम सभी चौंक उठे और उसकी ओर लपके। जब हम उसके पास पहुंचे, तो वह बुरी तरह हांफ रहा था। पूछने पर उसने बताया कि वहां झाड़ी के पीछे भालू खड़ा है। भालू का नाम सुनते ही हमारे शरीर में सनसनी दौड़ गई। परन्तु क्योंकि इन दिनों यहां भालू मिलना बिलकुल साधारण बात थी, इसलिए तुरन्त विश्वास करके हम उस ओर बढ़े, जिस ओर कृष्ण ने उसे देखा था। यद्यपि भालू को हम देखना अवश्य चाहते थे, परन्तु ऐसा अवसर नहीं आने

देना चाहते थे, जिससे कोई ऐसी दुर्घटना हो, जिसके लिए हमें बाद में पछताना पड़े। इसलिए खूब सावधान होकर और सम्हल-सम्हल कर हम आगे बढ़ रहे थे।

एक बात से हमें आश्चर्य हो रहा था कि कृष्ण की चीख-पुकारको सुनकर भालू पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। न तो उसने कृष्ण का पीछा ही किया और न उसके भागने की ही आवाज आई। कुछ और आगे पहुंचने पर कृष्ण ने अधीरता के साथ संकेत किया कि देखिये वह खड़ा है। झाड़ियों के पीछे कुछ काली सी वस्तु भी दिखाई पड़ी। उसे देखते ही पं० हरिवंश तेजी से आगे बढ़े। निधि जी और बेदी जी भी दूसरी ओर से बढ़े। परन्तु देर नहीं लगी। क्षण भर में ही स्पष्ट हो गया कि जिसे कृष्ण ने भालू समझा था, वह वस्तुतः आग से जला हुआ एक पेड़ का तना था, जो बिलकुल काला पड़ गया था और झाड़ियों के बीच में से देखने पर भालू का भ्रम उत्पन्न करता था।

लज्जा के मारे कृष्ण को मुंह छिपाने की भी जगह नहीं रही। सच बात तो यह है कि बेर खाते हुए भालू का विचार हम सभी के मन में बना हुआ था और शायद बना रहना उचित भी था; क्योंकि सघन वन में हम निरस्त्र लोगों की रक्षा केवल हमारी सतर्कता पर ही निर्भर थी। इस पूर्ण सतर्कता के समय ऐसा भ्रम हो जाना बिलकुल स्वाभाविक है, जैसा कृष्ण को हुआ।

कृष्ण के कन्धे को थपथपाते हुए निधि जी बोले : "बहुत बचे भाई, बहुत बचे। जरा सी देर और हो जाती, तो यह तो तुम्हारा काम ही तमाम कर डालता।"

सुभाष बोला : 'इस जले ठूंठ को देखकर तो कृष्ण डरनेवाला नहीं है। जरूर यहां कोई और भालू रहा होगा, जो अब भाग गया है।"

"भालू जादू जानता है; कभी ठूंठ बन जाता है, और कभी भालू।" पं० हरिवंश ने कृष्ण की ओर देखकर मुस्कराते हुए कहा।

हम फिर बेर खाने लगे। परन्तु अब हम पहले की अपेक्षा अधिक चौकन्ने थे। इस समय धूप काफी तेज हो रही थी और बड़ी प्रिय मालूम हो रही थी। यहां पर एक और प्रकार के बेर हमने देखे, जो छकाऊ बेर कहलाते हैं। ये बेर जब कच्चे होते हैं उस समय भी इनका एक पार्श्व लाल रहता है और दूर से देखने पर इनके पके होने का भ्रम होता है। परन्तु इनके भ्रम में पड़ने की हमारी स्थिति बचपन में ही पार हो गई थी। कुछ देर बाद जब भूख अनुभव होने लगी, तो यह निश्चय हुआ कि भोजन ऊपर पहाड़ी पर बने हुए मन्दिर में जाकर किया जाय।

चण्डी का यह मन्दिर यहां से लगभग दो मील दूर था। वहां पर प्रायः प्रति दिन अनेक भक्त लोग देवी के दर्शन के लिए आते रहते थे। इसलिए वहां पर पानी की सुविधा रहती थी। जब उस ओर चलने लगे, तो तो एकाएक पं० हरिवंश बोले : "आज चण्डी के मन्दिर को रहने दीजिये। आज आपको ऐसी जगह ले चलता हूं, जहां आपका मन प्रसन्न हो जायगा।"

"मन तो क्या प्रसन्न होगा, फिजूल चला-चला कर पैर थका दोगे।" निधि जी बोले। परन्तु जब पं० हरिवंश कोई प्रस्ताव करें, तो वह प्रायः स्वीकार ही कर लिया जाता था। पं० हरिवंश जी टेढ़े-मेढ़े बरसाती नालों में से होते हुए आगे बढ़ने लगे।

अनेक बार चर्चाओं में हमने यह बात कही-सुनी है कि हिमालय का वास्तविक सौन्दर्य उसकी बाहरी छोर पर बिखरी हुई पहाड़ियों में नहीं, बल्कि उन ऊंची पर्वत-शृंखलाओं में है, जो ६,००० फीट की ऊंचाई से आगे प्रारम्भ होती हैं। यह ठीक है कि उन शृंखलाओं का अपना सौन्दर्य है। वहां घने और हरे जंगल हैं, जिनकी हरियाली वर्ष के अधिकांश भाग में बनी रहती है। परन्तु आज इस समय इस जनवरी के महीने में स्वच्छ आकाश के तले धूप में चलते हुए ऐसा अनुभव होने लगा कि सौन्दर्य तो इस प्रदेश में भी कम नहीं। पहाड़ियों के किनारे की सीली हुई मिट्टी में से तरह तरह की घासें बाहर को झांक रही थीं। इन घासों का हरा रंग कहीं पीलापन लिये हुए था, तो कहीं अत्यधिक गहरा होने के कारण श्यामलता लिये हुए था। इन घासों के आकार प्रकार तरह तरह के थे, जो एक से एक बढ़कर मनोहर थे। वृक्षों की संख्या जिस प्रकार अपार थी, उसी प्रकार उनके भेद, उनकी जातियां और उपजातियां भी अनगिनत थीं। हर एक के पत्ते अलग ढंग के और उठान भी अलग ढंग की थी। कहीं प्रदेश सघन वन से भर उठता था, तो कहीं पहाड़ियों पर दूर तक हरी घास ही लहराती हुई दिखाई पड़ती थी। यह भाभड़ घास थी, जो तीन-चार फीट तक ऊंची होती है और जब वायु बहती है, तो समुद्र की लहरों की भांति उठने और गिरने लगती है।

धीरे-धीरे हमारा रास्ता पहाड़ी के ऊपर की ओर उठने लगा। अभी हम कोई डेढ़ सौ फीट की ऊंचाई तक पहुंचे होंगे कि एकाएक किसी ओर से बड़ी तेज दुर्गन्ध आई। यह दुर्गन्ध सड़े हुए मांस की थी; और ऐसा प्रतीत होता था कि इस दुर्गन्ध का केन्द्र निकट ही कहीं है। आगे बढ़ना छोड़कर हम उस ओर बढ़े, जिस ओर से दुर्गन्ध आ रही थी। इस ओर झाड़ियों का घना झुरमुट था। ऊंचे खड़े हुए पेड़ों के ऊपर मालझाड़ की बेलों ने फैलकर ऐसा घना पत्तों का आवरण तान दिया था कि यदि आकाश से सुई भी गिरे, तो भूमि तक न पहुंच पाये। सीली भूमि में जगह-जगह चट्टानें उठी हुई थीं, जो हरियाली के बीच में कहीं-कहीं उभरी हुई थीं।

कुछ और आगे बढ़ने पर हमें बायीं ओर से एक गुर्राहट सुनाई पड़ी, जिसने हमारे रोंगटे खड़े कर दिये। यह गुर्राहट बाघ के अतिरिक्त और किसी पशु की नहीं हो सकती थी। ऐसा गुरु गम्भीर स्वर वन में केवल इस एक ही प्राणी का है और इस स्वर को सुनकर सिहर न उठे, ऐसा एक भी प्राणी इस वन में नहीं है। हमारे पैर अपने आप रुक गये। हमने एक दूसरे की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा। लगभग चौथाई मिनट तक हम इसी स्तब्धता की मुद्रा में खड़े रहे और आंखों ही आंखों में विचार-विनिमय करके एक दूसरे के पास सिमट आये। इस समय हमारे पास कोई अस्त्र शस्त्र नहीं था, परन्तु हमें इस बात का भरोसा था कि दिन का समय होने से और हम लोगों के समूह में होने के कारण बाघ हम पर आक्रमण नहीं करेगा। एक सम्भावना यह अवश्य थी कि यदि यह गुर्राहट किसी बाघिन की हुई, जो अपने बच्चों के साथ यहां रह रही हो, तो अवश्य समस्या गम्भीर हो उठेगी। परन्तु क्योंकि आने वाली दुर्गन्ध इस बात की सूचना दे रही थी कि बाघ द्वारा खाया हुआ शिकार पास ही पड़ा हुआ है, इससे हमें यह आशा बंधी कि सम्भवतः कोई बाघ ही होगा, जो मांस से पेट भरने के पश्चात् उसके पास ही कहीं लेटकर विश्राम कर रहा होगा। फिर भी बिना कुछ निश्चय किये आगे बढ़ने का खतरा नहीं लिया जा सकता था। और कोई शस्त्र पास न होने पर भी कम से कम पत्थर तो उठाये ही जा सकते थे। भले ही इनसे कोई प्रयोजन सिद्ध हो सके या न हो सके, पर आत्म विश्वास तो दृढ़ हो जाता है। यथाशक्ति निःशब्द रहकर ही हमने आस-पास से ढूंढकर बड़े-बड़े रोड़े उठा लिये। उसके बाद हमने आपस में बातें करनी शुरू कर दीं, जिससे बाघ को हमारी बातें सुनकर हटने का मौका मिल जाये। यह हमें मालूम था कि यदि एकाएक ही बाघ के सिर पर न जा पहुंचेंगे, तो अवसर पाकर वह अवश्य ही वहां से हट जायेगा। और यदि बाघिन भी हुई, तो वह भी झगड़ा मोल न लेकर उस स्थान से हट ही जाना पसन्द करेगी। यद्यपि आपस में जोर-जोर से बातें करते हुए हम निश्चिन्तता प्रदर्शित कर रहे थे, परन्तु हमारे शरीर का रोम-रोम सतर्क भाव से उस दिशा में देख रहा था, जिस ओर से बाघ की गुर्राहट सुनाई पड़ी थी।

बाघ की गुर्राहट फिर सुनाई नहीं पड़ी और न वहां से बाघ के हटने या जाने का ही कोई चिह्न दिखाई पड़ा। परन्तु यह हमें भी मालूम था कि यदि बाघ इस स्थान से हटा भी, तो इतना चुपचाप हटेगा कि हमें एकाएक पता नहीं चलने देगा। पं० हरिवंश हम लोगों की अपेक्षा अधिक प्रवीण थे। हमारी दृष्टि तो सामने के झुरमट की ओर ही केन्द्रित थी, परन्तु वे दूर-दूर तक देख रहे थे। एकाएक एक ओर इशारा करते हुए आवेश के साथ बोले : "वह गया, उधर देखिये।" जिस ओर वे उंगली से इशारा कर

रहे थे, उसी ओर तत्काल हमारी दृष्टि गई और जरा सी खुली जमीन को पार करते हुए बाघ की झलक हमें पल भर के लिए दिखाई पड़ी; और उसके तुरन्त बाद वह सामने की झाड़ियों में अदृश्य हो गया। यह स्थान हम से लगभग आधा फर्लांग दूर और नीचाई की ओर था। वैसे इतने घने वन में इतनी दूर की वस्तु दीख पाना कठिन ही था, परन्तु यह एक संयोग ही था, कि जिस ओर बाघ गया था, उस ओर के प्रदेश तथा हमारे बीच में झाड़ी-झंखाड़ों का ऊंचा व्यवधान नहीं था। बाघ को चला गया देखकर हमने एक बड़े सन्तोष की सांस ली।

अब हम उस तीव्र दुर्गन्ध के केन्द्र की ओर बढ़े। इतनी देर तक बाघ के भय के मारे हमें दुर्गन्ध का अनुभव तक होना बन्द हो गया था। अब वही दुर्गन्ध असह्य प्रतीत होने लगी थी। थोड़ा आगे बढ़कर देखा, तो एक घनी झाड़ी के नीचे एक बारहसिंगे की लाश पड़ी थी, जिसका बहुत सा भाग खाया हुआ था। बारहसिंगा ताजा मरा हुआ नहीं जान पड़ता था। बेदी जी ने बारहसिंगे की टांग पकड़कर उसे कुछ दूर तक घसीटा और झाड़ी से निकालकर उसे बाहर खुले में डाल दिया। उसके घसीटने पर लाश में से कुछ तरल-सा पदार्थ बहने लगा, जो देखने में जितना घृणोत्पादक था, उतनी ही तेज उसकी बदबू भी थी। दुर्गन्ध की तीव्रता के मारे सबकी नाकें स्वयमेव सिकुड़ गईं। कुछ देर तक हम उस लाश को देखते रहे। उसमें देखने लायक कुछ भी नहीं था। फिर भी इस लाश का सम्बन्ध एक रोमांचकारी घटना से था--अर्थात बाघ द्वारा इस बारहसिंगे का वध। जब बाघ ने इसे मारा है, तो अवश्य ही इससे पहले कुछ निश्चित घटनाएं घटी होंगी। भूखा बाघ शिकार की खोज में कहीं झाड़ी में छिपकर बैठा होगा। यह बारहसिंगा भूल से उसके पास तक आ पहुंचा होगा और तभी बाघ ने एकाएक इस पर टूटकर इसका काम तमाम कर दिया होगा। शायद बाघ को देखने के बाद यह जान बचाने के लिए कुछ दूर दौड़ा भी हो; पर बाघ ने तेजी से झपटकर इसे दबोच लिया होगा। इस लाश को देखकर हम ऐसी ही किसी बीती हुई घटना की कल्पना करने का यत्न कर रहे थे और यही कारण था कि उस तेज बदबू के होते हुए भी हम बारहसिंगे की लाश को गौर से देखे जा रहे थे। ऐसा लगता था कि जैसे इस लाश में अभी भी देखने को बहुत कुछ बाकी है।

पं० हरिवंश ने कहा : "यहां वन में यह एक दूसरे के प्राण लेने की लीला अविराम चलती रहती है। ऐसा कोई भी दिन नहीं जाता, जिस दिन वन में सैकड़ों पशुओं को दूसरे पशुओं का पेट भरने के लिए अपने प्राण न देने पड़ते हों।"

मैंने कहा : "मनुष्य भी तो इन्हीं पशुओं में सम्मिलित हो गया है।

मनुष्य का पेट भरने के लिए भी तो प्रतिदिन कितने ही पशुओं को बलि हो जाना पड़ता है।"

"अपना पेट भरने के लिए दूसरे प्राणी की जान लेना तो समझ में भी आता है; वह जीवन की आवश्यकता है; और उससे केवल इतना होता है कि जीवन एक शरीर में से निकलकर दूसरे अधिक बलशाली और समर्थ शरीर में पहुंच जाता है। परन्तु मनुष्य बहुत बार ऐसी हत्याएं भी करता है जिनसे जीवन का केवल नाश होता है। अपनी भूख मिटाने के लिए नहीं, बल्कि केवल अपनी हिंसा वृत्ति को तृप्त करने के लिए जब वह हत्या करता है, तो वह अक्षम्य सा प्रतीत होता है।"

सुभाष कहने लगा : "भाई जी, इस तरह तो इन पशुओं की हत्या करना बहुत ही हृदयहीन कार्य प्रतीत होता है।"

"पशु भी तो उतनी ही हृदयहीनता से मनुष्यों की हत्या कर डालते हैं" देवेन्द्र ने कहा।

पं० हरिवंश बोले : "पशुओं की और मनुष्यों की हृदयहीनता में बहुत अन्तर है। पशु जो भी कुछ करते हैं, वे अपनी सहज प्रवृत्तिवश करते हैं, विचारपूर्वक नहीं। इसीलिए पशुओं द्वारा किया गया विनाश कभी भी उतना विशाल नहीं होता, जितना मनुष्य द्वारा किया गया विचारपूर्ण विनाश होता है।"

मैंने कहा : "आपकी बात बिल्कुल ठीक है। मनुष्य केवल हत्या के लिए हत्या नहीं करता। कई बार वह इसीलिए हत्या करता है कि उसे इसमें आनन्द आता है; कई बार वह इसीलिए हत्या करता है कि उसका पुराना कोई संचित क्रोध उसे उत्तेजित किये होता है, और इन दोनों से बढ़कर लज्जाजनक बात यह है कि कभी कभी वह आर्थिक लाभ के लिए हत्या करता है। उदाहरण के लिए अफ्रीका के जंगलों में से गैंडे जैसे विशाल और शक्तिशाली प्राणियों का नाम-निशान इसलिए मिटा दिया गया क्योंकि गैंडे के सींग बहुत ऊंची कीमत पर बिक जाते हैं। इन सींगों का कहीं दवाइयों के लिए और कहीं जादू-टोने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसी-लिए मनुष्य ने अपनी जान पर खेलकर भी गैंडों की जान लेनी शुरू कर दी।"

पं० हरिवंश कहने लगे : "भारतवर्ष में सिंहों का भी तो यही हाल हुआ है। अब केसरी गिनी-चुनी संख्या में ही रह गये हैं। बाघों की संख्या भी दिनोंदिन कम होती जा रही है।"

डाक्टर अनन्तानन्द बोले : "मुझे तो अब मनुष्यों की अपेक्षा इन पशुओं के प्रति अधिक सहानुभूति होती है। यह भी कोई बात हुई कि एक पद्दी सा आदमी बन्दूक लेकर शेर, हाथी या गैंडे को केवल उंगली हिलाकर

मार दे। इसमें वीरता तो है ही नहीं; बल्कि सबल पर दुर्बल की विजय होती देखकर मन कुछ खिन्न ही होता है। मुझे तो कभी-कभी तब आनन्द अनुभव होता ह. जब मैं कहीं पढ़ता हूं कि शिकार के लिए निकले हुए शिकारी को शिकार ने ही अपना शिकार बना लिया। ऐसा लगता है कि उस शिकारी को उचित दण्ड प्राप्त हो गया।"

पं० हरिवंश बोले : "ऐसे मौके भी बहुत बार आते रहते हैं और कई बार या तो संयोगवश अथवा अपने तीव्र क्रोध के आवेश में गोली द्वारा आहत किये गये प्राणी अपने हत्यारे की जान ले लेते हैं। मैंने कहीं पढ़ा है कि अमेरिका के शौकीन शिकारी बहुत बार खुद अपनी ही गोली के शिकार हो जाते हैं, और कई बार अपने गलत निशाने के कारण अपने साथी शिकारियों के ही प्राण ले लेते हैं।"

मैंने कहा : "अमेरिकनों के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है; और अमेरिका में मृत्य कुछ ऐसी बड़ी बात भी नहीं है। वहां किसी एक छुट्टी के दिन ही सैकड़ों आदमी मोटर दुर्घटनाओं में मर जाते हैं। तो यदि कुछ हिंस्र पशुओं के ही पल्ले पड़ गये, तो इसमें न तो कुछ खेद की बात है, और न कुछ आश्चर्य की।"

डाक्टर अनन्तानन्द कहने लगे : "इस तरह पशुओं के हाथ पड़ जाने में अमेरिकनों की अपनी मूर्खता भी कारण हो सकती है। परन्तु संसार के सभी भागों में कभी न कभी शिकारियों की मौत अपने शिकार द्वारा होती रहती है। घायल बाघ और चीतों की तो बात ही छोड़ दीजिये, क्योंकि गोली लगने के उपरान्त यदि ये प्राणी किसी प्रकार अपने हत्यारे तक पहुंच जायें, तो उसका कचूमर निकालते इन्हें एक क्षण की देर नहीं लगती। परन्तु बहुत बार अपेक्षाकृत छोटे और दुर्बल प्राणी भी अपने हत्यारों से पूरा बदला चुका लेते हैं। मुझे इंग्लैण्ड के कुछ शिकारियों के साथ घटी एक घटना मालूम है। ये शिकारी अपने कुत्तों के साथ लोमड़ी के शिकार पर निकले थे। इंग्लैण्ड में लोमड़ी का शिकार बहुत बड़ा मनोरंजन समझा जाता है। लोमड़ी कुछ तो स्वभाव से ही चालाक और धूर्त होती है, पर लगता है कि जिस लोमड़ी का पीछा इन शिकारियों ने किया, वह अन्य लोमड़ियों की अपेक्षा भी अधिक धूर्त थी। वह भागते-भागते एक पहाड़ी चट्टानों वाले क्षेत्र में पहुंच गई और ऐसा प्रतीत होता है कि उसे उस प्रदेश की हर चट्टान और खाई का पूरा ज्ञान था। वह तेजी से भागती हुई एक ऐसे स्थान पर पहुंची, जिसके आगे एकदम सीधी ३५ फुट गहरी खाई थी। उस चट्टान पर पहुंचकर वह स्वयं तो तेजी से एक ओर को मुड़ गई, परन्तु उसका पीछा करते हुए जो कुत्ते और घुड़सवार शिकारी आ रहे थे, वे अपने आपको सम्हाल न सके। आगे की खाई का उन्हें ज्ञान नहीं था। वे सब दौड़ते-दौड़ते उस खाई में जा

पड़े और मर गये।"

"वाह री लोमड़ी!" सुभाष ने जैसे उस अनुपस्थित लोमड़ी को शाबाशी देते हुए कहा।

पं० हरिवंश बोले: "ऐसी एक घटना मैंने भी कहीं पढ़ी थी। आस्ट्रेलिया में एक शिकारी ने एक कंगारू पर गोली चलाई। कंगारू घायल होकर गिर पड़ा। शिकारी उसके पास पहुंचा और झुककर देखने लगा। यन्त्रणा से विकल कंगारू आंखें मींचे पड़ा था। जिस समय शिकारी उसके पास झुका हुआ था, उसी समय उसने छटपटाकर जोर से लात हिलाई। यह लात शिकारी की बन्दूक में लगी, जिससे बन्दूक झटके से गिर पड़ी और गिरते-गिरते ही उसका घोड़ा दब गया और गोली शिकारी की छाती के पार हो गई।"

मैंने कहा: "यह तो बिलकुल ही संयोग की बात हुई। परन्तु मुझे एक गैंडे का हाल मालूम है, जिसने अपने ऊपर गोली चलाने वाले व्यक्ति का एक पांव कटवाकर छोड़ा। यह शिकारी अफ्रीका में गैंडे के शिकार के लिए गया था। साहसी शिकारी गैंडे को मारना बहुत आसान समझते हैं, क्योंकि शक्तिशाली होने पर भी गैंडा बहुत हद तक असहाय होता है। उसके पास एक ही शस्त्र होता है, और वह होता है उसकी थूथ पर लगा हुआ सींग। जब गैंडा इस सींग से चोट करना चाहता है, तो उसे अपना सिर अवश्य ही नीचे की ओर झुकाना पड़ता है और जब वह अपना सिर नीचे की ओर झुकाता है, तो उसे सामने दीखना बन्द हो जाता है। इस बीच में सामने खड़ा हुआ शिकारी आसानी से एक ओर हटकर उसका वार बचा सकता है। इस शिकारी ने भी यही किया। उसने जो गोली गैंडे पर चलाई थी, वह चूक गई। गैंडा उस पर झपटा। शिकारी ने इसी विधि से उसके वार से अपना बचाव कर लिया और मौका पाकर दूसरी गोली चलाई। परन्तु या तो उसकी घबराहट के कारण अथवा गैंडे की गति के कारण निशाना फिर चूक गया। अब की बार शिकारी का धैर्य छूट गया और वह जान बचाने के लिए सिर पर पांव रखकर भागा। गैंडा बहुत तेज दौड़ता है; परन्तु प्राण बचाने के लिए भागने वाला व्यक्ति जैसे-तैसे उससे तेज दौड़ सकता है। शिकारी भाग रहा था कि थोड़ी ही दूर जाकर एक नदी सामने आ गई। यह नदी मगरमच्छों के लिए बदनाम थी। परन्तु इस समय गैंडे और मगरमच्छ में से चुनाव करना था। मगरमच्छ कोई दिखाई नहीं पड़ रहा था, जबकि उत्तेजित हुआ गैंडा प्रतिक्षण निकट आता जा रहा था। सोचने के लिए अवसर बिलकुल नहीं था। शिकारी भगवान का नाम लेकर नदी में कूद पड़ा और तैरकर नदी के पार हो गया। वह किनारे पर पहुंचा ही था कि एक मगरमच्छ ने उसका पांव पकड़ लिया। जैसे-तैसे उसने पांव छुड़ा तो

लिया, परन्तु बाद में उसके पांव का घाव बिगड़ गया और उसे अपना पांव कटवा ही देना पड़ा।"

देवेन्द्र बोला : "वस्तुतः मृत्यु का कुछ ठीक निश्चय नहीं। पता नहीं कब किसकी बारी आ जाती है। मनुष्य अपने अनुमान से आशा एक बात की कर रहा होता है, और हो दूसरी जाती है।"

पं० हरिवंश ने सहमति प्रकट करते हुए कहा : "निस्सन्देह यही बात है; नहीं तो जीवन में से चमत्कारों का अंश बिलकुल ही जाता रहता। कभी-कभी ये चमत्कार बड़े ही अद्भुत हो जाते हैं। कलकत्ते के निकट एक शौकीन अपनी नौका पर चढ़कर कांटे से मछलियां पकड़ रहा था। उसने बहुत सी मछलियां पकड़ ली थीं। अन्त में उसे ऐसा लगा कि इस बार कांटे पर कोई बहुत बड़ी मछली आ फंसी है। उसने डोरी को खींचना और ढील देना प्रारम्भ किया। एक बार असावधानी से घूमते समय डोरी उसके गले के चारों ओर लिपट गई। तभी मछली ने जोर लगाया और डोरी के खिचाव से वह एकाएक नदी में गिर पड़ा। तैरना उसे आता नहीं था। उसे बचाया जा सके, इससे पहले ही वह पानी में डूब गया और उसकी लाश तक का पता न चला।"

"इस दृष्टि से सांप और भी खतरनाक है।" डाक्टर अनन्तानन्द ने कहा। "यह जो कहा जाता है कि तैराक की मृत्यु पानी से और सपेरे की मृत्यु सांप से होती है, यह अक्षरशः सत्य है।"

सांप के काटने से सपेरों की मृत्युओं के उदाहरण इतने अधिक हैं कि उन्हें गिन पाना लगभग असम्भव ही है। बल्कि इस दृष्टि से मुझे तो सबसे अधिक रोमांचकारी उदाहरण वह लगा, जिसका उल्लेख शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने उपन्यास "श्रीकान्तेर भ्रमण काहनी" के पहले भाग में किया है, जहां एक सपेरे को उसका पकड़ा हुआ सांप लापरवाही से काट लेता है। सपेरा भी अपनी मृत्यु को सुनिश्चित समझकर उस सांप के फन को मुंह से चबा डालता है। न जाने क्यों मुझे ऐसा लगता है कि यह घटना शरत् बाबू की कल्पना नहीं, बल्कि सच्ची घटना है, जो भले ही उन्होंने अपनी आंखों से न भी देखी हो, तो भी कहीं न कहीं प्रामाणिक रूप से अवश्य सुनी होगी।"

मैंने पूछा : "हरिवंश जी, आखिर कहां आयेगा आपका वह पानी वाला स्थान ? यहां तो भूख के मारे जान निकलने लगी है।"

पं० हरिवंश ने कहा : "बस अब बहुत दूर नहीं है। मुश्किल से एक फर्लांग और होगा।"

"तब तो मर गये !" सुभाष ने कहा। "आपके एक फर्लांग का मतलब

दो मील से कम क्या होगा ?"

पं० हरिवंश कहने लगे : "नहीं-नहीं, दो मील नहीं। अगर बहुत होगा, तो ४ फर्लांग से अधिक नहीं होगा।"

डा० अनन्तानन्द हँसते हुए बोले : "यह रास्ते का नाप भी एक अच्छी पहेली है। जब हम पहाड़ों में पैदल यात्रा पर जाया करते थे, तब रास्ते के इस नाप ने हमें बड़ा परेशान किया। जब दिन भर चलकर थकान से चूर हो जाते, तो यही मन हुआ करता था कि पड़ाव किसी तरह जल्दी से जल्दी आ जाय। उस समय सामने से जो भी मुसाफिर आता हुआ दिखाई पड़ता था, उसी से पूछा करते थे कि अब अगला पड़ाव कितनी दूर है। ये लोग आम तौर से पहाड़ी होते थे, जिन्हें पहाड़ पर चढ़ने-उतरने में कोई बड़ी थकान नहीं आती थी। इसलिए पूछने पर इनमें से कोई तो कहता था, 'बस नेड़े ही है,' कोई कहता था, 'बस वह सामने दिखाई पड़ रहा है' और अगर बहुत हुआ तो कोई कह देता था होगा यही आध कोस।' उनके इस प्रकार के कथन से हम यह आशा बांधकर चलने लगते थे कि सचमुच ही पड़ाव काफी पास आ गया है। परन्तु हम चलते जाते थे और चलते जाते थे, पर पड़ाव आने में ही नहीं आता था। कई बार तो जिसे उन्होंने 'नेड़े' ही बतलाया था "वह पड़ाव आठ मील दूर निकला। अन्त में जब कई बार इसी तरह हुआ, तब जाकर हमें उनके इन शब्दों के सही-सही अर्थ समझ में आये। हरिवंश जी कुछ उन्हीं पहाड़ियों की सी बोली बोलते हैं।"

पं० हरिवंश जी ने प्रतिवाद करते हुए कहा : "नहीं, सचमुच वह जगह चार फर्लांग से अधिक नहीं है।"

इसी तरह बातचीत करते हम थोड़ी देर में उस जगह पहुंच गये, जहां पं० हरिवंश हमें लाना चाह रहे थे। जगह बुरी नहीं थी। यहां पानी का एक बहुत बड़ा कुण्ड था। कुण्ड के ऊपर से एक जलप्रपात गिरता था। इस समय तो इस प्रपात में से पानी नहीं गिर रहा था; केवल ऊंची सीधी खड़ी हुई पत्थर की दीवारों में से थोड़ा-थोड़ा पानी रिसकर बाहर आ रहा था, पर पत्थर की कटान साफ बता रही थी कि बरसात के दिनों में यहां से पानी की काफी मोटी धार चालीस फीट की नीचाई पर आकर गिरती होगी। यह कुण्ड एक तंग नाले में बना हुआ था और शायद यही कारण था कि इसके आस-पास की सीली जमीन में पशुओं के पैरों के निशान बहुत कम थे। ऐसे स्थान पर अपनी शक्ति के भरोसे रहने वाले चीते और बाघ पानी पीने आ जायें, तो आ जायें, परन्तु हिरन और पाड़े जैसे दौड़-भाग कर अपनी जान बचाने वाले पशु ऐसी जगह पानी पीने नहीं आते।

प्रपात के नीचे जिस भाग में छाया थी, वहां ठंड बहुत अधिक थी,

इसलिए जिस हिस्से में धूप थी, उसमें पत्थरों पर हम बैठ गये और भोजन में जुट गये। भूख खूब जोर की लगी थी इसलिए भोजन में आनन्द आ गया। कुण्ड का पानी भी बहुत स्वादिष्ट था। कुछ ही देर में हम खा-पीकर निश्चिन्त हो गये। पं० हरिवंश ने कहा : "कुछ देर यहां आराम कर लें, फिर आगे चलेंगे।" सुभाष और देवेन्द्र बिना रास्ते ही प्रपात के ऊपरी भाग की खोज करने के लिए पहाड़ पर चढ़ने लगे। यों तो पहाड़ पर बिना रास्ते चढ़ना बिल्कुल मामूली बात है, परन्तु इस जगह चढ़ाई जरा सीधी थी और भूमि पर सील के कारण फिसलन थी। देवेन्द्र ने एक जगह फिसलना शुरू किया, तो काफी दूर तक लुढ़कनियां खाता हुआ नीचे आने लगा। उसने जी-जान से कोशिश की कि घास, फूस, बेल या पौधे की कोई शाखा, जो कुछ भी हाथ आ जाय, उसे पकड़ ले। बड़ी मुश्किल से अन्त में उसके हाथ में भाभड़ की कुछ जड़ें आ गईं और जैसे-तैसे वह सम्हल सका। अगर न सम्हल पाता, तो वह अवश्य ही नाले में पड़ी हुई पत्थर की बड़ी-बड़ी चट्टानों पर आकर गिरता। पर क्योंकि यह ठीक मालूम नहीं कि वह चट्टानों पर किस कोण पर आकर गिरता, इसलिए यह कहना कठिन है कि परिणाम क्या होता। खैर वह सम्हल गया, और दुर्घटना नहीं हुई, इसलिए यह सारा काण्ड हँसी का विषय बन गया। क्षण भर पहले ही हम सब सहमकर उसकी ओर देख रहे थे, उसके सम्हलते ही हँस पड़े।" निधि जी ने कहा : "कलाबाजी तो अच्छी लगाते हो भाई, पर पहले हमें बता देते, तो हम और ध्यान से देख पाते।"

मैंने कहा : 'क्यों सुभाष ! तेरा भी यही इरादा है क्या ?"

सुभाष और देवेन्द्र एक दूसरे को देख रहे थे। देवेन्द्र अपनी असफलता पर कुछ उदास-सा दीख रहा था और सुभाष अपनी सफलता से प्रफुल्लित था। वस्तुतः देवेन्द्र मामूली-सी असावधानी के कारण ही फिसल गया था। उसके फिसलने और सुभाष के न फिसलने के कारण हम सभी को उत्साह चढ़ा कि प्रपात के ऊपरी भाग में पहुंचा जाय। सिर्फ दो-एक साथियों ने व्यर्थ परिश्रम के लिए धूप का आनन्द छोड़ना पसन्द नहीं किया।

प्रपात के ऊपर चढ़कर हमें और तरह-तरह की शरारतें सूझने लगीं। पहले सुभाष ने एक मामूली-सा पत्थर उठाकर नीचे कुण्ड की ओर फेंका। उस पत्थर के कारण अच्छा जोर का शब्द हुआ और पानी के छींटे काफी ऊंचाई तक उठे। पानी में पत्थर गिरने की आवाज स्थान की तंगी के कारण गूंजकर और भी जोर की सुनाई पड़ी। फिर तो एक के बाद एक बड़े-बड़े पत्थर नीचे फेंके जाने लगे। जब इतनी ऊंचाई से पत्थर पानी में फेंका जाता था, तो छोटी-मोटी तोप के छूटने का सा शब्द होता था, जिससे हमें बड़ा आनन्द मिलता था। हमारी यह इच्छा बढ़ती ही गई। अन्त में पं० हरिवंश

ने एक बहुत बड़े पत्थर को दिखाते हुए कहा : "चलिये, इसे घसीटकर ले चलते हैं। जब यह गिरेगा तो और भी आनन्द आयेगा।"

यह पत्थर क्या था, एक अच्छी-खासी चट्टान थी। एक आदमी के बस में तो इसे हिला पाना भी नहीं था। तीन-चार साथियों ने मिलकर जोर लगाया, तो पत्थर हिला। उसका कुछ भाग गीली रेती में गड़ा हुआ था; उसमें एक बार उखड़ आने के बाद उसे घसीटकर ले जाना मुश्किल नहीं हुआ। घसीटकर हमने उसे प्रपात के बिल्कुल सिरे पर रखा। जहां से उसे एक ही झटके में नीचे फेंका जा सके। पं० हरिवंश ने चिल्लाकर कहा : "देखिये निधि जी, सम्हलकर बैठिये। इस बार यह पत्थर गिरेगा, तो पानी के छींटे आप तक आयेंगे।"

निधि जी नीचे ही बैठे हुए थे। पर वह कुण्ड से काफी दूर थे। जब उन्होंने उस बड़े पत्थर को देखा, तो मुस्कराते हुए बोले : "बहुत बड़ा पत्थर घसीटकर लाये हैं आप लोग; पर इसे लुढ़काते हुए ध्यान रखियेगा कि आप में से भी कोई साथ ही न लुढ़क पड़े।"

"आप बेफिक्र रहिये, हम में से कोई नहीं लुढ़कता" मैंने कहा। और इसके बाद 'एक, दो, तीन,' कहकर हमने पत्थर को अंतिम धक्का दिया। निधि जी की चेतावनी बिल्कुल ठीक थी। यद्यपि हम सब सावधान थे, पर या तो वह जगह ही कुछ ऐसी थी, या फिर उस भारी पत्थर का ही कुछ आकर्षण था कि उसके गिरने के साथ ही सुभाष भी नीचे की ओर फिसला। पर पं० हरिवंश बहुत सतर्क थे और उन्होंने सुभाष को सम्हालने की कोशिश की। उनके हाथ में बड़ी मुश्किल से उसकी कमीज आई और इस हड़बड़ी में वह भी फिसलने को हुए। उन्होंने सुभाष की कमीज नहीं छोड़ी। पं० हरिवंश को मैंने सहारा दे दिया। इस तरह वे दोनों ही गिरने से बच गये। पर वे गिर सकते थे, इसका झटका हम सभी को जैसे बड़े जोर से लगा। पत्थर गिरने से बहुत जोर की आवाज हुई होगी और छींटे भी खूब जोर के उठे होंगे। परन्तु इसका पूरा आनन्द केवल निधि जी ही ले पाये। क्योंकि जिस समय यह शोर हुआ और वे छींटे उठे, उस समय हम लोग तो एक दूसरे को सम्हालने में व्यस्त थे।

निधि जी ने हँसते हुए कहा : "क्या हुआ भाई, क्या हुआ, हम तो सोच रहे थे कि अभी दो-एक धमाके और होंगे। बीच में ही क्यों रुक गये ?"

मैंने कहा : "आपने ठीक चेतावनी दे दी थी। अगर आप चेतावनी न देते तो शायद दो-एक धमाके और हो ही जाते।"

अब एक तो ऊपर बड़े-बड़े पत्थर भी नहीं बचे थे और दूसरे, पत्थर फेंकने का उत्साह भी मन्द हो गया था, इसलिए हम सब नीचे उतर आये। नीचे आकर देखा, तो कुण्ड का सारा पानी गंदला हो गया था। जिस स्वच्छ

और स्वादिष्ट पानी को पीने के लिए हम इतनी दूर चलकर आये थे, वह इस समय पीने लायक नहीं रहा था।

पं० हरिवंश ने कहा : 'अब चलने की तैयारी कीजिये। रास्ता काफी लम्बा है। वापस लौटते-लौटते रात हो जायेगी।"

"क्यों, किस ओर से लौटेंगे ?" मैंने पूछा।

'जिस रास्ते आये हैं उससे लौटना तो भला मालूम नहीं होता, आगे की ओर निकल चलते हैं और चक्कर काटकर वापस लौट आयेंगे।"

यह रास्ता सचमुच लम्बा था और अगर इसी को पार करके लौटना हो, तो अभी चल देना ठीक होगा; और शायद इस समय चल देने पर भी वापस लौटने में काफी देर हो जाये। जहां हम इस समय खड़े थे, वहां दूर-दूर तक पहाड़ियां फैली हुई थीं और दिन ढलने से पहले इन पहाड़ियों से बाहर निकल जाना ही श्रेयस्कर था। वैसे भी सर्दियों में दिन छोटे होते हैं और शाम के समय सर्दी बढ़ जाती है। हमने काफी तेज चाल से चलना शुरू किया।

लौटते समय कोई खास बात नहीं हुई। पर हमने जितना सोचा था, उससे अधिक विलम्ब हमें रास्ता पार करने में लगा। जब हम लौटकर गंगा के किनारे पहुंचे, तब अन्तिम नौका पार जाने के लिए छूट चुकी थी। हमने चिल्ला-चिल्लाकर नाविकों को बुलाया। वे लोग हमें पहिचानते थे, इसलिए एक बार फिर नौका ले आये। यदि हम और पन्द्रह मिनट बाद यहां पहुंचे होते, तो ये नाविक अपना काम समाप्त करके नौका को परले किनारे बांधकर चले गये होते। उस दशा में शायद हमें वह सारी सर्दी की रात खुले तट पर ही बितानी पड़ती।

गंगा पार करके हम कनखल पहुंच गये। दोपहर को जंगल में भोजन किया था, वह कभी का हजम हो चुका था। भूख फिर चमकने लगी थी। इसके अतिरिक्त चौक की दूकान पर बनती हुई शुद्ध घी की गरम और ताजी जलेबियां ऐसा आमन्त्रण दे रही थी कि उसे टाल पाना कठिन था।

"क्यों बेदी जी, क्या इरादा है ?" मैंने पूछा।

"हां, हां; क्यों नहीं ?"

इस प्रस्ताव का किसी ने विरोध नहीं किया। और हमने अपनी इस बेर खाने की वन-यात्रा का अन्त गरम और ताजी जलेबियों के माधुर्य से किया, जिससे बेरों के कारण खट्टे हुए दांतों को काफी कुछ राहत मिल गई।

हमारे कुछ प्रमुख सुन्दर प्रकाशन

शिवालक की घाटियों में (सचित्र)	श्रीनिधि सिद्धांतालंकार	५)
सचित्र गृह-विनोद	अरुण, एम. ए.	८)
सचित्र व्यंग-विनोद	अरुण, एम. ए.	६॥)
गप्पों का खजाना (सचित्र)	अरुण, एम. ए.	१)
अधखिली (सचित्र)	देवेश दास	४)
रेडियो-नाटक (सचित्र)	हरिश्चन्द्र खन्ना	६)
आँखों देखा रूस	सत्येन्द्रनाथ मजूमदार	२)
यरोपा	देवेश दास	३)
रजवाड़ा (सचित्र)	देवेश दास	५)
प्रेमचन्द : घर में	शिवरानी देवी प्रेमचन्द	७॥)
नेपाल की कहानी (सचित्र)	काशीप्रसाद श्रीवास्तव	८)
साहित्य, शिक्षा और संस्कृति	डॉ० राजेन्द्रप्रसाद	५)
भारतीय शिक्षा	डॉ० राजेन्द्रप्रसाद	३)
चम्पारन में महात्मा गांधी (सचित्र)	डॉ० राजेन्द्रप्रसाद	५)
रूसी क्रान्ति के अग्रदूत (सचित्र)	राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह	४)
भारत का सांस्कृतिक इतिहास (सचित्र)	हरिदत्त वेदालंकार	६)
भारतीय संस्कृति का संक्षिप्त इतिहास	हरिदत्त वेदालंकार	३॥)
भारत का चित्रमय इतिहास	महावीर अधिकारी	६)
भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास	गुरुमुख निहालसिंह	१०)
भारतीय राजनीति और शासन	प्रो० के० आर० बम्बाल	८॥)
प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास	डॉ० रांगेय राघव	१२)
सभा-शास्त्र	नरहरि विष्णु गाडगिल	६)
सचित्र-संविधान	प्रो० इन्द्र, एम. ए.	२)
पिछले पाँच साल (राजनीतिक)	जी. एस. पथिक	५)
आपका मुन्ना (तीन भाग; सचित्र)	सावित्री देवी वर्मा	१३॥)
बालक का भाव-विकास (सचित्र)	एस. पी. कनल	५)
आधुनिक शिक्षा-मनोविज्ञान	ईश्वरचन्द्र शर्मा	५)
[illegible] की बातें	गुलाबराय	३)
जीवन-स्मृतियाँ	क्षेमचन्द्र 'सुमन'	३)
मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ	डॉ० सावित्री सिन्हा	८)
साहित्यानुशीलन	शिवदानसिंह चौहान	६)
हिन्दी काव्यालंकारसूत्रवृत्ति	आचार्य विश्वेश्वर	१२)
हिन्दी वक्रोक्तिजीवित	आचार्य विश्वेश्वर	१६)
गीतगोविन्द (सचित्र)	विनयमोहन शर्मा	५)
भूगोल के भौतिक आधार (सचित्र)	रामस्वरूप वशिष्ठ	६)
मानचित्र-प्रवेशिका	रामस्वरूप वशिष्ठ	३)

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६